मुद्रक:—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रिंटिंग प्रेस,
खपाटिया चकला, सूरत।

प्रकाशक:—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
चंदावाड़ी, सूरत।

अपने अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीका जीवनचरित्र प्रकट होनेकी अतीव आवश्यकता थी जिसके लिए करीब तीन वर्ष हुए हमारे पूज्य मित्रवर पं० पन्नालालजी बाकलीवालसे वार्तालाप करते समय हमें सम्मति मिली थी कि श्री महावीरपुराण संस्कृतमें भ० सकलकीर्ति कृत है और एक दूसरा महावीरचरित्र असगकवि कृत है जो बम्बईके मंदिरके शास्त्र भंडारमें है जिसमेंसे असग कवि कृत महावीर चरित्रकी रचना उत्तम है इसलिए इसका अनुवाद प्रकट करना चाहिए। इसपरसे हमने 'सत्यवादी' मासिकके मुख्य संपादक और स्वर्गीय न्यायवाचस्पति वादिगजकेसरी पं० गोपालदासजी बरैयाके शिष्य पं० खूबचंदजी शास्त्रीसे इस महावीर चरित्रका अनुवाद कराना प्रारंभ किया परंतु आपको अनुवाद करते देखकर इनके सहयोगी पं० मनोहरलाल शास्त्रीका विचार हुआ कि पं० खूबचंदजी तो यह कार्य धीरे धीरे करेंगे परंतु मैं यदि भ० सकलकीर्तिकृत महावीरपुराणका अनुवाद शीघ्र ही तयार करके प्रकट कर दूं तो अच्छी बिक्री हो जायगी आदि। बस, उन्होंने ऐसा ही किया और श्री महावीरपुराणका अनुवाद प्रकट कर दिया जो करीब दो वर्षसे बिक रहा है।

अब हमारा इरादा तो यही था और है भी कि किसी भी

प्रकारसे इसका खूब प्रचार होना चाहिए इसलिये देर होजानेपर भी हमने तो इस अशग कवि कृत महावीरचरित्र प्रकट करनेके निश्चयको नहीं छोड़ा और कुछ कोशिश करनेपर इन्दौर निवासी रा० ब० दानवीर सेठ कल्याणमलजी साहबने अपनी स्वर्गवासिनी मातेश्वरी श्रीमती फूलीबाईके स्मरणार्थ ६१०००) का दान किया था, जिसमें ५००) शास्त्रदानके थे उसमें १००) बढ़ाकर ६००) करवाये और उसमेंसे इस महावीर चरित्रको 'दिगंबर जैन' के ग्राहकोंको उपहार स्वरूप भेंट देनेके लिए आपने स्वीकारता दी जिससे इस महावीरचरित्र जैसे अपूर्व ग्रन्थको हम उपहार स्वरूप प्रकट कर सके हैं। इसकी २२०० प्रतियां प्रकट की गई हैं जिसमेंसे १९०० भेंटमें बटेंगी और ३०० विक्रीके लिए निकाली गई हैं।

इस ग्रन्थके मूल श्लोक भी हमने पंडित ग्वूबचंदजीसे लिखवाये हैं और उसको भी साथ २ प्रकट करनेका हमारा इरादा था परन्तु खर्च बढ़जानेसे हम मूल श्लोक नहीं प्रकट कर सके हैं किन्तु हम इन श्लोकोंको अलग प्रकट करनेकी भी कोशिश करेंगे क्योंकि इसके प्रकट होनेकी भी अतीव आवश्यकता है।

आजकल हमारे जैनियोंमें दान तो बहुत होते हैं परन्तु आदर्श दान बहुत ही कम होते हैं। रा० ब० दानवीर सेठ कल्याणमलजीने अपनी पूज्य मातेश्वरी श्रीमती फूलीबाईके स्मरणार्थ ६१०००) का जो दान किया है वह आदर्श दान है और वह अन्य श्रीमानोंको अनुकरणीय है इसलिए श्रीमती फूलीबाईका

संक्षिप्त जीवनचरित्र (चित्र सहित) और ६१०००) के दानकी सूची भी प्रथम दी गई है।

करीब ८ वर्षमें "दिगंबर जैन" के ग्राहकोंको हम करीब ५० पुस्तकें भेंटमें दे सके हैं परन्तु वे सब बहुत करके गुजरातके भाइयोंकी ही सहायतासे दे सके थे परन्तु इस वार हम हर्षके साथ प्रकट करते हैं कि ऐसे शास्त्रदानकी ओर अन्य प्रांतोंके भाइयोंका भी ध्यान आकर्षित हुआ है और आशा है कि भविष्यमें अब शास्त्रदानके लिए हम विशेष सहायता प्राप्त कर सकेंगे। तथास्तु।

जैनजातिसेवक—

वीर सं० २४४८ }
श्रावण सुदी ११ }

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

रा० ब० दानवीर सेठ कल्याणमलजीकी पूज्य मातेश्वरी—

श्रीमती फूलीबाईका संक्षिप्त
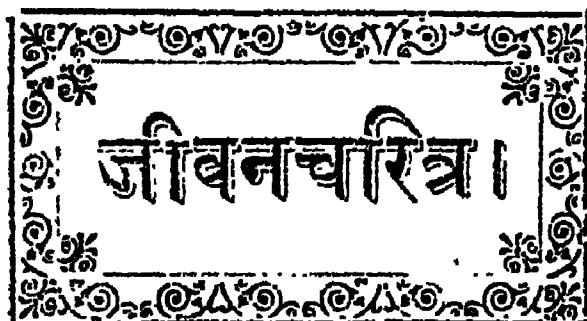
यों तो न जाने कितने प्राणी इस अपार संसारमें जीते और मरते हैं परन्तु जिनका जीवन आदर्श जीवन है, जिनके जीवनसे संसारको कुछ लाभ पहुंचता है उन्हींका जीवन यथार्थ जीवन गिना जाता है और उन्हींसे यह संसार सुशोभित होता है।

प्रिय पाठकगण! आप लोग जिनकी दिव्य मूर्ति इस पुस्तकमें देख रहे हैं उनका जीवन ऐसे ही जीवनमें गिनने योग्य है। आज हम आप लोगोंको उन्हींका परिचय देना चाहते हैं।

भारतवर्षकी प्रधान ऐतिहासिक और प्राचीन नगरी उज्जयनी नगरी है। यही नगरी आपका जन्म स्थान है। आपके पूज्य पिताका नाम सेठ सांवतराम था, आप बड़े ही व्यापार चतुर मनुष्य थे आपके दो संतान थीं—पहिली संतान सेठ सेवारामजी और दूसरी संतान हमारी चरित्र नायिका श्रीमती फूलीबाई।

फूलीबाईका जन्म आषाढ़ वदि २ सं० १९११ को हुआ था। आपका स्वभाव बचपनसे ही मिलनसार था। यद्यपि बचपनमें आपको किसी तरहकी शिक्षाका संबंध नहीं मिला तथापि घरके कामकाजमें आप बड़ी ही निपुण थीं। पाहुनगत करना आप खूब जानती थीं और आपको धर्मप्रेम भी बहुत अच्छा था।

आपका विवाह सं० १९२१में हुआ था। आपके विवाहकी घटना भी सुनने लायक है इसलिये संक्षेपमें लिख देना अनुचित नहीं जान पड़ता।

रा० ब० सेठ सर हुकमचंदजी, रा० ब० सेठ कल्याणमलजी, रा० ब० सेठ कस्तूरचंदजीसे तो हमारे पाठकगण खूब परिचित ही हैं, इन्हींके पितामह (बाबा) का नाम सेठ मानिकचन्दजी था। सेठ माणिकचंदजीके पांच पुत्र थे मगनीरामजी, स्वरूपचंदजी, ओंकारजी, तिलोकचंदजी और मन्नालालजी। इनमेंसे मगनीरामजी और मन्नालालजी निःसंतान ही स्वर्गवासी हुए, शेष तीनों भाइयोंके घर स्वरूपचंद हुकमचंद, तिलोकचंद कल्याणमल और ओंकारजी कस्तूरचंदके नामसे आज भी प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रसिद्ध घरानेमें फूलीबाईका विवाह सेठ तिलोकचंदके साथ हुआ था। इस संसारमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो भाग्य व प्रारब्धको कोई चीज नहीं मानते तथापि उन्हें ऐसी अनेक घटनाएं भोगनी पड़ती हैं जिनसे लाचार होकर उन्हें भाग्य मानना ही पड़ता है। जिन दिनों फूलीबाईके विवाहका उत्सव मनाया जा रहा था उन दिनों उज्जैनमें हैजा चल रहा था।

उन दिनों सेठ माणिकचंदजीका स्वर्गवास हो चुका था इसलिये सेठ मगनीरामजी सेठ और स्वरूपचंदजीको ही इस उत्सवकी सब तैयारी करनी पड़ी थी। ये लोग खूब धूमधामके साथ बरात ले गये थे।

हैजेका प्रकोप घराती और बरातियोंपर भी हुआ। सबसे पहिले फूलीबाईके पिता सेठ सांवतरामजीको उसने धर दबाया और ऐन विवाहके दिन उक्त सेठ साहबको वह दुष्ट लेकर निकला। यह संसारकी विचित्र लीलाका बड़ा ही अच्छा उदाहरण है। जहां सवेरे गीत आनंद हो रहे थे, वहीं पर दोपहरके समय हायके हाय शब्दने आकाशको गुंजा दिया और उस उत्सवकी महा लपटें शोक रूपी महासागरमें जाकर सब शांत हो गईं।

सेठ साहबका अंतिम संस्कार कर लौटनेके बाद ही फिर उत्सवकी तैयारी होने लगी। घड़ी भर पहिले जो घर रोने चिल्लानेकी आवाजसे भर रहा था, वही घर घड़ी भर बाद ही फिर गाजे-बाजेसे भरने लगा। यद्यपि उसमें सेठ साहबके शोककी लहर बार बार आकर धक्का देती थी तथापि वह विवाहक्रिया बड़े धूमधामके साथ समाप्त की गई।

पाठगण इतनेमें ही भाग्यका निपटारा न कर लें। थोड़ीसी विचित्रता सुननेके लिये और धैर्य रक्खें। जिस दुष्ट हैजेने सबसे पहिले सेठ सांवतरामजी पर वार किया था अब वह दुष्ट बरातमें भी आ घुसा और उसने सबसे पहिले वरराज सेठ तिलोकचन्दजी पर ही अपना प्रभाव जमाया! अब तो

घरात बरात दोनों जगह खलबली मच गई और सब लोगोंमें सनसनी फैल गई, परन्तु फूलीबाईका भाग्य बड़ा ही प्रबल था, उनका सौभाग्य अटल था इसलिये रोग असाध्य होनेपर भी और सब लोगोंके हताश होजाने पर वरराज सेठ तिलोकचन्दजी चंगे होगये और फिर सब जगह आनन्दकी सुहावनी धूप खिल उठी।

इसके बाद कोई विशेष घटना नहीं हुई। फूलीबाईके भाई सेठ सेवारामजीके भी बढ़तीके दिन आये। आपने सांवतराम सेवारामके नामसे दुकान कायम की। दुकानकी बढ़ती देखकर गवालियर स्टेटकी ओरसे आप सरकारी अफीम गोदामके कारभारी बनाये गये। थोड़े दिन बाद स्टेटके खजांची भी रहे और म्यूनिसिपालिटीका काम भी आपने किया। आप अब भी विद्यमान हैं। आप इस बुढ़ापेमें सब तरह सुखी हैं।

विवाहके बाद सेठ तिलोकचन्दजीने दुकानका सब काम स्वयं किया। आप व्यापारमें बड़े निपुण थे और सब भाई मिलकर सलाहके एक सूत्रसे बंधकर व्यापार करते थे। सेठ तिलोकचन्दजी बड़े धर्मप्रेमी थे। आपकी इच्छा एक चैत्यालय बनवाकर उसीमें धर्मध्यान करनेकी थी। परन्तु किसी कारणसे उन्होंने फिर अपना विचार बदल दिया और अपनी धर्मपत्नी श्रीमती फूलीबाईकी खास सलाहसे उज्जैनके एक जीर्ण शीर्ण मंदिरके उद्धार करनेका दृढ़ संकल्प किया। आपने उसे फिरसे बनवानेकी नींव डाल दी और बनानेका काम प्रारम्भ कर दिया।

दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि उस मंदिरकी प्रतिष्ठा

करनेका सौभाग्य आपको प्राप्त न होसका। सं० १९५९में मंदि-
रकी नीव डाली थी और सम्वत् १९६०में आप स्वर्गवासी हुए।

आपने सं० १९४८में अपनी सहधर्मिणी फूलीबाईकी सलाहसे वर्त्तमान रा० ब० सेठ कल्याणमलजीको दत्तपुत्र लिया था और कामकाज लायक पढ़ा लिखाकर व्यापारमें निपुण कर दिया था, जिसका कि फल वे आज बडे आरामसे भोग रहे हैं।

पूज्य पतिके वियोग होनेके बाद हमारी चरित्रनायिका फूलीबाईने उज्जैनका बनता हुआ मंदिर बहुत अच्छा तैयार कराया और सं० १९६२ में उसकी प्रतिष्ठा अपने प्रियपुत्र रा० ब० सेठ कल्याणमलजीके हाथसे बड़ी धूमधामसे कराई। इसके बाद तुकोगंजमें बंगला बन जानेके कारण वहांभी एक छोटासा जिनमंदिर बनवानेका आपका विचार हुआ और तदनुसार एक छोटा किंतु अत्यंत सुंदर और भव्य मंदिर बनवाकर सं. १९७१ में उसकी भी प्रतिष्ठा अच्छी धूमधामसे आपने कराई।

आप स्वयं पढ़ी लिखी नहीं थी तथापि शास्त्र सुननेका आपको बहुत शौक था। आप पुत्रियोंको पढ़ाना भी पसंद करती थीं। इसीलिये सं. १९७२ में आपने एक कन्या पाठशाला खोली जो अभी तक बराबर चल रही है और उसे सदा चलते रहनेके लिये आप उसका स्थायी प्रबंध कर गई हैं।

यह पहिले लिखा जा चुका है कि आपने वर्तमान रा० ब० सेठ 'कल्याणमलजीको दत्त पुत्र लिया था। उक्त सेठजी पर आपका

बहुत और आदर्श प्रेम था, जबतक वे रहीं तबतक सेठ कल्याणमलजीके सब खाने पीने आदिका प्रबंध वे स्वयं करती थीं। सेठ कल्याणमलजी भी उनपर बहुत प्रेम करते थे, प्रत्येक काममें उनकी आज्ञा लेते थे और उनकी आज्ञाके प्रतिकूल कोई भी काम नहीं करते थे।

इसके सिवाय रा० ब० सेठ सर हुकमचंदजी तथा रा०ब० सेठ कस्तूरचंदजी पर भी उनका बहुत प्रेम था और ये लोग भी बड़ी आदरकी दृष्टिसे उन्हें देखते थे तथा प्रत्येक घरू काममें उनको सलाह लेते थे।

आपके जीवनमें सबसे बड़ी बात यह है कि जबसे आपके पति सेठ तिलोकचंदजीका स्वर्गवास हुआ तभीसे आपकी यह इच्छा थी कि पूज्य पतिके स्मारकमें कोई अच्छी चीज बनाई जाय, जिसके लिये आप बार बार प्रेरणा करती थीं। अंतमें उनकी राय व खास प्रेरणासे ही सेठ कल्याणमलजीने अपने पूज्य पिता सेठ तिलोकचंदजीके स्मारकमें तीन लाख रुपये लगा कर तिलोकचंद जैन हाईस्कूल इंदौरमें खोल दिया है, जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटीसे रिकग्नाइज़ होकर हाईस्कूल हो गया है।

इधर सं० १९७३से आपका स्वास्थ्य खराब हुआ था। इंदौरके तथा बम्बईके प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्य और डाक्टरोंका महीनों इलाज कराया गया। यहांके महाराजाधिराजके खास डाक्टरका भी इलाज कराया परंतु सफलता कुछ हुई नहीं तथा शरीर बराबर क्षीण

होता गया। अंतमें वैसाख वदि ६ सं० १९७४को शामके समय सबको शोकसागरमें डालकर आप स्वर्गगामिनी हुईं।

अंतमें उक्त सेठ साहबने आपके नामसे एक अच्छी धर्मशाला बना देनेका निवेदन किया था और आपने यह बात स्वीकार भी करली थी। यह काम योग्य जगह आदि सब सुभीतोंके मिल जानेपर किया जानेवाला है। इन सब कामोंके सिवाय आप अंतिम समयमें ६१०००) की बड़ी रकम दान कर गई हैं और उसको नीचे लिखे अनुसार बांट गई हैं:—

१००००) तुकोगंजके मंदिरके ध्रुवफंडमें
१०२१) इंदौर, उज्जैन, बिजलपुर आदिके मंदिरोंमें
१०१) सिद्धांत विद्यालय, मोरेना
१०१) स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस
१०१) महाविद्यालय, मथुरा
५१) ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तनापुर
१०१) कंचनबाई श्राविकाश्रम, इंदौर (दो वर्षमें कपड़ा आदि देना)
६२१) शिखरजी, गिरनार, बड़वानी आदि तीर्थोंमें
१०१) बम्बईके मंदिरमें उपकरण
२००) मालवा प्रांतके मंदिरोंमें
५००) शास्त्रदान वा कोई ग्रन्थ बांटनेके लिये
१०१) समाचार पत्रोंकी सहायतार्थ
३९१३) सम्बन्धियोंको

४४०८४) स्त्रियोंके उपयोगी अथवा और कोई उपयोगी संस्था इन्दौरमें खोलनेके लिये।

अन्तमें हमारी भावना है कि हमारे भारतवर्षकी पूज्य माताएं आपका अनुकरण करेंगी और इसी तरह विद्याका प्रसार कर भारतकी उन्नति करेंगी।

अन्तमें श्री जिनेन्द्र देवसे प्रार्थना है कि आपके आत्माकी सद्गति हो और आपके चि० रा० ब० सेठ कल्याणमलजी आपके आदेशानुसार धर्मकी उन्नति करते हुए बहुत दिन तक सुखसे रहें। इति शम्।

विषयानुक्रम।

स्वर्गवासी श्रीमती फूलीबाई,

पूज्य मानेश्वरी, श्रीमान् दानवीर रायबहादुर

सेठ कल्याणमलजी, इन्दौर.

जन्म सं. १९११ }
आषाढ़ वदि २. }

{ मृत्यु सं. १९७४
{ वैशाख वदि ६.

'जैनविजय' प्रेस, सूरत।

नमः श्रीवर्द्धमानाय

श्रीमहावीरचरित्र।

पहला सर्ग।

जो आस्तिक हैं—जो स्वर्ग नरक आदि परलोकको और उनके कारणभूत कर्मोंको तथा कर्मोंसे रहित आत्माकी अनंत ज्ञानादि विशिष्ट अवस्थाको मानते हैं, वे अपने कार्यमें विघ्न आनेके अन्तरङ्ग कारणभूत अन्तरायकर्मकी अनुभाग शक्ति (विघ्न उपस्थित करनेवाली फलदान शक्ति)को क्षीण करनेके लिये कार्यके प्रारम्भमें ही मंगलाचरण करते हैं। यद्यपि यह मङ्गलाचरण मन और कायके द्वारा भी हो सकता है; तथापि आगे होनेवाले शिष्ट पुरुष भी इसका आचरण करें—आगे भी मङ्गलाचरणकी अविच्छिन्न परिपाटी चली जाय इस आकांक्षासे श्री असग कवि भी महावीर चरित्र रचनेके प्रारम्भमें शिष्टाचारका पालन करते हुए, जगज्जीवोंके लिये हितमार्ग—मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले सर्वज्ञ वीतराग अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके गुणोंका स्मरण कर कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सम्पूर्ण तत्त्वोंको जाननेवाली तथा तीना लोकके तिलकके समान अनंत श्रीको प्राप्त होनेवाले श्री सन्मति जिनेन्द्रकी मैं वन्दना करता हूं। जो कि उज्ज्वल उपदेशके देनेवाले हैं, और मोहरूप तन्द्राके नष्ट करनेवाले हैं। भावार्थ—श्री दो प्रकारकी होती है-एक अंतरङ्ग दूसरी बाह्य। अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य इस अनंत चतुष्टय रूप श्रीको अंतरग श्री कहते हैं। और समवसरण अष्ट प्रातिहार्य आदि बाह्य विभूतिको बाह्य श्री कहते हैं। यह श्री तीन लोककी तिलकके समान है; क्योंकि सर्वोत्कृष्ट है। दोनों प्रकारकी श्रीमें अंतरङ्ग श्री प्रधान है। अंतरङ्ग श्रीमें भी केवलज्ञान प्रधान है। इसीलिये कहा है कि वह समस्त तत्वोंको—सम्पूर्ण तत्व और उसकी भूत भविष्यत् वर्तमान समस्त पर्यायोंको जाननेवाली है। इस श्रीको श्री सन्मतिने—अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीने प्राप्त कर लिया था, वे सर्वज्ञ थे, इस लिये उनको वन्दना की है। वे वीर भगवान् केवल सर्वज्ञ ही नहीं हैं, हितोपदेशी भी हैं—उनकी उक्तिमें—उन्होंने जो जगज्जीवोंको हितका—मोक्षका मार्ग बताया है, वह (हितोपदेश) उज्ज्वल है—उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रमाणसे बाधा नहीं आती। तथा वीर भगवान् मोहरूप तन्द्राके नष्ट करनेवाले हैं। अर्थात् वीतराग हैं। अतः सर्वज्ञता हितोपदेशकता वीतरागता इन तीन असाधारण गुणोंको दिखाकर इष्ट देव अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीको जिनका कि वर्तमानमें तीर्थ प्रवृत्त हो रहा है नमस्कार कर मंगलाचरण किया है॥ १॥

मोक्षमार्गरूप रत्नत्रयको नमस्कार करते हैं—

मैं उस उत्कृष्ट परम पवित्र रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र)को नमस्कार करता हूं जो कि तत्त्वका एक पात्र है, और दुष्कर्मोंके छेदन करनेके लिये अस्त्र है, तथा मुक्तिरूप लक्ष्मीका मुक्तामय (मोतियोंका बना हुआ) हार है। और जो अमूल्य होकर भी आत्महित करनेवाले भव्योंके द्वारा दत्तार्थ है। भावार्थ— यहां विरोधाभास है। वह इस प्रकार है कि रत्नत्रय अमूल्य होकर भी दत्तार्थ (मूल्यवान्) है। यह विरोध है। क्योंकि जिसका मूल्य हो चुका उसको अमूल्य किस तरह कह सकते हैं ? इसका परिहार इस प्रकार है कि रत्नत्रय आत्महित करनेवालोंके लिये दत्तार्थ है— उनके समस्त प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला है। अतएव वह अमूल्य भी है। जो रत्नत्रयको धारण करते हैं वे मुक्तिरूप लक्ष्मीके गलेके हार होते हैं—वे मुक्तिको प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार दूध वगैरहके पान करनेके लिये पात्रकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार तत्त्व स्वरूपका पान करनेके लिये—उसका अवगम करनेके लिये यह रत्नत्रय अद्वितीय पात्रके समान है। जिस प्रकार किसी अस्त्रके द्वारा शत्रुओंका छेदन किया जा सकता है, उसी प्रकार कर्मशत्रुओंका छेदन करनेके लिये यह रत्नत्रय एक अस्त्र है। अतएव इस उत्कृष्ट पवित्र रत्नत्रयको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

मंगलकी इच्छासे जिनशासनको आशीर्वादात्मक नमस्कार करते हैं—

जो, अनेक दुःखरूपी ग्राहोंसे (मकरमच्छ आदि जलजन्तुओंसे) व्याप्त, अतिशय दुस्तर, अनादि, और दुरन्त, बड़े भारी संसाररूप समुद्रके वेगमेंसे निकाल कर सम्पूर्ण भव्योंका उद्धार करनेमें

दक्ष है, तथा जिसको प्रतिवादीगण कभी जीत नहीं सकते, वह श्री जिनशासन जयवंता रहो ॥ ३ ॥

ग्रंथकर्त्ता अपनी अशक्ति दिखाते हैं—

कहां तो उत्कृष्ट ज्ञानके धारक गणधर देवोंका कहा हुआ वह पुराण, और कहां जड़बुद्धि मैं। जिस समुद्रके पारको मनके समान वेगका धारक गरुड़ पा सकता है क्या उसको मयूर भी पा सकता है? कभी नहीं ॥४॥ परन्तु तो भी यह पुण्याश्रवका कारण है इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार श्री वर्द्धमान स्वामीके चरितको कहनेके लिये मैं उद्यत हुआ हूं। जो फलार्थी हैं उनके मनमें इष्ट कार्यके विषयमें यह भान भी कभी नहीं होता कि यह दुष्कर है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार विट पुरुष अर्थके—धनके अपव्ययकी अपेक्षा नहीं करता उसी प्रकार कवि भी अर्थकी (वाच्य पदार्थकी) हानिकी अपेक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विट पुरुष वृत्तभंग (ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंके भंग) की अपेक्षा नहीं करता उसी प्रकार कवि भी वृत्तभंग (छन्दोभंग) की अपेक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विट पुरुष संसारमें अपशब्द (अपयश) की अपेक्षा नहीं करता उसी प्रकार कवि भी अपशब्द (खोटे शब्दोंके प्रयोग) की अपेक्षा नहीं करता। इसी तरह दोनों कष्टकी भी अपेक्षा नहीं करते।

इस प्रकार कवि क्या और वेश्याको अपने हृदयका अर्पण करनेवाला विट पुरुष क्या, दोनों समान हैं। क्योंकि रसिक वर्ताव दोनोंको ही मूढ़ बना देता है। भावार्थ—वर्णन करते हुए मुझसे यदि कहीं पर वर्णन करने योग्य विषय छूट जाय, अथवा छन्दोभङ्ग

या कुत्सित शब्दोंका प्रयोग हो जाय तो रसिक गण उसकी तरफ ध्यान न दें ॥ ६ ॥

कथाका प्रारम्भ–

जम्बू वृक्षके सुंदर चिन्हसे चिन्हित जम्बूद्वीपके दक्षिण भागमें भारत नामक एक क्षेत्र है। जहां पर भव्यजीवरूपी धान्य जिनधर्मरूप अमृतकी वर्षाके सिंचनसे निरंतर आह्लादित रहा करते हैं ॥ ७ ॥ उस क्षेत्रमें अपनी कान्तिके द्वारा अन्य समस्त देशोंको जीतनेवाला पूर्व देश है, जहांपर उत्पन्न होनेके लिये स्वर्गमें अवतार ग्रहण करनेवाले देव भी स्पृहा करते हैं ॥ ८ ॥ वह देश असंख्य रत्नाकरोंसे (रत्नोंके ढेरोंसे) और रमणीय दंतिवनों (कजली वनों) से अलंकृत है। और विना जोते तथा विना वृष्टि जलके प्रतिवन्धके ही पकनेवाले धान्यको सदा धारण करनेवाले खेतोंसे शोभित रहता है ॥ ९ ॥ उस देशके समस्त ग्राम और शहर अपने स्वामीके लिये चिंतामणिके समान मालूम होते हैं। क्योंकि उनके बाहरके प्रान्त भाग पौंडा–ईखके खेतोंसे व्याप्त रहा करते हैं और साटी चावलोंके खेत बंधा या नहरके जलसे पूर्ण रहते हैं। तथा स्वयं भी पानकी वल्ली (वेल) और पके हुए सुपारीके वृक्षोंके उद्यानसे रम्य हैं। जिनमें गौ आदि पशु, धन और अनेक प्रकारकी विभूतिसे युक्त, जिनके यहां हजारों कुंभे[1] धान्य रहता है ऐसे कुटुम्बीगण निवास करते हैं ॥ १०–११ ॥ वहांकी नदियां अमृतके सारकी समताको धारण करनेवाले और नील कमलोंसे सुगन्धित जलको धारण करनेवाली हैं[2] ॥ १२ ॥

---

१ एक परिमाणका नाम है। २ इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ हमारी समझमें नहीं आया, इसलिये उसका अर्थ यहां लिखा नहीं है।

जहांपर सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं और उनकेपास हंस शब्द कर रहे हैं। मालूम होता है कि वे सरोपर अपने खिलते हुए कमलरूप नेत्रोंसे कृपापूर्वक मार्गके खेदसे खिन्न और प्याससे पीड़ित हुए पाथोंको देख रहे है, और हंसोंके शब्दोंके द्वारा उनको जल पीनेके लिये बुला रहे हैं ॥१३॥

उस पूर्व देशमें स्वर्गपुरीके समान रमणीय श्वेतातपत्रा नामकी नगरी है, जिसमें सदा पुण्यात्मा निवास करते हैं। उसका यह नाम अन्वर्थ है। क्योंकि उसमें श्वेत छत्रवाले राजाका हमेशह निवास रहता है ॥ १४ ॥ इस नगरीके प्राकार (परकोटा) पर सूर्य हजार करोंसे—किरणोंसे दूसरे पक्षमे हाथोंसे युक्त होने पर भी आरोहण नहीं कर सकता; क्योंकि इस मेघचुम्बी प्राकारमें लगी हुई नीलमणियोंसे उसको राहुके द्वारा अपने मर्दन होनेकी शंका हो जाती है ॥१५॥ जलपूर्ण खाई आकाशका आक्रमण करनेवाली, तमाल पत्रके समान नील वर्ग वायुके धक्कोंसे ऊपरको उठनेवाली तरङ्गपङ्क्ति संचार करनेवाली पर्वत परम्पराके समान मालूम होती है। ॥१६॥ उस नगरीके बाहर अनेक गोपुर हैं। जिनके द्वारोंमेंसे भीड़के प्रवेश करते समय अथवा निकलते समय ऊपरको देखनेका प्रयत्न करनेवाले लोकोंको, उनके (गोपुरके) ऊपर उठी हुई शिखरोंके अग्र भागमें लगे हुए मेघोंके सफेद खण्ड कुछ क्षणके लिये ध्वजा सरीखे मालूम होने लगते हैं ॥१७॥ जहांके जिनालयोंकी श्री मिथ्यादृष्टियोंको भी अपने देखनेकी इच्छा बढ़ा देती है। क्योंकि वह हजारों कोटि रत्नोंके स्वामी, शास्त्रके अभ्यासी, श्रावक धर्ममें आशक्त, मायाचारके त्यागी, मदरहित, उदार, और अपनी स्त्रीमें ही संतोष

रखनेवाले वैश्योंसे युक्त है। तथा जिसकी अटारीपर चढ़ता हुआ लोकसमूह पूजाके लिये लाये हुए अमूल्य और विचित्र रत्नसमूहके प्रभाजालमें शरीरके छिप जानेसे ऐसा मालूम होता है मानों इन्द्र धनुषके बने हुए कपड़े पहरे हुए हो। पारावत (कबूतर) अथवा नीलकमल ही जिसके कर्णफूल हैं, भीतों पर लगी हुई नीलमणियोंका किरणकलाप ही जिसका वस्त्र (अधोवस्त्र) है, शिखरोंके मध्य–भागमें लटकती हुई श्वेत मेघमाला ही जिसकी चंचल ओढ़नी है, ऊपर बैठे हुए मयुरोंके पंख ही जिसके केश हैं, चंचल स्वर्णकमलकी माला ही जिसकी बाहु हैं, सुवर्णके पूर्ण कलश ही जिसके पीन (कठोर) स्तन हैं, झरोखे ही जिसके सुंदर नेत्र हैं, अलंकृत द्वार ही जिसका मुख है, कमलिनियोंका बना हुआ जिसका चंदोवा है, ऐसी यह जिनालयश्री एक स्त्रीके समान है जो कि अतिकामको प्राप्त हो चुकी है। भावार्थ–जगत्में स्त्रियां अतिकाम–अत्यन्त कामी पुरुषको प्राप्त होती हैं; पर सर्वाङ्ग सुंदरी जिनालयश्री अतिकाम–कामरहित–जिन भगवान्‌को प्राप्त हुई है। इस नगरीके जिनालयोंकी श्री (शोभा) इतनी सुंदर थी कि जिसको देखकर या सुनकर मिथ्या दृष्टि भी उसको देखनेके लिये स्पृहा करने लगते थे, और वे अपनी उस इच्छाको रोक नहीं सकते थे ॥१८–२२॥ इस नगरीकी दीवालोंपर कहीं २ पड़ती हुई नीलमणिकी लम्बी किरणें सर्पके समान मालूम होती हैं। अतएव उनको पकड़नेके लिये वहांपर मयूरी (मोरनी) बार २ आती हैं। क्योंकि काले सांपका स्वाद लेनेके लिये उनका चित्त चंचल रहता है ॥२३॥ स्फटिक अथवा रत्नोंकी निर्मल भूमिमें वहांकी स्त्रियोंके मुखकी जो

प्रतिच्छायायें पड़ती हैं उनपर कमलकी अभिलाषासे भ्रमरगण आ बैठते है । ठीक ही है—जिनकी आत्मा भ्रान्त हो जाती है उनको किसी भी प्रकारका विवेक नहीं रहता ॥२४॥ वहांके घरोंके वाहर चवूतरोंपर लगी हुई हरित मणियोंकी किरणें घासके अंकुर जैसी मालूम होती हैं । अतएव उनके द्वारा बालमृग छले जाते हैं । पीछे यदि उनके सामने दूर्वा भी आती है तो उसको भी वे उसी शंकासे चरते नहीं हैं ॥२५॥पद्मराग मणिके चमकते हुए कुंडल और कर्ण-फूलोंकी छायासे जिनका मुखचंद्र लाल मालूम पड़ने लगता है ऐसी वहांकी स्त्रियोंको उनके पति ' कहीं यह कांता कुपित तो नहीं हो गई है ' यह समझकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगते हैं । सो ठीक ही है; क्योंकि कामसे अत्यन्त व्याकुल हुआ प्राणी क्या नियमसे मूढ़ नहीं हो जाता है ? ॥ २६ ॥ जहांके निर्मल स्फटिकके बने हुए आकाशस्पर्शी मकानोंके ऊपरके भागपर बैठी हुई रमणीय रमणियोंको उस नगरके लोग कुछ क्षणके लिये इस तरह भ्रमके साथ देखने लगते हैं कि क्या ये आकाशगत अप्सरा हैं ॥ २७ ॥ जहांके महलोंके भीतरकी रत्नभूमिपर जिस समय झरोखोंमें होकर बाल सूर्यका प्रकाश पड़ता है उस समय मालूम होता है मानों इस भूमिको कुंकुमसे लीप दिया है ॥२८॥ सामने स्फटिककी भित्तियोंमें अपने प्रतिबिम्बको अच्छी तरह देखकर सपत्नीकी शंकासे वहांकी प्रमदाओंका चित्त चंचल हो उठता है । और इसीलिये वे अपने पतियोंसे भी कोप करने लगती हैं ॥२९॥ जहांके महलोंके शिखरोंपर मेघ आकर विना समयके (वर्षाके) ही मयूरोंको मत्त कर देते हैं; क्योंकि जब मेघ वहां आते हैं तब शिखरोंके

चित्रविचित्र रत्नोंके किरणकलापकी मालाओंके पड़नेसे उनमें इन्द्र धनुष् बन जाते हैं ॥३०॥ वहांकी गलियोंमें इधर उधर निरंतर घूमते रहनेवाले लोगोंके हारोंके मोती परस्पर संघर्षण हो जानेसे टूट कर गलियोंमें बिखर जाते हैं। जिससे मालूम होता है कि इन गलियोंमें तारागणोंके टुकड़े बिखर गये हैं ॥३१॥ वहांकी वापिकाएं किनारोंपर लगे हुए प्रकाशमान रत्नोंकी किरणोंसे रात्रिमें भी दिनकी शोभा बना देती हैं। मालूम होता है कि चकवियोंके वियोगजनित शोकको दूर करनेकी इच्छासे ही वे इस कामको कर रही हैं ॥३२॥ वहांपर चन्द्रकान्त मणिके बने हुए मकानोंकी बाहरकी भूमिमेंसे चन्द्रमाका उदय होनेपर जो जल निकलता है उसके ग्रहण करनेसे मेघोंका शरीर घन सघन हो जाता है अतएव वे यहां पर यथार्थताको प्राप्त हो जाते हैं ॥३३॥ उस नगरीमें रात्रिके समय घरोंकी बावड़ियोंमें समस्त दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले कमलोंकी कर्णिकाओंपर जो भ्रमर उड़ते हैं, वे ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों चन्द्रमाके उदयसे अंधकारके खंड झड़ रहे हैं ॥३४॥ सायंकालके समय वहांकी मणिनिर्मित भूमिपर झरोखोंमें होकर पड़ती हुई सुधाफेनके समान सफेद--स्वच्छ चांदनीको बिल्लीका बच्चा दूध समझ प्रसन्न होकर चाटने लगता है ॥३५॥ वहांके वनोंमें लता गृहोंके भीतर जो पति पत्नी विलास करते हैं उनके उस विलास सौंदर्यके देखनेकी इच्छासे ही मानों सब ऋतुओंमें फूलनेवाले और सब जातिके सुन्दर २ वृक्ष उन वनोंमें सदा निवास करते हैं ॥३६॥

इस नगरके राजाका नाम नंदिवर्धन था। उसकी विभूति इन्द्रके समान थी, और वृत्ति विश्वके लोगोंको कल्याणकारिणी थी।

उसका जन्म एक विख्यातवंशमें हुआ था। वह शत्रुओंके वंशके लिये दावानलके समान था। अर्थात् जिस तरह दावानल बांसोंको जलाकर नष्ट कर देता है उसी तरह वह राजा भी अपने शत्रुओंके कुलको नष्ट करनेवाला था ॥३७॥ वह प्रतापरूप सूर्यके लिये उदयाचलके समान, कलाओंके लिये पूर्णमासीके चन्द्रसमान, विनयरूप वृक्षके लिये वसंतऋतुके समान था। एवं मर्यादाकी उत्पत्ति स्थानका न्याय-मार्गका समूह, और लक्ष्मीके लिये समुद्रके समान था ॥३८॥ इस राजाका स्वभाव निर्मल था। राजाओंके योग्य सम्पूर्ण विद्याएँ इस महात्माको प्राप्त होकर इस तरह शोभाको प्राप्त हो गईं, जिस तरह रात्रिके समय मेघोंका आवरण हटजाने पर आकाशमें तारागण शोभाको प्राप्त हो जाते हैं ॥३९॥ जो स्वभावसे ही शत्रुता रखनेवाले थे ऐसे शत्रु भी यदि उसकी शरणमें आते तो उनका भी वह पोषण करता, अर्थात् उनका राज्य आदि उनको ही लौटाकर उन पर दया करता। क्योंकि इस राजाका अंतरात्मा आर्द्र[1]—कोमल था। जिस तरह तृण वृक्ष अथवा वन आदिको भस्म करनेवाली अग्निकी ज्वाला-ओंके समूहको समुद्र धारण करता है, उसी तरह इस राजाने भी अपने शत्रुओंको धारण कर रक्खा था ॥४०॥ नंदिवर्धनने प्रजाकी विभूतिको बढ़ानेके लिये, बुद्धिरूप जलका सिंचन करके, अनेक इ-च्छित फलोंको उत्पन्न करनेवाले नीतिरूप कल्पवृक्षको बड़ा कर दिया। क्योंकि सज्जन पुरुषोंकी समस्त क्रियाएँ परोपकारके लिये ही हुआ करती हैं ॥४१॥ इस राजाका यश, जिसकी कि कान्ति खिले हुए कुन्दपुष्पके समान स्वच्छ थी, सम्पूर्ण पृथ्वीतलको अलंकृत करनेवाला

---

1 समुद्रके पक्षमें आर्द्र शब्दका अर्थ शीतल करना चाहिये।

था। तथापि यह आश्चर्य है कि उससे शत्रुओंकी स्त्रियोंके मुखरूप चंद्रमा अति मलिन हो जाते थे ॥४२॥

इस नन्दिवर्धन राजाकी प्रियाका नाम वीरवती था। वह ऐसी मालूम पड़ती थी मानों कान्तिकी अधिदेवता हो, लावण्यरूपी महासमुद्रकी वेला (तरङ्ग—सीमा) हो, अथवा कामदेवकी मूर्तिमती विजयलक्ष्मी हो ॥४३॥ जिस तरह बिजली नवीन मेघको विभूषित करती है, अथवा नवीन मंजरी आम्रवृक्षको विभूषित करती है, यद्वा फैलती हुई प्रभा निर्मल पद्मराग मणिको विभूषित करती है, उसी तरह यह विशालनयनी भी अपने स्वामीको विभूषित करती थी ॥४४॥ ये दोनों ही पति पत्नी सम्पूर्ण गुणोंके निवास-स्थान थे, और परस्परके लिये—एक दूसरेके लिये योग्य थे, अर्थात् पति पत्नी के योग्य था और पत्नी पतिके योग्य थी। इन दोनोंको विधिपूर्वक बनाकर विधिने भी निश्चयसे कुछ दिनके बीत जानेपर किसी तरहसे इन दोनोंकी सृष्टिका प्रथम फल देखा। भावार्थ—नंदिवर्धनकी प्रिया वीरवतीके गर्भसे कुछ दिनके बाद प्रथम पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ ४५ ॥ जिस तरह प्रातःकाल पूर्वदिशामें प्रतापके पीछे २ गमन करनेवाले सूर्यको उत्पन्न करता है। उसी तरह उस राजाने भी रानीके गर्भसे प्रफुल्लित पद्माकरके समान सुंदर चरणोंके धारक और जगतको प्रकाशित करनेके लिये दीपकके समान पुत्रको उत्पन्न किया ॥४६॥ जिस समय उस पुत्रका जन्म हुआ उस समय आकाश निर्मल हो गया, सम्पूर्ण दिशाओंके साथमें पृथ्वीने भी अनुरागको धारण किया, कैदियोंके बंधन स्वयं छूट गये, और सुगन्धित वायु मंद २ बहने लगी ॥४७॥ राजाने पुत्रके जन्मके दिनसे दशमे दिन

जिनेन्द्रदेवकी महापूजा करके अपने पुत्रका नंदन यह अन्वर्थ नाम रक्खा । नंदन शब्दका अर्थ होता है आनंद उत्पन्न करनेवाला । यह पुत्र भी समस्त प्रजाके मनको आनंदित करनेवाला था इसलिये इसका भी नाम नंदन रक्खा ॥४८॥ पुत्रका मणिबन्ध (पहुंचा) ज्याघात रेखासे अंकित था । इसने बाल्यावस्थामें ही समस्त विद्याओंका अभ्यास कर लिया। और शत्रुओंकी सुंदरियोंको वैधव्यदीक्षा देनेके लिये आचार्यपद प्राप्त कर लिया ॥४९॥ पुत्रने उस यौवनको प्राप्त किया जो लीलाकी निधि है, बड़े भारी रागसहित रसरूप समुद्रका सारभूत रत्न है, मूर्तिरहित भी कामदेवको जीवित करनेवाला रसायन है, वेश्याओंके कटाक्षरूप बाणका अद्वितीय लक्ष–निशाना है ॥५०॥ उठते हुए नवीन यौवनके द्वारा छिद्रको पानेवाले, अनेक प्रकारकी चेष्टा करनेवाले, फिर भी दृष्टिमें न आनेवाले और जिनको कोई भी पृथ्वीपति जीत नहीं सकता इस तरहके अंतःस्थित शत्रुओंको इस एकाकी वीरने जीत लिया था । भावार्थ—काम क्रोध आदिक अंतरङ्ग शत्रु हैं । ये यौवनके द्वारा छिद्र पाकर मनुष्यमें—विशेषकर बड़े आदमियोंमें प्रवेश कर जाते हैं । पीछे अनेक प्रकारकी चेष्टा करने लगते हैं; क्योंकि कामादिकके निमित्तसे जीवोंकी क्या २ गति होती है वह सबके अनुभवमें आई हुई है। ये इस तरहके शत्रु हैं कि जो आंखसे देखनेमें नहीं आते और भीतर प्रवेश कर ही जाते हैं । जिस प्रकार कोई शत्रु गुप्तचर या दूती आदिके द्वारा छिद्र—मौका पाकर अपने शत्रुके भीतर विना दृष्टिमें आये ही प्रवेश कर जाता है, और पीछे अनेक प्रकारकी चेष्टा करके अपने उस शत्रुको नष्ट कर देता है, उसी तरह ये अंतरंग शत्रु भी

यौवनके द्वारा मौका पाकर प्रवेश कर जाते हैं, और पीछे अनेक चेष्टा करके मनुष्यको नष्ट कर देते हैं। बड़े२ राजा भी इन अंतरङ्ग शत्रुओं-को जीत नहीं सकते। परन्तु केवल इस वीरने उनपर विजय प्राप्त कर ली थी। क्योंकि कोई भी राजा जब तक कामकी १० अवस्था-ओंपर, क्रोधकी ८ अवस्थाओंपर इसी तरह और भी अंतरंग शत्रुओंकी अनेक अवस्थाओंपर विजय प्राप्त न कर ले तब तक वह राज्यका अच्छी तरह शासन नहीं कर सकता ॥ ५१ ॥

एक दिन यह पुत्र अपने पिताकी अवश्य पालनीय आज्ञा लेकर, अपने साथ २ बड़े होनेवाले (लंगोटिया मित्र) राजपुत्रोंके साथ तथा और भी मंत्री आदिके पुत्रोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये क्रीड़ावनको गया। जिसका प्रांत भाग कृत्रिम पर्वतोंसे अत्यंत शोभायमान है ॥ ५२ ॥ तथा जो भ्रमरोंके शब्दसे झंकारमय हो रहा है, और मलयाचलकी वायुसे आंदोलित हो रहा है, फूलोंकी सुगन्धिसे जिसका समस्त प्रांत सुगन्धित हो रहा है, जिसमें सरस और सुंदर फल फले हुए हैं, इस प्रकारके इस वनमें विहार करके राजपुत्र तथा उसके साथियोंकी इन्द्रियां तृप्त हो गईं ॥ ५३ ॥ इसी वनमें क्लेश रहित अशोकवृक्षके सुंदर तलमें अर्थात् उसके नीचे निर्मल और उन्नत स्फटिक पाषाणकी शिलापर बैठे हुए, इन्द्रियों और मनके जीतनेवाले, उत्कृष्ट चारित्रके धारक, श्रुतसागर नामक मुनिको इस राजकुमारने देखा। ये मुनि स्फटिक शिलापर बैठे हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानों अपने पुंजीभूत यशपर ही बैठे हैं ॥ ५४ ॥ पहले तो अति हर्षित होकर इस राजकुमारने दूरसे ही अपने नम्रीभूत शिरको पृथ्वी तलसे स्पर्श कराते हुए मुनिको

नमस्कार किया । पीछे उनके निकट पहुंच कर अपने करकमलोंके द्वारा मुनिके चरणोंकी पूजा कर स्वयं कृतार्थ हुआ ॥५५॥ संसारकी असारताका जिसको ज्ञान हो गया है ऐसा यह राजकुमार उन मुनिराजके निकट बैठकर और दोनो हाथोंको मुकुलित कर अर्थात् जोड़कर यह पूछता हुआ कि हे ईश ! इस भयंकर संसार सागरको लांघकर यह जीव सिद्धिको किस तरह प्राप्त करता है ? ॥५६॥ जब राजकुमारने यह प्रश्न किया तब मुनिमहाराज उसके उत्तरमें इस प्रकार बोले कि जब तक " यह मेरा है " ऐसा वृथा अभिनिवेश लगा हुआ है तब तक यह जीव यमराजके मुखमें है— अर्थात् इस मिथ्या अभिनिवेशके निमित्तसे ही संसार है, किन्तु जिस समय यह अभिनिवेश छूट जाता है उसी समय यह आत्मा अपने निज शुद्धभावको प्राप्तकर मुक्तिको प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥ मुनिरूप सूर्यसे निकले हुए इस अपूर्व प्रकाशको पाकर राजकुमाररूप पद्माकर सहसा स्वसमयमें विबोधको प्राप्त हो गया ।

भावार्थ—जिस तरह कमल सूर्यके प्रकाशको पाकर प्रातःकालमें विबोधको प्राप्त हो जाता है—खिल जाता है, उसी तरह यह राजकुमार भी मुनिके उपदेशको पाकर शीघ्र ही निज आत्मस्वरूपके विषयमें बोधको प्राप्त हो गया । क्योंकि मुनि महाराजका उपदेशरूपी सूर्य समस्त वस्तुओंका ज्ञान करानेवाला है, यथार्थ है, और मिथ्यात्वरूप अंधकारका भेदन करनेवाला है ॥५८॥ इस राजकुमारने व्रतोंके भूषण धारण किये जिनसे कि यह और भी मनोहर मालूम पड़ने लगा । यह गुणज्ञ भक्तिसे मुनिकी बहुत देर तक उपासना करके उठकर उनके निकट जा आदर पूर्वक नमस्कार कर

दूसरे मुनियोंकी भी वंदना कर अपने घरको गया ॥५९॥ राजाने शुभ लग्न श्रेष्ठ पुण्य नक्षत्र शुभ वार और सूर्यकी दृष्टि पूर्वको देखकर सामंत मंत्री और उनके नीचे रहनेवाले समस्त लोगों के साथ अनुपम अभिषेक करके बड़े भारी वैभवके साथ उस राज कुमारको युवराज पद दे दिया ॥६०॥ जिस दिन इस राजकुमारने गर्भमें निवास किया उसी दिनसे इसकी सेवामें तत्पर रहनेवाले राजकुमारोंको, समयके बतानेवालोंको और दूसरे मुखियाओंको इस राजकुमारने निजको छोड़कर दूसरी हरएक प्रकारकी विभवसे पूर्ण कर दिया। ठीक ही है। सज्जनोंके विषयमें यदि कोई क्लेश उठानेका प्रयत्न करता है तो वह क्लेश उनके लिये कल्पवृक्षका काम देता है॥६१॥ इस राजकुमारकी दूसरे अनेक राजाओंके द्वारा दिये हुए क्षेत्रोंको तथा अद्वितीय अनेक प्रकारके रत्नोंके करको ग्रहण करनेसे; किन्तु विषयोंका त्याग करनेसे दीप्ति बढ़ गई थी। जो विषय संसार और व्यसन—परम्पराके मूल कारण हैं, तथा जिनका सेवन असाधु लोग ही करते हैं ॥६२॥ जगत्में समस्त याचकोंको दान करनेवालोंमेंसे किसीने भी ऐसी वस्तुका दान नहीं किया जो कि उसके पास हो ही नहीं। भावार्थ—आज तक जितने दानी हुए, उन्होंने समस्त याचकोंको दान किया; परन्तु वह दान ऐसी ही वस्तुका किया जो कि उनके पास विद्यमान थी; क्योंकि अविद्यमान वस्तुका दान ही किस तरह किया जा सकता है; परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि इस राजकुमारने अपने शत्रुओंको जो अपने पास विद्यमान नहीं थी ऐसी भी वस्तुका भयका दान कर दिया

था ॥ ६३ ॥ सौंदर्य, यौवन, नवीन उदय, और राजलक्ष्मी ये सब सामग्री मद उत्पन्न करनेवाली हैं; किन्तु ये सब प्राप्त होकर भी इस उदार राजकुमारको एक क्षणके लिये भी मद उत्पन्न न कर सकीं। इसका कारण यही था कि इन सामग्रियोंके साथमें उसको निर्मल मति भी प्राप्त हुई थी। ठीक ही है जो शुद्धात्मा हैं उनको कोई वस्तु विकार उत्पन्न नहीं कर सकती ॥६४॥ इस राजकुमारका समय बड़ी भक्तिके साथ जिनमंदिरोंकी पूजन करते हुए, महामुनियोंसे जिनेन्द्रदेवके चरित्रोंको सुनते हुए, विधिपूर्वक व्रतोंका पालन करते हुए वीतता था; क्योंकि भव्य जीवोंके चित्तमें सदा धर्मका अनुराग बना रहता है ॥६५॥ महात्माओंके मुखिया और जितेन्द्रिय इस राजकुमारने रागभावसे नहीं किन्तु पिताके आग्रहसे प्रियंकराका पाणि ग्रहण किया। यह प्रियंकरा अपनी श्रीसे देवांगनाओंकी आकृतिको भी जीतनेवाली थी, और कामदेवकी अद्वितीय वागुरा समान-जालके समान थी ॥६६॥ अपने पतिके प्रसादसे इसने भी सम्यक्त्व पूर्वक व्रतोंको धारण किया और सदा धर्मरूप अमृतका पान करती रही। क्योंकि जो कुलांगनाएं होती हैं वे अपने पतिके अनुकूल होकर ही रहा करती हैं ॥६७॥ यह प्रियंकरा कांतिकी उत्कृष्ट संपत्ति, विनयरूपी समुद्रके लिये चन्द्रकला, लज्जाकी सखी और कामदेवकी विजय प्राप्त करनेकी धनुषकी प्रत्यंचाके समान थी। अतएव समीचीन चरित्रका पालन करनेवाली इस नतांगीने अपने पतिको वश कर रक्खा था। इस जगत्में गुण समूहकी वृद्धि क्या २ नहीं करती है ॥ ६८ ॥

इस प्रकार असग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें पुत्रोत्पत्ति नामका पहला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग ।

इस प्रकार समस्त गुणोंके अद्वितीय अधिष्ठान अपने पुत्रके ऊपर राज्यभारको छोड़कर स्वयं महाराज अपनी प्रियाके साथ निश्चिंत होकर संतोषको प्राप्त हुए । ठीक ही है—जो सुपुत्र होता है वह अपने माता पिताको हर्ष उत्पन्न करता ही है ॥ १ ॥ किसी २ समय अत्युन्नत सिंहासनके ऊपर बैठे हुए उस वैश्यपतिको देखकर राजाके साथ२ समस्त लोक आनन्दित होते थे । क्योंकि अपने प्रभुका दर्शन किसको सुखकर नहीं होता ? ॥ २ ॥ याचकोंकी जितनी इच्छा थी उससे भी अधिक सम्पत्तिका दान कर उनके मनोरथोंको अच्छी तरह पूर्ण करनेवाला, और देवताओंके समान विद्वानोंसे सदा वेष्टित रहनेवाला यह राजा जंगम कल्पवृक्षके समान मालूम होता था । भावार्थ—जिस तरह कल्पवृक्ष देवताओंसे सदा वेष्टित रहता है उसी तरह यह राजा सदा विद्वानोंसे वेष्टित रहता था । और जिस तरह कल्पवृक्ष याचकोंको इच्छित पदार्थका दान करते हैं उसी तरह—बल्कि उससे भी कहीं अधिक यह दान करनेवाला था । इसलिये यह राजा कल्पवृक्षके समान मालूम होता था । अंतर इतना ही था कि कल्पवृक्ष स्थावर होता है और यह जंगम था ॥ ३ ॥ सज्जनोंके प्रिय इस राजाने सुवर्णकी बनी हुई शिखरोंके अग्रभागमें प्रकाशमान रक्त वर्ण पद्मरागमणियोंको लगाकर उनकी किरणोंके द्वारा जिनालयोंको पल्लवोंसे युक्त कल्पवृक्षके समान बना दिया था । भावार्थ—इस राजाने जो जिनालय बनवाये थे उनके शिखर सुवर्णके बने हुए थे । और उनमें प्रकाशमान पद्मरागमणियां लगी हुई थीं । जिनसे वे

जिनालय कल्पवृक्षके समान मालूम होते थे। क्योंकि जिस तरह वृक्षमें लाल वर्णके नवीन पल्लव होते हैं उसी तरह यहां पर पद्मराग-मणियां लगी हुई थीं। अर्थात् जिनालयोंके बनवानेमें इसने खूब ही धन खर्च किया था। क्योंकि साधु पुरुषोंका धन धर्म ही होता है ॥ ४ ॥ जिनके कर्णके मूलसे मद झर रहा है, जिन पर कि भ्रमर-पंक्ति भ्रमण कर रही है तथा जिनके कानमें स्वच्छ चमर लटक रहे हैं ऐसे अनेक मत्त हस्ती इस राजाकी भेटमें आते थे, वे इस राजाको बहुत प्रिय मालूम होते थे। ठीक ही है जो बड़े दानी हैं वे किसको प्रिय नहीं लगते? दानी नाम हाथीका भी है और दान करनेवालेका भी है ॥ ५ ॥ दूसरे देशोंके राजाओंके मंत्री अथवा दूसरे मुखिया जो कि स्वयं कर अथवा भेट लेकर आते थे उनके साथ यह राजा कुशलप्रश्नपूर्वक बहुत अच्छी तरह संभाषण करता था। ऐसा कोई भी शब्द नहीं बोलता था जो कि उनके हृदयोंको भेदनेवाला हो; क्योंकि जो महापुरुष होते हैं वे छोटोंके ऊपर सदा प्रीति रखते हैं ॥६॥ चारों समुद्र ही जिसके चार स्तन हैं, रक्षाकी विस्तृत रस्सीसे नाथ (बांधः) कर जिसका नियमन कर दिया गया है। समीचीन न्यायरूपी बछड़ाके पोषणसे जो पनुराई गई है, इस प्रकारकी पृथ्वीरूप गौसे यह गोप (रक्षक—राजा तथा ग्वालिया) दूधके समान अनेक रत्नोंको दुहता हुआ ॥७॥ रानीके मुखपर सपक्ष्मल नेत्र ललित भ्रकुटी और साक्षात् कामदेव निवास करता था। उसके अधर पल्लव कुछ थोड़ीसी हंसीसे मनोहर मालूम होते थे। अतएव यह राजा अपनी प्रियाके मुखको देखनेसे उपराम नहीं लेता था। क्योंकि मनोहर वस्तुके देखनेमें कौन अनु-

रक्त नहीं होता ॥८॥ इस प्रकार नवीन और अनुपम सुखके अद्वितीय साधक त्रिवर्गका अविरोधेन सेवन करते हुए इस विवेकी नंदिवर्धनके कितने ही वर्ष बीत गए। यह राजा साधुओंके विषयमें मत्सरभाव नहीं रखता था ॥९॥

एक दिन यह राजा (नंदिवर्धन) अपनी प्रियाके साथ अपने उन्नत महलके ऊपर बैठा था। उसी समय इसने एक धवल मेघको देखा, जिसमें कि चित्र विचित्र कूट बने हुए थे, और जो ऐसा मालूम पड़ता था मानों समुद्रका नवीन फेनमंडल ही है ॥१०॥ जिस समय यह राजा उस मेघको आश्चर्यके साथ देख रहा था उसी क्षणमें वह अदभ्र (बड़ाभारी) मेघ आकाशमें ही लीन हो गया। स्वयं लीन हो गया परन्तु नंदीवर्धनको यह बात दिखा गया कि यह शरीर, वय, जीवित, रूप और संपत्ति सब अनित्य हैं ॥११॥ मेघके विनाश=विभ्रमसे=इतनी शीघ्रताके साथ मेघका विनाश होता हुआ देखकर राजाके चित्तमें अपनी राज्य संपत्तिकी तरफसे विरक्तता उत्पन्न हो गई। उसने समझा कि समस्त वस्तुकी स्थिति इस ही प्रकारकी है कि वह आधे क्षणके लिये रमणीय मालूम होती है; परन्तु वास्तवमें चंचल है—अनित्य है—विनश्वर है, और बहुधा जीवोंको छलनेवाली है। ऐसा समझकर वह राजा—विचारने लगा कि यह जीव उपभोगकी तृष्णासे अनात्मीक वस्तुओंमें आसक्तिको प्राप्त हो जाता है। और इसीसे दुरंत दुःखोंके देनेवाले संसाररूपी खड्ग पंजरके भीतर—तलवारोंके बने हुए शरीररूपी पींजरेमें हमेशाके लिये बंध जाता है—फंस जाता है ॥१२—१३॥ जन्म मरणरूपी समुद्रमें निरंतर गोते खानेवाले प्राणियोंको करोड़ों भवमें भी मनुष्य जन्मकी

प्राप्ति होना दुर्लभ है । मनुष्य जन्मके प्राप्त हो जानेपर भी योग्य देश कुल आदिकी प्राप्ति होना दुर्लभ है । हितैषिणी बुद्धिका मिलना इन सबसे भी अधिक दुर्लभ है । भावार्थ—इस संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवको मनुष्य जन्मका मिलना उतना ही कठिन है जितना कि समुद्रके मध्यमें पड़े हुए रत्नका पुनः मिलना। कदाचित् मनुष्य जन्मकी भी प्राप्ति हो जाय तो भी योग्य क्षेत्रका मिलना उतना ही कठिन है जितना कि धनिकोंमें उदार दानियोंका मिलना, क्योंकि मनुष्य जन्म पाकर भी यदि कोई म्लेच्छ-क्षेत्र आदिकमें उत्पन्न हुआ तो वहां चारित्र धारण करनेकी योग्यता ही नहीं है। कदाचित कोई उत्तम क्षेत्रमें भी उत्पन्न हुआ तो भी उत्तम कुलका मिलना उतना ही कठिन है जितना कि विद्वानोंमें परोपकारीका मिलना कठिन है; क्योंकि कोई उत्तम क्षेत्रमें उत्पन्न होकर भी ऐसे नीच कुलमें उत्पन्न हुआ जिसमें कि संयम दीक्षा नहीं ली जा सकती तो उस कुलका प्राप्त करना ही व्यर्थ है। इत्यादिक रत्नत्रयकी साधक सामग्रियोंका मिलना उत्तरोउत्तर अति दुर्लभ है। सामग्रियोंके प्राप्त हो जाने पर भी उस हितैषिणी बुद्धि-का—तत्त्वश्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, तथा उपेक्षाबुद्धि (चारित्र)का मिलना उतना ही कठिन है जितना कि समस्त गुणोंके मिल जाने पर भी कृतज्ञताका मिलना कठिन है। इस प्रकार इस जगत् जीवको रत्नत्रयका मिलना सबसे अधिक दुर्लभ है ॥१४॥ यद्यपि यह सम्यग्दर्शनरूपी सुधा हितकी साधक है तो भी अनादि मिथ्यात्वरूपी रोगसे आतुर हुए प्राणीको वह रुचती नहीं। किन्तु आत्मासे भिन्न और आत्माके असाधक तत्वोंमें एकमात्र रुचि होती है। केवल इसी लिये यह

जीव यमराजरूपी राक्षसके मुखका ग्रास बनता है ॥१५॥ किन्तु जो निकट भव्य है वह इन विषयोंसे निस्पृह होकर, और बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारकी समस्त परिग्रहका त्यागकर, रत्नत्रय रूपी महान् भूषणोंको धारणकर, मुक्तिके लिये जिनेन्द्रदीक्षाको ही ग्रहण करता है ॥ १६ ॥ यह रत्नत्रय और जिनेन्द्रदीक्षा ही आत्माका हित है इस बातको मैं अच्छी तरहसे जानता हूं इस बातका मुझे दृढ़ विश्वास है, तो भी इस विषयमें जिस तृष्णाने मुझे मूढ़ बना दिया उस तृष्णाका अब मैं इसतरह मूलोच्छेदन करना चाहता हूं जिसतरह हस्ती लताको जड़से उखाड़कर फेंक देता है ॥ १७ ॥ इस प्रकार दीक्षाकी इच्छासे महाराजने महलके ऊपरसे उतरकर सभागृहमें प्रवेश किया। सभागृहमें पहलेसे ही सिंहासन रख दिया गया था। उसी सिंहासनपर बैठकर कुछ क्षणके बाद अपने पुत्रसे इस तरह बोले:—१८॥ "हे वत्स! तू अपने आश्रितोंसे वात्सल्य—प्रेम रखनेवाला है और तू ही इस समस्त विभूतिका आश्रय है। तूने सब राजाओंकी प्रकृतिको भी अपनी तरफ अनुरक्त कर रक्खा है। प्रातःकालमें उदयको प्राप्त होनेवाले नवीन सूर्यको छोड़कर और कौन ऐसा है, कि जो दिन—श्रीकी प्रकृतिको अपनी तरफ अनु-रक्त कर सके—कोई भी नहीं कर सकता। अर्थात्—जिस प्रकार दिनकी शोभाको नवीन सूर्यको छोड़कर और कोई भी अपनी तरफ आसक्त नहीं कर सकता उसी प्रकार तुझको छोड़कर समस्त राजा-ओंकी प्रकृतिको भी अपनी तरफ कोई आसक्त नहीं कर सकता ॥१९॥ तू प्रजाके अनुरागको निरंतर बढ़ाता है, मूलबल—सेना आ-दिकी भी खूब उन्नति करता है, शत्रुओंका कभी विश्वास नहीं

करता। फिर इसके सिवाय और कौनसी ऐसी बात बाकी रही कि जिसको मैं तुझे अच्छी तरह समझाऊं ॥२०॥ इस विशाल राज्य-का संचालन तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं कर सकता। तुमने समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली है। अतएव इस राज्यको तुम्हारे ही सुपुर्द कर मैं पवित्र तपोवनको जाना चाहता हूं। हे पुत्र! इस विषयमें तुम मेरे प्रतिकूल न होना" ॥ २१ ॥ मुमुक्षु महाराजके कहे हुए इन वाक्योंको सुनकर कुमार कुछ क्षणके लिये विचार करने लगा। विचार कर चुकने पर, यद्यपि उसको समस्त शत्रु-मंडल नमस्कार करते थे तो भी उसने पहले पिताको नमस्कार किया। और नमस्कार करके बोलनेमें अति चतुर वह कुमार अपने पितासे इस प्रकार बोला— ॥२२॥ "हे नरेन्द्र! आप हिताहितका विचार करनेवाले हैं। इसलिये "यह राज्यलक्ष्मी आत्माके हितकी साधक नहीं है" ऐसा समझकर ही आप इसका परित्याग करना चाहते हैं। परन्तु हे तात! जरा यह तो विचार करिये कि अपने कल्याणकी विरोधिनी होनेसे जिसको आप अपना इष्ट नहीं समझते—स्वीकार नहीं करते—छोड़ते हैं उसको अब मैं किस तरह स्वीकार करसकता हूं। क्योंकि वह मेरे कल्याण-की भी तो विरोधिनी है ॥२३॥ इसके सिवाय क्या आप यह नहीं जानते? कि आपके चरणोंकी सेवाके बिना मैं एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकता हूं। अपने जन्मदाता अर-विंद-बन्धु (सूर्य) के चले जानेसे दिवस क्या एक क्षणके लिये भी ठहर सकता है? ॥२४॥ पिता अपने प्रिय पुत्रको इस प्रकारकी शिक्षा देता है कि जिससे वह कल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त हो। परन्तु नरकके अंधकूपमें प्रवेश

करानेवाले इस अनर्गल मार्गका आपने किस तरह उपदेश किया ? ॥ २५ ॥ आपसे जो याचना की जाती है आप उसको सफल करते हैं। आपको जो प्रणाम करते हैं उनकी पीड़ाओंको आप शीघ्र ही दूर करते हैं। इसलिये हे आर्य ! मैं आपसे प्रणाम करके यही याचना करता हूं कि "मैं भी आपके साथ दीक्षा ही लूंगा और दूसरा कार्य न करूंगा"। ऐसा कहकर वह राजकुमार अपनी स्त्रीके साथ खड़ा हो गया ॥ २६ ॥ जब विद्रद्र महाराजने यह निश्चयसे समझ लिया कि पुत्र भी दीक्षा ग्रहण करनेके निश्चयपर दृढ़ आरूढ़ है तब वे इस प्रकार बोलनेका उपक्रम करने लगे। जिस समय महाराज बोलने लगे उस समय उनकी मोतियोंके समान दंतपंक्तिसे स्वच्छ प्रभा निकल रही थी। प्रभापंक्तिसे उनके अधर अति शोभायमान मालूम पड़ते थे। महाराज बोले कि—॥ २७ ॥ "तेरे विना कुलक्रमसे चला आया यह राज्य विना मालिकके यों ही नष्ट हो जायगा। यदि गोत्रकी संतान चलाना इष्ट न होता तो साधु पुरुष भी पुत्रके लिये स्पृहा क्यों करते ? ॥ २८ ॥ पिताके वचन चाहे अच्छे हों चाहे बुरे हों उनका पालन करना ही पुत्रका कर्तव्य है—दूसरा नहीं। इस सिद्ध नीतिको जानते हुए भी इस समय तेरी मति अन्यथा क्यों हो गई है ? ॥ २९ ॥ 'नंदिवर्धन स्वयं भी तपोवनको गया और साथमें अपने पुत्रको भी ले गया, अपने कुलका उसने नाम भी बाकी नहीं रक्खा' ऐसा कह २ कर लोक मेरा अपवाद करेंगे। इसलिये हे पुत्र ! अभी कुछ दिन तक तू घरमें ही रह" ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर पिताने अपने पुत्रके मस्तकपर अपना मुकुट रख दिया। इस मुकुटमेंसे निकलती हुई चित्र

विचित्र रत्नोंकी दीप्तिमान् किरणोंके द्वारा इन्द्र धनुषका मंडल बन गया था ॥ ३१ ॥ उस समय नंदिवर्धन राजा दूसरे राजाओंसे जो कि शिर नवाये हुए और हाथ जोड़े हुए खड़े थे मंत्रियोंके साथ इस प्रकार बोला। 'मैं जाता हूं, परन्तु अपने हाथकी निशानीके तौर पर अपने पुत्रको आप महात्माओंके हाथमें छोड़े जाता हूं' ॥३२॥ उस समय रुदनके शब्दोंका अनुसरण करनेवाली बुद्धि और दृष्टिको आगे रखकर, तथा स्त्री, मित्र, स्थिर—बंधु बांधवोंसे यथायोग्य पूछकर, राजा नंदिवर्धन घरसे बाहर हो गया ॥ ३३ ॥ पांचमी गतिको प्राप्त करनेकी इच्छासे नंदिवर्धनने पांच सौ राजाओंके साथमें पिहिताश्रव मुनिके निकट दिक्षा ग्रहण की। और ज्ञानावरण आदि आठ उद्धत कर्मों पर विजय प्राप्त करनेके लिये निरवद्य चेष्टा करने लगा ॥ ३४ ॥ आत्मकल्याणके लिये चले जानेसे अपने श्रेष्ठ पिताका जो वियोग हुआ उससे पुत्रको विषाद हुआ —वह दुःखी होने लगा। ठीक ही है सज्जनोंका वियोग होनेसे संसारकी स्थितिको जाननेवाले विद्वानोंको भी संताप होता ही है ॥ ३५ ॥ पिताके वियोगसे व्यथित हुए नंदनको मंत्री सेनापति आदि समस्त लोगोंकी सभा दूसरी अनेक प्रकारकी कथा करकरके प्रसन्न करती हुई। ठीक ही है, महापुरुषोंके सुखके लिये कौन चेष्टा नहीं करता है? सभी करते हैं। ॥३६॥ सभाने महाराजसे कहा कि "हे राजन्! इस प्रजाका नाथ चला गया है। इसलिये अब आप विषादको छोड़कर प्रजाको आश्वासन दीजिये। जो कापुरुष होते हैं वे ही शोकके वश होते हैं। किन्तु जो धीरबुद्धि हैं वे कभी उसके अधीन नहीं होते ॥ ३७ ॥ इसलिये हे नरेन्द्र आप अपनी इच्छा-

नुसार पहलेकी तरह अब भी दैनिक क्रिया-कलाप करें। क्योंकि यदि आप इस तरह शोकके अधीन होकर बैठे रहेंगे तो दूसरे और कौन ऐसे सचेतन हैं कि जो सुखपूर्वक रहें" ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उस वैश्यपति (राजा) को सांत्वना देकर सभा विसर्जन की गई। जिससे कि समस्त याचकोंको आनंदित करनेवाला वह राजा नंदन विषादको छोड़कर घरको गया। और पहलेकी तरह यथोक्त क्रियाओंको करने लगा ॥ ३९ ॥

थोड़े दिनोंमें ही इस नवीन नरेश्वरने, किसी बड़े भारी कष्टके उठाये विना ही, केवल बुद्धिबलसे ही, पृथ्वीरूप भार्याको अपने गुणोंमें अनुरक्त कर लिया। और जितने शत्रु थे उन सबको केवल भयसे ही नम्रीभूत बना लिया ॥४०॥ यह एक अद्भुत बात है कि इस नवीन राजाको प्राप्त करके चला भी लक्ष्मी अचलताको प्राप्त हो गई। एवं यह और भी आश्चर्य है कि इसकी स्थिर भी कीर्ति अखिल भूमंडल पर निरंतर भ्रमण करने लगी ॥४१॥ यह राजा किसीसे मत्सरभाव नहीं रखता था। इसका सत्व (बल) महान् था। इसके समस्त गुण शरदऋतुके चन्द्रमाकी किरणोंके समान मनोहर थे। अपने गुणोंसे इस सज्जनने केवल भूमंडलको ही सिद्ध नहीं किया था; किन्तु लीला मात्रमें शत्रुकुलको भी सिद्ध कर लिया था—वश कर लिया था ॥४२॥ इस प्रकार इस राजा नंदनने अपनी तीनों शक्तियोंसे (कोपबल, सैन्यबल, मंत्रबल या बुद्धिबल) जो कि सारभूत संपत्ति थीं, समस्त पृथ्वीको कल्पलताके समान बना दिया। जिससे दिन पर दिन राज्यका सुख बढ़ने लगा।

इसी समयमें सबको हर्ष उत्पन्न करनेके लिये राजाकी प्रियाने

गर्भको धारण किया ॥ ४३ ॥ और समय पाकर उस सती प्रियंकरा महाराणीने भूपालको प्रीतिके उत्पन्न करनेवाले पुत्रको इस प्रकारसे प्रसव किया जिस प्रकार आम्रकी लता मनोहर पल्लवको उत्पन्न करती है । पुत्रका " नंद " यह नाम जगतमें प्रसिद्ध हुआ ॥४४॥ नंद अपनी जातिरूपी कुमुदिनीकी प्रसन्नताको बढ़ाता हुआ, उज्ज्वल कांतिरूपी चंद्रिकाको मानो अपनी कला-ओंका बोध करानेके ही लिये फैलाता हुआ बाल चंद्रमाके समान दिनपर दिन बढ़ने लगा ॥ ४५ ॥

इसके बाद हर्षसे मानो अपने स्वामीको देखनेकी इच्छासे ही खिले हुए पुष्प और नवीन पल्लवोंकी भेंट लेकर वसंत ऋतुराज दूरसे आकर प्राप्त हुआ । और आकर मानो अपने परिश्रमको दूर करनेके ही लिये उसने वनमें विश्राम किया ॥४६॥ ऋतुराजने दक्षिण वायुको बहाकर वृक्षोंके पुराने पत्ते सब दूर कर दिये । और वनको अंकूरों तथा कलियोंसे अलंकृत, तथा मत्त भ्रमरोंसे व्याप्तकर दिया ॥ ४७ ॥ कुछ२ मुकुलित (अधखिले) अंकूरोंसे अंकित, जिसका भविष्यमें मेघ—सम्पत्तिसे सम्बन्ध होनेवाला है, खूब सरल, और दानशील आमके वृक्षको चारों तरफसे घेरकरभ्रमरगण इसतरह उस-की सेवा करने लगे, जैसे किसी बड़ीभारी सम्पत्तिके स्वामी बननेवाले, सरल तथा दानशील बन्धुको घेरकर उसके मत-लबी बांधव सेवा करते हैं ॥ ४८ ॥ अशोकका वृक्ष मृग-नयनियोंके चरणकमलसे ताड़ित होकर निरंतर अपने मूलमेंसे ही मुकुलित कलियोंके गुच्छोंको धारण करने लगा । उन कलियोंसे वह लोगोंको ऐसा मालूम होने लगा मानो उसके विलक्षण रोमांच

ही हो गया हो ॥ ४९ ॥ ढाकके फूल निरंतर फूलने लगे। जो ऐसे मालूम पड़ते थे मानो कामदेवरूपी उग्र राक्षसने विरहपीड़ित मनुष्योंके मांसको नोच २ कर यहां खूब खाया है, और जो खाते २ शेष बच गया है उसको फूलोंके व्याजसे सुखानेके लिये यहां फैला दिया है। भावार्थ—इस वसंतके समयमें ढाक फूलने लगे। जिनको देखकर विरही मनुष्योंको कामदेवकी पीड़ा होने लगी। और इस पीड़ाके निमित्तसे उनका मांस सूखने लगा ॥ ५० ॥ विलासिनियोंके मुखकमलकी आसवका पानकर केसर—पुन्नाग वृक्ष फूलने लगा। उसके पास शब्द करते हुए—गुंजार करते हुए, मधुपान करनेवालोंका—भ्रमरोंका समूह आकर संतोषको प्राप्त हुआ। ठीक ही है, जो समान व्यसनके सेवन करनेवाले होते हैं वे आपसमें एक दूसरेके प्रेमी हो ही जाते हैं ॥५१॥ उस वनके भीतर; जो कि कोयल तथा सारस आदिकी ध्वनिसे, और उसके साथ भ्रमरोंके स्वनै गीतोंसे शोभित हो रहा था, दक्षिण वायुरूपी नृत्यकार कामानुबंधी नाटकको रचकर लतारूपी अंगनाको नचाने लगा ॥ ५२ ॥ सूर्य सबकी सब पद्मिनियोंको बर्फसे मुर्झाई हुई देखकर क्रोधसे दक्षिणायनको छोड़ हिमालयकी तरफ मानो उसका निग्रह करनेके ही लिये लौट पड़ा। भावार्थ—सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायण पर आ गया और अब हिमका पड़ना कम हो गया ॥५३॥ कन्नेर उज्ज्वल वर्णकी शोभासे तो युक्त हो गया; परन्तु उसने सौरभ कुछ भी नहीं पाया। ठीक ही है, जगतमें इस बातको तो सभी लोग

१ शब्दविशेष—जैसा कि बांसुरीसे अथवा हवा भरजानेपर बांसोंसे निकलता है।

देखते हैं कि सब प्रकारकी सम्पत्तिका स्वामी कोई एकाध ही होता है ॥५४॥ चंपा दूसरेमें जो न पाई जासके ऐसी असाधारण सुगंधिसे भी युक्त है, और उसने निर्मल पुष्पसंपत्तिको भी धारण कर रक्खा है, तो भी भ्रमर उसकी सेवा नहीं करते। सो ठीक ही है जो मलिन होते हैं वे उत्कृष्ट गंधवालोंसे रति-प्रेम नहीं करते ॥५५॥ शिशिर ऋतुका अंत हो जानेसे कमलिनियोंने बहुत दिनके बाद अब किसी प्रकारसे अपनी पूर्व संपत्ति प्राप्त की है। अतः हर्षसे मानो वसंतने उस लक्ष्मीको देखनेके लिये ही बड़े २ कमलरूपी नेत्रोंको खोल रक्खा है ॥५६॥ अदृष्टपूर्वोंकी तरह अपनी पहली वल्लभा कुंदलतिकाको छोड़कर भ्रमर खिली हुई माधवी लताको प्राप्त होने लगे। सो ठीक ही है—जगतमें जो मधुपान करनेवाले होते हैं उनकी रति चंचल होती है ॥ ५७ ॥ कमलवनका प्रिय-चन्द्रमा हिमके नष्ट हो जानेसे विशद और कमलिनियोंको आनंद देने वाली अपनी चांदनीका रात्रि समयमें प्रसार करने लगा। जो ऐसी मालूम होती थी मानो बढ़ती हुई श्रीको धारण करनेवाले कामदेवकी कीर्ति ही है ॥ ५८ ॥ वसंतकी श्री-शोभा मानों अपनेको विशेष बनानेकी इच्छासे ही मधुपान करनेवाले भ्रमरोंके साथ२ अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले मनोहर तिलक वृक्षकी स्वयं सेवा करने लगी ॥५९॥ मनोज्ञ गंधको धारण करनेवाला दक्षिण-वायु पारिजातके पुष्पोंकी परागको सब तरफ फैलाने लगा। मानो कामदेवने जगत्को वश करनेके लिये दूसरोंसे औषधियोंके चूर्णका प्रयोग कराया है ॥६०॥ मार्गमें आमके वृक्षोंपर बैठी हुई, और मनोहर शब्द करती हुई कोयलें ऐसी मालूम पड़ने लगीं मानो बटोहियोंको

इस प्रकार भर्त्सना कर कह रही हैं कि अपनी प्रिय स्त्रीका सदा स्मरण कर २ के कामदेवके वश होकर व्यर्थ मर क्यों रहे हो, लौट कर अपने अपने घर क्यों नहीं चले जाते ? ॥ ६१ ॥ इस प्रकार सब जगह फूली हुई वृक्षराजियोंसे शोभायमान वनमें घूमते हुए वनपाल-मालीने उसी वनमें एक जगह मुनि महाराजको देखा। ये प्रभु जिनके कि अवधिज्ञान स्फुरायमान हो रहा था एक सुंदर शिलाके ऊपर बैठे हुए थे ॥ ६२ ॥ वनपालने महामुनिको खूब भक्तिसे प्रणाम किया। प्रणाम करनेके बाद मुनि महाराजका और वसंतका दोनों ही का आगमन महाराजको इष्ट है—अथवा मुनि महाराजका शुभागमन महाराजको वसंतके आगमनसे भी अधिक इष्ट है इसलिये दोनों ही की सूचना महाराजके पास करनेके लिये वह वनपाल जोरसे शहरकी तरफ दौड़ा ॥ ६३ ॥ महाप्रतीहारसे अपने आगमनकी सूचना कराकर वनपालने सभामें बैठे हुए भूपालको जाकर नमस्कार किया। और नवीन आमके पल्लवोंको दिखाकर वसंतका, तथा वचनोंसे मुनीन्द्रके आगमनका निवेदन किया ॥६४॥ वनपालके वाक्योंको सुनकर राजा अपने सिंहासनसे उठा। जिधर मुनिमहाराज थे और उस दिशाकी तरफ सात पैंड़ चलकर उपवनमें स्थित मुनीन्द्रको अपने मुकुटमणिका पृथ्वीसे स्पर्श कराते हुए नमस्कार किया ॥६५॥ राजाने वनपालको जिन भूषणोंको स्वयं पहरे था वे भूषण तथा उनके साथ और भी बहुतसा धन इनाममें दिया। तथा नगरमें इस बातकी भेरी बजवा दी—ढचोंढ़ी पिटवा दी कि सब जने मुनीन्द्रकी वंदनाके लिये प्रयाण करो ॥६६॥ प्रतिध्वनिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले भेरीके शब्दको सुनकर नगरके सब लोग जिनेन्द्र-धर्मको

सुननेके लिये उत्सुक होने लगे, और उसी समय एकदम बाहर निकले ॥६७॥ तथा शीघ्र ही अपने २ अभीष्ट वाहनोंपर—सवारियोंपर चढ़कर राजद्वारपर जिसके आगे आठ नौ पदाति—संतरी मौजूद थे, आ उपस्थित हुए कि सभी लोग महाराजके निकलनेकी प्रतीक्षा करने लगे ॥६८॥ ज्ञानके निधि उन मुनि महाराजके दर्शन करनेके लिये महाराजकी आज्ञासे, अलंकार और हावभावसे युक्त, अंगरक्षकोंसे चारों तरफ घिरा हुआ महाराजका अंतःपुर भी रथमें सवार होकर बाहर निकला ॥६९॥ महाराज नंदन भी धनसे याचकोंके मनोरथोंको सफल करते हुए, मत्त हस्तीके ऊपर चढ़कर, उस समयके योग्य वेषको धारण कर, चारों तरफसे राजाओंसे वेष्टित होकर, मुनिवंदनाके लिये बड़ी विभूतिके साथ वनको निकले। जिस समय महाराज बाहर निकले उस समय मकानोंके ऊपर बैठी हुई नगरकी सुंदर रमणियोंने अपने नेत्र कमलोंसे उनकी पूजा की। भावार्थ—उनको देखकर अपनेको धन्य माना ॥ ७० ॥

इस प्रकार जिसमें मुनिवंदनाके लिये भक्तिपूर्वक गमनका वर्णन किया गया है ऐसे असगकविकृत वर्धमान चरितका दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा सर्ग।

इन्द्रतुल्य वह राजनंदन नंदनवनके समान अपने उसवनमें पहुंचा। जो कि मुनिके निवाससे पवित्र हो गया था ॥१॥ सुगंधित दक्षिणवायुने राजाका श्रम दूर ही से दूर कर दिया, और उस दक्षिण नायकको प्राप्त कर बंधुकी तरह खूब आलिंगन किया ॥ २ ॥ राजा

दूरसे ही पर्वत समान ऊंचे हस्ती परसे उतर पड़ा उसने मानो इस उक्तिको व्यक्त कर दिया कि विनयरहित श्री किसी भी कामकी नहीं ॥३॥ छत्र आदिक राज चिन्होंको दूर कर नौकरोंके हस्ताव-लंबनको भी छोड़कर उसने वनमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ वहां लाल अशोक वृक्षके नीचे निर्मल स्फटिक शिला पर मुनिको इस तरह बैठे हुए देखा, मानो समीचीन धर्मके मस्तक पर ही बैठे हों ॥ ५ ॥ राजाने अपने दोनों हाथोंको कमल कलिकाके सदृश बनाकर अपने मुकुटके पास रख लिया, और महामुनिको तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया ॥ ६ ॥ वह राजाओंका स्वामी उनके निकट पृथ्वीपर ही बैठा। इसके बाद हाथ जोड़कर नमस्कार करके हर्षित चित्तसे मुनिसे इस प्रकार बोला—॥७॥ हे भगवन्! वीतराग अर्थात् मोहके नष्ट करनेवाले आपके सम्यग्द-र्शनके समान दर्शनसे भव्य प्राणियोंकी क्या मोक्ष नहीं होती? अवश्य होती है॥ ८॥ हे नाथ! मुझे इसके सिवाय और कुछ आश्चर्य नहीं है कि आपने अकाम होकर मुझको पूर्णकाम किस तरह कर दिया? अर्थात् काम नाम कामदेवका भी है और इच्छाका भी है। मुनि कामदेवसे रहित हैं, उनके दर्शनसे सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण होती हैं ॥ ९ ॥ आप सम्पूर्ण भव्य जीवोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपसे मैं अपनी भवसंतति—पूर्व भवोंको सुनना चाहता हूं ॥ १० ॥ इस प्रकार स्तुतिकर जब राजा चुप हो गया तब सर्वावधिरूप नेत्रके धारक यति इसतरह बोले ॥ ११ ॥ हे भव्य चूड़ामणि! मैं तेरे जन्मान्तरोंको अच्छीतरह और यथावत कहता हूं सो तू उनको एकाग्र चित्तसे सुन॥ १२ ॥

इसी भरतक्षेत्रमें कुलाचलके सरोवरसे हिमवान् पर्वतके पद्मद्रहसे उत्पन्न होनेवाली गंगा नामकी नदी है । वह अपने फेनोंसे ऐसी मालूम पडती है मानों दूसरी निम्नगाओंकी हसी कर रही है ॥१३॥ उसके उत्तर तट पर वराह नामका पर्वत है । जो अपने शिखरोंसे आकाशका उल्लंघन कर चुका है । जिससे ऐसा मालूम होता है मानों यह स्वर्गको देखनेके लिये ही खड़ा है ॥ १४॥ हे राजेन्द्र ! इस भवसे पहले नौमे भवमें तू उसी पर्वतपर मृगेन्द्र—सिंह था । बड़े २ मत्त हस्तियोंको त्रास दिया करता था ॥१५॥ बाल चंद्रमाकी स्पर्धा करने वाली डाढ़ोंसे वह विशाल मुख भयंकर—विकराल मालूम पड़ता था । कंधेपर जो सटाएं थीं वे दावानलकी शिखाके समान पीली और टेढ़ी थीं ॥ १६ ॥ भौंरूपी धनुपसे भयंकर, पीले जाज्वल्यमान उल्काके समान नेत्र थे । पूंछ उठानेपर वह पीठकी तरफ लौट जाती थी और अंतका भाग कुछ मुड़ जाता था । तब ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो इसने अपनी ध्वजा ऊंची कर रक्खी हो ॥ १७ ॥ शरीरके अत्युन्नत—विशाल पूर्वभागसे मानो आकाशपर आक्रमण करना चाहता है ऐसा मालूम पड़ता था । स्निग्ध चंद्रमाकी किर-णोंके पड़नेसे खिले हुए कुमुदके समान शरीरकी छवि थी ॥१८॥ उस पहाड़की शिखर पर जो मेघ गर्जते थे उनपर क्रोध करता और अपनी गर्जनासे उनकी तर्जना करता था, तथा वेगके साथ उछल २ कर अपने प्रखर नखोंसे उनका विदारण करता था ॥१९॥ जबतक हस्ती भाग कर पर्वतकी किसी कुंजमें नहीं घुस जाते तब-तक उनके पीछे भागता ही जाता था । इस प्रकार स्वतन्त्रतासे उस पर्वतपर रहते हुए उस सिंहको बहुत काल बीत गया ॥२०॥

एक दिन वह सिंह जंगली हस्तिराजोंको मारकर श्रम—थकावटसे आतुर होकर गुफाके द्वारपर सो गया। मालूम पड़ने लगा मानों पर्वतका साविक्षेप हास्य ही हो ॥ २१ ॥ उसी समय अमितकीर्ति और अमितप्रभु नामके दो पवित्र चारण मुनिओंने आकाश मार्गसे जाते हुए उस सिंहको उसीतरह सोता हुआ देखा ॥ २२ ॥ आकाश विहारी वे दोनों यतिराज आकाशसे उतरकर सप्तपर्ण वृक्षके नीचे एक निर्मल शिला पर बैठ गये ॥ २३ ॥ विद्वान और अकंप—निर्ग्रंथ वे दोनों ही चारण मुनि अनुकंपा—दयासे सिंहको बोध देनेके लिये अपने मनोज्ञ कंठसे ओजस्विनी प्रज्ञप्ति विद्याका पाठ करने लगे ॥ २४ ॥ उनकी उस ध्वनिसे—विद्याके पाठसे मृगराजका निद्राप्रमाद नष्ट हो गया। क्षणभरमें उसकी साहजिक क्रूरता दूर हो गई, और उसके परिणाम कोमल हो गये ॥ २५ ॥ कानके मूलमें अपनी पूंछको रखकर वह सिंह गुफाके मुखसे बाहर निकला। निकलकर अपने भीषण आकारको छोड़कर मुनिके निकट जा बैठा ॥ २६ ॥ वह अत्यंत शांत भावसे दोनों मुनियोंके सन्मुख बैठ गया। उसके नेत्र मुनियोंके मुखके दर्शनमें प्रीति प्रकट कर रहे थे ॥ २७ ॥ उदार बुद्धि अमितकीर्ति उसको देखकर इस प्रकार बोले कि—अहो मृगेन्द्र ! समीचीन मार्गको प्राप्त न करके ही तू ऐसा हुआ है ॥ २८ ॥ हे सिंह ! यह निश्चय समझ कि तू निर्भय है। तूने केवल यहीं सिंहत्व धारण नहीं किया है; किंतु दुरंत और अनादि संसाररूप वनमें भी धारण किया है ॥ २९ ॥ यह जीव, परिणामी और अपने कर्मोंका कर्ता तथा भोक्ता होकर भी, शरीर मात्र—शरीर प्रमाण और अनादि अनंत है। ज्ञानादि गुण

इसके लक्षण है ॥ ३० ॥ तूने अभी तक काललब्धि आदिको प्राप्त नहीं किया है इसलिये तू पहले उनको प्राप्त कर और रागादिकके साथ मिथ्यात्व-बुद्धिका परित्याग कर ॥ ३१ ॥ बंध और मोक्षके विषयमें जिनेन्द्र देवका संक्षेपमें यह उपदेश है कि जो रागी है व कर्मोंका बंध करता है, और जो वीतराग है वही कर्मोंसे मुक्त होता है ॥ ३२ ॥ बंध आदिक दोषोंके मूल कारण राग और द्वेष बताए हैं। इनके उदयसे ही सम्यक्त्व नष्ट होता है ॥३३॥ रागादि दोषोंके कारण तूने जिस भवपरंपरामें भ्रमण किया है। हे सिंह! तू उसको मेरे वचनोंसे अपने श्रोत्रको पात्र बनाकर सुन ॥३४॥

इसी द्वीपके (जम्बूद्वीपके) पूर्व विदेहमें पुंडरीकिणी नामकी नगरी है। वहां एक न्यायी धर्मात्मा व्यापारी रहता था ॥ ३५ ॥ एकवार उसके कुछ आदमिओंकी एक टोली बहुतसा धन लेकर किसी कामके लिये कहीं गई। उसके साथ तपके निधि सागरसेन नामके विख्यात धर्मात्मा मुनि भी गये ॥ ३६ ॥ बीचमें डाकुओंने उस टोलीको लूट लिया। उस समय जो आदमी शूर थे वे मारे गये, जो डरपोक थे वे पास ही नगरके भीतर भाग गये ॥ ३७ ॥ मुनिराज दिग्मूढ हो गये—मार्ग भूल गये। उनको यह नहीं मालूम रहा कि कहां होकर किधरको जाना चाहिये। उन्होंने मधुवनके भीतर कांसी नामकी स्त्रीके साथ पुरुरवा नामके वनेचर (भील)को देखा ॥३८॥ यद्यपि वह भील अत्यंत क्रूरपरिणामी था, तो भी उसने इन मुनिके वाक्योंसे अकस्माद् धर्मको धारण कर लिया। साधुओंके संयोगसे ऐसा कौन है जो शांतिको प्राप्त नहीं होता? ॥३९॥ उस डांकूने भक्तिसे बहुत दूर तक साथ जाकर उनको बहुत अच्छे मार्ग पर लगा दिया। और वे

यति निराकुलतासे चले गए ॥ ४० ॥ पुरूरवाने अहिंसादिक व्रतोंकी बहुत दिन तक रक्षा की। पीछे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयुसे उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ वहां अणिमा आदिक ऋद्धिओंको प्राप्त कर तथा स्वर्गीय सुखामृतका पानकर जब पूर्व पुण्यका क्षय हो चुका तब वह वहांसे उतरा ॥ ४२ ॥

इसी भारतक्षेत्रमें नगरोंकी स्वामिनी विनीता नामकी एक नगरी है, जो ऐसी मालूम होती है मानों स्वयं इन्द्रने ही स्वर्गके सारभागको इकट्ठा करके फिर उससे उसे बनाया है ॥ ४३ ॥ रात्रि मानो चंद्रमाके निरर्थक उदयकी हंसी किया करती है क्योंकि रत्नोंके परकोटके प्रभाजालसे वहां अंधकारका आगमन रुक जाता है। ॥ ४४ ॥ वहांके मकानोंके ऊपर शिखरोंमें लगी हुई नीलमणि जो चमकती हैं उनके किरण समूहसे उस नगरीमें सूर्य इस तरह ढक जाता है जैसे काले मेघोंसे ॥४५॥ वहां मदोन्मत्त भ्रमर युवाओंके नेत्रोंके साथ २ स्त्रिओंके निःश्वासकी सुगंधिसे खिचकर उनके मुख-कमलपर पड़ने लगते हैं ॥४६॥ जहांकी मणिओंकी बनी हुई भूमि, वहांकी रमणिओंके चपल नेत्रोंके प्रतिबिम्बके पड़नेसे नील कमलोंसे शोभित सरोवरकी तुलना करने लगती है ॥ ४७ ॥ महलोंके छज्जोंपर जो पद्मराग—माणिक लगे हुए हैं, उनके किरण मंडलसे वहां असमयमें ही आकाशमें संध्याके बादलोंका भ्रम होने लगता है ॥४८॥ वहां मकानोंके ऊपर बैठे हुए मयूर मरकतमणियोंकी—पन्नाओंकी कांतिसे इस तरह ढक जाते हैं जो पहले तो किसीकी भी दृष्टिमें ही नहीं आते; परन्तु जब वे मनोज्ञ शब्द बोलते हैं तब व्यक्त होते हैं ॥४९॥ इस नगरीमें जगत्के हितैषी समस्त गुणोंके

निर्वाण धर्मके स्वामी श्रीमान् आदि तीर्थंकर श्री वृषभदेव निवास करते थे ॥९०॥ जिस समय ये वृषभदेव स्वामी गर्भमें आये थे तब पृथ्वीपर इन्द्रादिक सभी देव इकट्ठे हुए थे। जिससे पृथ्वीने स्वर्गलोककी समस्त शोभाको धारण कर लिया था ॥९१॥ तथा उनका जन्म होते ही दिव्य—स्वर्गीय दुंदुभि बाजे बजने लगे थे, अप्सराएं नृत्य करने लगीं थीं, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी थी, मानों उस समय आकाश भी हंस रहा था ॥९२॥ उत्पन्न होते ही आनन्दसे इन्द्रादिक देवोंने मेरुके ऊपर ले जाकर उनका क्षीर समुद्रके जलसे अभिषेक किया था ॥९३॥ मति श्रुत अवधि ये तीन ज्ञान उनके साथ उत्पन्न हुए थे। इनके द्वारा उन्होंने मोक्षके समीचीन मार्गको स्वयं जान लिया था। इसीलिये ये स्वयंभू हुए ॥ ९४ ॥ उन्होंने कल्पवृक्षोंका अभाव होजानेसे आकुलित प्रजाको षट् कर्मका—असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्पका उपदेश देकर जीवनके उपायमें लगाया था। इसीलिये वे कल्पवृक्षके समान हैं ॥ ९५ ॥ इनका पुत्र भरत नामका पहला चक्रवर्ती हुआ। यह समस्त भरतखंडकी पृथ्वीका रक्षक था और नवीन साम्राज्यसे भूषित था ॥ ५६ ॥ इसने चौदह महारत्नोंकी संपत्तिको प्राप्त कर उन्नतिका सम्पादन किया था। इसके घरमें नवनिधि सदा ही किंकरकी तरह रहा करती थीं ॥ ९७ ॥ जिस समय यह दिग्विजयके लिये निकला था उस समय इसकी विपुल सेनाके भारसे उत्पन्न हुई पीड़ाको सहन न कर सकनेके कारण ही मानों पृथ्वी धूलिके व्याजसे—धूलिरूप होकर आकाशमें जा चढ़ी थी ॥ ९८ ॥ समुद्र तटके वनोंमें जो लताओंपर पल्लव लगे हुए थे वे यद्यपि भग्न हो गये थे

तो भी जब भरतकी सेनाकी सुंदरिओंने उनको अपना कर्णभूषण बना लिया तब वे ही दीप्त-प्रकाशित होने लगे ॥ ५९ ॥ समुद्रके किनारे पर जो फेनराशि थी उसके कारण भरतकी सेनाके लोगोंको समुद्र ऐसा दीखा—मालूम पड़ा मानों पहले चंद्रमाकी किरणोंको पीकर पीछेसे उगल रहा हो ॥ ६० ॥ भरतके हस्ती रणका आरम्भ होनेके पहले ही समुद्रमें जो जलकुंजर उछलते थे उनके साथ मदके आवेशसे क्रुद्ध होकर लड़ने लगते ॥ ६१ ॥ साम, दाम, दण्ड, भेदमें पौरुष रखनेवाला यह भरत स्फुरायमाण चक्रकी श्रीको धारण करनेवाली बाहुसे छह खंडके मंडलसे युक्त पृथ्वीका शासन करता था ॥ ६२ ॥ उसकी पट्टरानी प्रियाका नाम धारिणी था। यह तीन लोकके सौंदर्यकी सीमा थी। पृथ्वीपर इसका धारिणी यह नाम जो प्रसिद्ध हुआ था सो इसीलिये कि वह गुण—धारिणी—गुणोंको धारण करनेवाली थी ॥ ६३ ॥ पूर्वोक्त देव—पुरुरवाका जीव स्वर्गसे उतरकर इन्ही दोनों महात्माओंका पुत्र हुआ। उसका नाम मरीचि रक्खा गया। मरीचि अपनी कांतिसे उदयको प्राप्त होनेवाले सूर्यकी मरीचि—किरणोंको लज्जित करता था ॥ ६४ ॥ स्वयंभू—स्वयंबुद्ध पुरुदेव आदिनाथ स्वामीको स्वर्गसे आकर लौकांतिक देवोंने जब संबोधा, और संबोधित होकर जब उन्होंने दीक्षा ली तब उनके साथ मरीचिने भी दीक्षा ले ली। परंतु वह दीन दुःसह परीषहोंका सहन न कर सका; क्योंकि जिनका चित्त अत्यंत धीर है वे ही निर्ग्रंथ लिंगको धारण कर सकते हैं—जो कातर हैं वे इसको धारण नहीं कर सकते ॥ ६५—६६ ॥ अनेक प्रकारकी तर्क वितर्क करनेवालोंके गुरु इस मरीचने संसारका मूलोच्छेदन करनेमें समर्थ

जैन तपका परित्याग कर स्वयं सांख्यमतकी प्रवृत्ति की ॥६७॥ घोर मिथ्यात्वके वश होकर मस्करी—मरीचि दूसरे अनेक मंदबुद्धिओंको भी उस कुपथमें लगाकर स्वयं घोर तप करने लगा ॥ ६८ ॥ कुछ कालमें मृत्युको प्राप्त कर वह काय क्लेशके बलसे पांचवें स्वर्गमें कुटिल परिणामी देव हुआ ॥ ६९ ॥ वहां इसकी दश सागरकी आयु हुई । देवांगनाएं इसको अर्ध नेत्रोंसे देखतीं थीं । इस प्रकार यह दिव्य—स्वर्गीय दशाका अनुभव (सुखानुभव)करने लगा । ॥७०॥ आयुके अंतमें उसके पास निरंकुश यमराज आ उपस्थित हुए । संसारमें ऐसा कौन है जो मृत्युको प्राप्त न होता हो ॥ ७१ ॥

कौलीयक नगरमें कौसीद्यवर्जित कौशिक नामका एक ब्राह्मण था । वह समस्त शास्त्रोंमें विशारद था ॥ ७२ ॥ उसकी कपिला—रेणुकाके समान कपिला नामकी प्रिया थी । वह स्वभावसे ही मधुरभाषिणी और अपने पतिके चरणोंको ही अद्वितीय देवता समझने वाली थी ॥ ७३ ॥ इन दोनोंके यहां वह देव स्वर्गसे च्युत होकर प्रिय पुत्र हुआ । यह अपने हृदयमें मिथ्या तत्वोंको अच्छी तरह धारण करता और उनका ही प्रसार करता था ॥ ७४ ॥ इसने परिव्राजकके घोर तपका आचरण कर आचार्यपद प्राप्त कर लिया । मानो इसी लिये क्रुद्ध होकर यमराज इस पापीके निकट आ उपस्थित हुए ॥७५॥ यहांसे मरकर यह पहले स्वर्गमें अमेय कांति और संपत्तिको धारण करनेवाला तथा देवियोंके मनका हरण करनेवाला महान् देव हुआ ॥ ७६ ॥ निर्विचार— अविवेकी अपनी प्रियाके साथ प्रसन्न चित्तसे प्रकाशमान मणि-

ओंके विमानमें बैठकर, देवोपनीत भोगोंको भोगकर काल यापन करने लगा ॥ ७७ ॥ दो सागरकी आयुके पूर्ण होनेपर ये भोग कहीं छूट न जांय इस भयसे इसके हृदयमें अत्यंत शोक उत्पन्न हुआ। मानों इस शोकका मारा हुआ हीस्वर्गसे गिर पड़ा ॥७८॥ स्थूणागार नामके नगरमें भारद्वाज नामका एक उत्तम ब्राह्मण रहता था। राजहंसकी तरह इसके दोनों पक्ष शुद्ध थे। अर्थात् जिस तरह राजहंसके दोनो पक्ष-पंख शुद्ध-स्वच्छ होते हैं उसी तरह इसके भी माताका और पिताका दोनों पक्ष शुद्ध थे ॥७९॥ इसके घरकी भूषण पुष्पदंता नामकी गृहिणी थी। यह अपने दांतोंकी शोभासे कुंद-कलिकाओंकी स्वच्छ कांतिका उपहास करती थी ॥ ८० ॥ वह देव स्वर्गसे उतरकर इन्हीं दोनोंके यहां पुष्पमित्र नामका पुत्र हुआ। भारद्वाज और पुष्पदंत दोनों आपसमें सदा अनुरक्त रहते थे। अतएव मालूम होता है कि मानों उनके मोहरूप बीजसे यह अंकुर उत्पन्न हुआ हो ॥ ८१ ॥ एक सन्यासीकी संगतिको पाकर स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे इस अविवेकीने हठसे बाल्यावस्थामें ही दीक्षा ले ली ॥८२॥ चिरकालतक तप करके मृत्युके वश हुआ जिससे दो सागरकी आयुसे ईशान स्वर्गमें जाकर देव हुआ ॥ ८३ ॥ कंदर्प देवोंके द्वारा बजाये गये हरएक प्रकारके बाजे और उनके गान तथा गानके क्रमके अनुसार अप्सराओंके मनोहर नृत्यको देखते हुए वह उस स्वर्गमें रहने लगा ॥ ८४ ॥ पुण्यके क्षीण होनेपर स्वर्गने उसको इस तरह गिरा दिया जिस तरह दिनके नींद सोनेवाले पीलवानको मत्त हस्ती गिरा देता है। भावार्थ-जिस तरह रात्रिमें नींदसे झोंका लेनेवाले पीलवानको मत्त हस्ती अपने

ऊपरसे गिरा देता है उसी तरह कुछ दिनोंके बाद आयुके बीत जानेपर स्वर्गने उस देवको गिरा दिया ॥ ८५ ॥

श्वेतिविका नामकी नगरीमें अग्निभूति नामका एक अग्निहोत्री ब्राह्मण रहता था। इसकी भार्याका नाम गौतमी था। वह सती और लक्ष्मीके समान कांतिके धारण करनेवाली थी ॥ ८६ ॥ स्वर्गसे च्युत होकर वह देव इन्हींके यहां उत्पन्न हुआ। इस पुत्रका नाम अग्निसह रक्खा। बिजलीकी तरह प्रकाशमान अपने शरीरकी कांतिसे इसने समस्त दिशाओंको पीला बना दिया ॥ ८७ ॥ यहां पर भी सन्यासियोंके तपका आचरण करनेमें अपने जीवनको पूर्ण कर सनत्कुमार स्वर्गमें बड़ी भारी विभूतिका धारक देव हुआ ॥ ८८ ॥ उसकी सात सागरकी आयु इस तरह बीत गई मानों देखनेके छलसे अप्सराओंके नेत्रोंने उसको पी लिया हो ॥ ८९ ॥

भरतक्षेत्रमें मंदिर नामका पुर है। जहां सदा आनंदका निवास रहता है। एवं जहांके मंदिरों—मकानोंपर उड़ती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे आताप—सूर्यका ताप मंद हो जाता है ॥९०॥ इस नगरमें कुंद पुष्पके समान स्वच्छ दंतपंक्तिको धारण करनेवाला गौतम नामका ब्राह्मण रहता था। इसकी घरके काममें कुशल और घरकी स्वामिनी कौशिकी नामकी वल्लभा थी ॥९१॥ वह देव इन्ही दोनोंके यहाँ अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ। इसके बालोंका झुन्ड दावानलकी शिखाओंके समान था। जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानों दूसरे मिथ्यात्वसे जल रहा हो ॥९२॥ गृहवासके प्रेमको छोड़कर सन्यासीके रूपसे खूब ही तपस्या करने लगा और मिथ्या उपदेश भी देने लगा ॥ ९३ ॥ खोटे मदको धारण करनेवाला अग्निमित्र बहुत दिनके

बाद मृत्युको प्राप्त हुआ । यहांसे मरकर माहेंद्र स्वर्गमें इन्द्रके समान विभूतिका धारक देव हुआ ॥ ९४ ॥ वहां सात सागर प्रमाण काल तक इच्छानुसार—स्वतंत्रतासे रहा । पीछे निःश्रीक होकर वहांसे ऐसा गिरा जैसे वृक्षसे सूखा पत्ता गिर पड़ता है ॥९५॥

स्वस्तिमती नामकी नगरीमें सलंकायन नामका एक श्रीमान् ब्राह्मण रहता था । गुणोंकी मंदिर मन्दिरा नामकी उसकी प्रिया थी ॥ ९६ ॥ इन दोनोंके कोई संतान न थी । स्वर्गसे च्युत होकर वह देव इनके यहां भारद्वाज नामका पुत्र हुआ । जिस तरह विष्णुका गरुड़ आधार है उसी तरह यह भी दोनोंका आधार हुआ ॥ ९७ ॥ यहां भी सन्यासीके तपको तपकर, बहुत दिनमें अपने जीवनको पूर्ण कर उत्कृष्ट माहेन्द्र स्वर्गमें महनीय श्री—विभूति—ऋद्धिका धारक देव हुआ ॥ ९८ ॥ स्वर्गीय रमणियोंके मध्यम रीतिसे नृत्य करनेवाले विस्तृत नेत्र तथा कानोंमें पहरनेके कमल और कटाक्षोंसे इच्छानुसार ताड़ित होकर हर्षको प्राप्त होता हुआ ॥ ९९ ॥ सात सागर प्रमाण कालकी स्थितिवाली श्रीसे संयुक्त देवाङ्गनाओंके अनवरत रतका अनुभव किया ॥१००॥ कल्पवृक्षोंके कांपनेसे, मंदारवृक्षके पुष्पोंकी मालाके म्लान हो जानेसे—कुमला जानेसे, दृष्टिमें भ्रम पड़जानेसे, इत्यादि और भी कारणोंसे जब उसका स्वर्गसे निर्वासन सूचित हो गया तब रो रो कर खूब विलाप करने लगा । शरीरकी कांति मंद हो गई । अपनी खेदखिन्न विरहिणी दृष्टिको इष्ट रमणिओंपर डालने लगा ॥१०१॥१०२॥ मेरा चित्त चिंताओंसे संतप्त हो रहा है, मैंने जो आशाका चक्र बांध रक्खा था उससे में निराश हो गया हूं,

मेरे पुण्यका दीपक बुझ गया है, आज मैं अंधकारसे ढक गया हूं ॥ १०३ ॥ विभ्रम-विलास करनेवाली दिव्य देवाङ्गनाओंसे पूजित स्वर्ग! मैं अत्यंत दुःखी और निराश्रय होकर गिर रहा हूं, हा! क्या तू भी मुझे आधार न देगा? ॥ १०४ ॥ मैं किसकी शरण लूं, क्या करूं, मेरी क्या गति हो होगी अथवा किस उपायसे मैं असलमें मृत्युका निवारण करूं? ॥१०५॥ हाय! हाय! शरीरका साहजिक-स्वाभाविक लावण्य भी न मालूम कहां चला गया। अथवा ठीक ही है-पुण्यके क्षीण होनेपर कौन अलग नहीं हो जाता ॥ १०६ ॥ प्रेमसे मेरे कंठका गाढ़ आलिंगन करके हे कृशोदरि! मेरे शरीरसे जो ये प्राण निकल रहे हैं उनको तो रोक ॥१०७॥ करुणाके आंसुओंसे पूर्ण दोनों नेत्रोंसे अपने कष्टको प्रकाशित कर उसकी दिव्य अङ्गनाएं उसको देखने लगीं, और उनके देखते २ ही वह उक्त प्रकारसे विलाप करता २ स्वर्गसे सहसा गिर पड़ा। मानों मानसिक दुःखके भारकी प्रेरणासे ही गिर पड़ा हो ॥ १०८ ॥

जिसके बड़े भारी पुण्यका अस्त हो गया एवं जिसकी आत्मा मिथ्यात्वरूप दाहज्वरसे विह्वल रहती थी वह मारीचका जीव वहांसे उतरकर दुःखोंको भोगता हुआ त्रस और स्थावर योनिमें चिरकालतक भ्रमण करता रहा ॥१०९॥ कुयोनियोंमें चिरकालतक भ्रमण कर किसी तरह फिर भी मनुष्य भवको पाया; परन्तु यहां भी पापका भार अद्भुत था। सो ठीक ही है-अपने२ किये हुए कर्मोंके पाकसे यह जीव संसारमें किस चीजको तो पाता नहीं है, किसको छोड़ता नहीं है, और किसको धारण नहीं करता है ॥११०॥ भारतवर्षकी लक्ष्मीके क्रीड़ाकमल राजगृह नगरमें सांडिल्य नामका ब्राह्मण रहता

था। उसकी स्त्रीका नाम पाराशरी था ॥ १११ ॥ इन्हीके यहां स्थावर नामको धारण करनेवाला पुत्र हुआ। वह युक्त कर्मको छोड़ मस्करी—सन्यासीका तपकर दश सागरकी आयुसे ब्रह्म स्वर्गमें जाकर उत्पन्न हुआ ॥ ११२ ॥ यहां स्वाभाविक मणिओंके भूषणोंसे सुन्दर सुगंधित कोमल मंदार—कल्पवृक्षकी मालाओंके तथा मलयागिरि चंदनके रससे रमणीय शरीरको सहसा पाकर स्वच्छ संपत्तिको धारणकर, अत्यंत सफल मनोरथ होकर तथा देवाङ्गनाओंसे वेष्टित होकर चिरकाल तक रमण करने लगा ॥ १३ ॥

इस प्रकार अशग कविकृत श्री वर्द्धमानचरित्रमें मारीच विलपन नामका तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चौथा सर्ग।

इस भारत वर्षकी भूमिपर अपनी कांतिसे स्वर्गकी श्रीको धारण करनेवाला, पुण्यात्माओंके निवास करनेमें अद्वितीय हेतु मगध नामका देश प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ जहांपर सम्पूर्ण ऋतुओंमें धानके खेतोंमें मंजरी—बालकी सुगंधिसे भ्रमरोंके समूह आजाते हैं जिनसे वे खेत ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों किसानोंने तोताओंके डरसे—"खेतको कहीं तोता न खा जांय" इस भयसे उनपर काला कपड़ा बिछा दिया है ॥ २ ॥ तालावोंके सुंदर बांधोंकी मालाओंसे यह देश चारो तरफ व्याप्त है। जिनमें कहीं तो खिले हुए बड़े २ कमलोंके पत्तोंपर सारस, हंस, चकवा आदि विहार करते हैं। किंतु कहींपर इन बांधोंके घाटोंको भैंसोंने गदला कर रक्खा है ॥ ३ ॥ यह देश ऐसे नगरोंसे अत्यंत भूषित था कि जहांपर बड़े २ ईखके यंत्र—कोल्हू

तथा गाड़ियोंके चीत्कारोंसे कानके पर्दे भी फटे जाते थे, और धान्यके शिखरबंध करोड़ों ढेर लगे हुए थे जिनके निकट उनको विदीर्ण करनेवाले बैल भी थे ॥ ४ ॥ जहांके वनोंमें पथिकगण केलाओंको खाकर, अंतमें नवीन नारियलका पवित्र जल पीकर, और नवीन कोमल पत्तोंकी शय्यापर सोकर विश्राम लेते थे ॥ ५ ॥ इसी देशमें पृथ्वी तलकी समस्त सारभूत संपत्तियोंका स्थान, उत्कृष्ट राजगृहसे—राजभवनसे—राजधानीसे शोभायमान राजगृह नामको धारण करनेवाला एक रमणीय नगर है ॥ ६ ॥ जहां पर बड़े २ मकानोंमें कालागुरुका धूप जलता है और उसके धुंआके गुब्बारे उन मकानोंके झरोखोंकी जालीमें होकर निकलते हैं, जिससे कि सूर्यका प्रकाश अनेक वर्णका हो जाता है और वह मृगचर्मकी लीलाको धारण करने लगता है ॥ ७ ॥ जहांकी खाईका जल नगरके परकोटेमें लगी हुई पद्मरागमणिओंके प्रकाशके प्रतिबिम्बके पड़नेसे गुलाबी रंगका हो जाता है। जिससे वह ऐसे समुद्रकी कांतिको धारण करने लगता है जिसकी लहरें नवीन मूंगाओंके जालसे रंग गई हों ॥ ८ ॥ बड़े २ मकानोंके ऊपर बैठे हुए स्त्री पुरुषोंकी अतुल रूपलक्ष्मीको देखकर सहसा विस्मयके उत्पन्न होनेसे ही मानों सम्पूर्ण देवताओंके नेत्र निश्चल हो गये ॥ ९ ॥ जहां मकानोंके ऊपर लगी हुई नीलमणिओंकी किरणोंसे चंद्रमाकी किरणें रात्रिमें मिल जाती हैं। जिससे ऐसा मालूम होता है मानो चंद्रमा अपने कलंकको किरणरूपी हाथोंसे सब जगह छोड़ रहा हो ॥ १० ॥ इस नगरका शासन विश्वभूति नामका राजा करता था। उसका जन्म जगत् प्रसिद्ध और विश्वस्त

कुलमें हुआ था। इसने अपने तेजरूपी दावानलसे शत्रुवंशको जला डाला था। इसका 'विश्वभूति' यह नाम सार्थक था, क्योंकि अर्थी लोग इसकी विश्वभूति—समस्त वैभवको स्वयं—विना याचनाके ग्रहण करते थे ॥११॥ यह राजा नयचक्षु था—नीतिशास्त्रमें अत्यंत निपुण और उसके अनुसार शासन करनेवाला था—महान् पराक्रमका धारक था। जो इसकी सेवा करते थे उनके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला था। खुद अद्वितीय विनय—धनको धारण करता था। अपनी आत्मापर इसने विजय प्राप्त कर लिया था। गुण—संपदाओंका यह उत्कृष्ट स्थान था ॥१२॥ इस राजाकी रानीका नाम जयिनी (जैनी) था। यह ऐसी मालूम होती थी मानो यौवनकी लक्ष्मी हो अथवा तीनलोककी कांति एकत्रित हुई हो—यद्वा सतीव्रतकी सिद्धिकी राह हो ॥१३॥ समस्त भूमंडलपर विजय प्राप्त कर राज्यभारकी चिंताको अपने हितैषी मंत्रियोंके सुपुर्दकर राजाने उस मृगनयनीके साथ सम्पूर्ण ऋतुकालके सुखोंमें प्रवेश किया ॥१४॥ उक्त देव स्वर्गसे उतरकर इन दोनोंके यहाँ विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ। इसने अपनी स्वर्गीय प्रकृति—स्वभावका परित्याग नहीं किया। विश्वनंदी, विद्वान् उदार नीतिका वेत्ता तथा समस्त कलाओंमें कुशल था ॥१५॥

एक दिन राजाके पास एक द्वारपाल आया, जिसकी मूर्ति बुढ़ापेसे विकृत हो रही थी। उसको देखकर राजाने शारीरिक परिस्थितिकी निंदा की, और दृष्टिको निश्चलकर इस प्रकार विचार किया कि:—इसके शरीरको पहले स्त्रियां लौट २ कर देखा करती थीं; और उस विषयमें चर्चा किया करती थीं; परन्तु इस समय उसीका

वेली बुढ़ापेने अभिभव—तिरस्कार कर दिया है। इस विषयमें किसको शोक न होगा ? ॥ १६ । १७ ॥ वृद्धावस्थाने आकर समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिरूपी संपत्तिसे इसको दूर कर दिया है आश्चर्य है कि तो भी यह जीनेकी आशाका त्याग नहीं करता है। ठीक हीहै जो वृद्ध होता है उसका मोह नियमसे वढ़ाही जाता है ॥ १८ ॥ पैड़ २ पर गर्दनको नमाकर—झुकाकर दोनों शिथिल भौंहोंको दृष्टिसे रोककर यह बड़े यत्नसे मानो मेरा नवीन यौवन कहां गिर गया उसको पृथ्वीमें ढूंढ़ रहा है ॥ १९ ॥ अथवा जन्म मरण रूपी वनका मार्ग विनष्ट है। उसमें अपने २ कर्मके फलके अनुसार निरंतर भ्रमण करनेवाले शरीरधारियोंका—संसारिओंका क्या कल्याण हो सकता है । इस प्रकार राजा वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥२०॥ उसने यह समझकर कि राज्यसुख ही परिपाकमें दुःख देनेवाला बीज है, उसका—राज्यसुखका त्याग कर दिया। ठीक ही है—जिन महापुरुषोंने संसारकी समस्त परिस्थितिको जान लिया है क्या उनको विषयोंमें आशक्ति हो सक्ती है ? ॥ २१ ॥ स्वच्छ छत्रके मूल—राज्यासनपर अपने छोटे भाई विशाखभूतिको बैठाकर, और युवराजके पदपर पुत्रको नियुक्त कर, "वैभवमें निस्पृहता रखना ही सज्जनोंका भूषण है" इसलिये चारसौ राजाओंके साथ श्रीधर आचार्यके चरणकमलोंके निकट जाकर, अजर अमर पदके प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथ्वीपतिने जिन दीक्षाको धारण कर लिया ॥२२ । २३॥

---

१ यहांपर श्लेश है, जिससे बल शब्दके दो अर्थ होते हैं, एक पराक्रम दूसरा ऐसा बुढ़ापा कि जिसके निमित्तसे शरीरमें सिकुड़न पड़ जाय ।

विशाखभूतिने शत्रुपक्षको जीत लिया तथा षड्वर्गपर भी जय प्राप्त कर लिया। इसलिये राज्यलक्ष्मी इसको पाकर निरंतर इसतरह अतिवृद्धिको प्राप्त हुई जिस तरह कल्पवृक्षको पाकर कल्पलता वृद्धिको प्राप्त होती है ॥२४॥ युवराज नीति, वीरलक्ष्मी, और बलसंपत्तिकी अपेक्षा अधिक था तो भी अपने काकाका जो कि राज्यपदपर थे उल्लंघन नहीं किया। क्या कोई भी महापुरुष मर्यादाका आक्रमण करता है? ॥२५॥

युवराजने अच्छी तरहसे एक बहुत बढ़िया उपवन—बगीचा बनवाया। जोकि नंदनवनकी शोभाका भी तिरस्कार करता था। तथा जहांपर सम्पूर्ण ऋतु सदा निवास करती थीं। यह बगीचा मत्त भ्रमर और कोयलोंके शब्दोंसे सदा शब्दायमान रहता था ॥२६॥ केवल दूसरी रतिके साथ सहकार—आम्रवृक्षके नीचे बैठे हुए कामदेवको आदरसे मानों ढूंढनेके लिये ही वथा युवराज ललित और विलासपूर्ण स्त्रियोंके साथ तीनों समय उस रमणीय वनमें विहार करता था ॥ २७ ॥

राजाधिराज विशाखभूति और उनकी प्रिया लक्ष्मणाका पहला प्रियपुत्र विशाखनंदी नवीन यौवन और कामदेवसे मत्त तथा निरंकुश हस्तीकी तरह दीप्तिको प्राप्त होने लगा ॥ २८ ॥ एक दिन मत्त हस्तीकी तरह गमन करनेवाले विशाखनंदीने युवराजके दर्शनीय वनको देखकर अन्नग्रहण करना छोड़ दिया, और मातासे नमस्कार करके वह दर्शनीय वन मुझको दे दे दिलादे यह याचना की ॥२९॥ विशाखभूति यद्यपि युवराजपर हृदयसे अद्वितीय आत्महितको रखता था तथापि प्रियाके वचनसे सहसा विकारको प्राप्त हो गया। जिनको अपनी स्त्री ही प्रिय है निश्चयसे उनको अपने दूसरे कुटुम्बके

लोग शत्रुओंके समान हो जाते हैं॥ ३० ॥ लक्ष्मणाने महाराज (विशाभूखति)से एकांतमें आग्रहपूर्वक, क्योंकि वह उसका वल्लभ था, यह कहा कि हे राजन्! मेरे जीवनसे यदि आपको कुछ भी प्रयोजन हो तो वह वन मेरे पुत्रको दे दीजिये ॥ ३१ ॥

राजा किंकर्तव्यतासे व्याकुल हो गया। उसने शीघ्र ही एकांतमें मंत्रिवर्गको बुलाकर सम्पूर्ण वृत्तांत कहा, और उसका उत्तर भी पूछा ॥ ३२ ॥ प्रशस्त मंत्रिगणने कीर्तिसे कहनेके लिये प्रेरणा की। उसने समल दृष्टिसे ही राजाकी नीतिहीन चित्तवृत्तिको जानकर इस प्रकारसे वचन कहना शुरू किया ॥ ३३ ॥ "हे भूवल्लभ! विश्वनंदीने मन वचन और क्रियासे कभी भी आपका अपराध नहीं किया है। जिसकी चेष्टाको कोई भी नहीं जान सकता ऐसे गुप्तचरोंके द्वारा और खुद मैंने भी बहुत वार मिलकर उसकी परीक्षा की है ॥ ३४ ॥ उसको समस्त मुख्य लोक नमस्कार करते हैं। उसके पराक्रमका क्रम नीति-संपादित होता है। हे राजन्! यदि फिर भी आपको उसके जीतनेकी इच्छा है तो कहिये कि समस्त धरातल पर असाध्य क्या है? ॥ ३५ ॥ आपके सहोदरका प्रिय पुत्र आपसे ऐसी अनुकूलता रखता है जैसी कोई नहीं रखता हो; परंतु फिर भी आपकी-जो कि मर्यादाका पालन करनेवाले हैं-बुद्धि उसके विषयमें विमुखता धारण करती है तब यही कहना होगा कि-वैरके उत्पन्न करनेवाली इस राज्यलक्ष्मीको ही धिक्कार है ॥ ३६ ॥ मरनेका हेतु विष नहीं होता, अंधकार भी दृष्टिमार्गको रोकनेमें प्रवीण नहीं है, एवं घोर नरक भी अत्यंत दुःख नहीं दे सकते; किंतु इन सबका कारण नीतिकारोंने स्त्रीको बताया

है ॥ ३७ ॥ आप नीतिमार्गके जाननेवालोंमें प्रधान माने जाते हैं। आपको इस तरह स्त्रीका मनोरथ पूर्ण करना युक्त नहीं है। क्योंकि जो असत्‌-पुरुषोंके वचनके अनुसार प्रवृत्ति करता है वह अवश्य विपत्तियोंका पात्र होता है ॥ ३८ ॥ वह वनकी रमणीयता पर आशक्त है, अतएव यदि आप मांगेंगे तो भी वह उसको देगा नहीं। हे नाथ! आप ही निष्पक्ष दृष्टिसे विचारिये कि अपने२ अभिमतपर भला किसकी बुद्धि लुब्ध नहीं होती? ॥ ३९ ॥ वचनके पराधीन प्रियासे ताड़ित हुए आप वनको न पाकर कोपको प्राप्त होंगे, और फिर रोषसे प्रतिपक्षके पक्षकी कुछ भी अपेक्षा न कर हरण करनेके लिये आप प्रवृत्त होंगे ॥ ४० ॥ उस समय राज्यमें जो २ मुख्य पुरुष हैं वे सभी 'ये मर्यादाके तोड़नेवाले हैं' यह समझकर तुमको छोड़कर उस वीरका ही साथ इस तरह देंगे—उसीमें मिल जायंगे जिस तरह लोकमें प्रसिद्ध नद समुद्रमें मिल जाते हैं ॥ ४१ ॥ आपने दूसरे राजाओंको जीत लिया है तो भी युद्धमें युवराजके सामने आप अच्छे नहीं लगेंगे! चंद्रमा यद्यपि कमलवनको प्रसन्न करनेवाला है तो भी दिनकी आदिमें—प्रातःकालमें किरणोंको विकीर्ण करनेवाले—सब जगह फैलानेवाले सहस्र रश्मि—सूर्यके सामने वह अच्छा नहीं लगता ॥ ४२ ॥ अथवा आपने उसको युद्धकी रंगभूमिसे दैववश या किसी भी तरह परास्त भी कर दिया तो भी जगत्‌में बड़ा भारी लोकापवाद इस तरह व्याप्त हो जायगा जिस तरह रात्रिमें निविड़ अंधकारका समूह व्याप्त हो जाता है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार, नीतिका परित्याग न करनेवाले, विपाकमें रमणीय, विद्वानोंको हितकर, कानोंको रसाय-

नके समान वचन कहकर जब मन्त्रिमुख्यने विराम ले लिया तब राजराजेश्वर इस प्रकार बोला ॥ ४४ ॥ :—

"जैसा आपने कहा वह वैसा ही है । जो कृत्याकृत्यके जाननेवाले हैं उनको यही करना चाहिये । परंतु हे आर्य ! कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे कोई क्षति भी न हो और वह-वन भी मुझसे मिल जाय ॥ ४५ ॥ "

स्वामीके इस तरहके वचन सुनकर विचार-कुशल मंत्री फिर बोला:—हम ऐसे श्रेष्ठ उपायको नहीं जानते जो कि वनकी प्राप्ति और परिपाक दोनोंमें कुशल हो । अर्थात् हमारी दृष्टिमें ऐसा कोई उपाय नहीं आता कि जिससे सुखपूर्वक वन भी मिल सके और परिपाकमें कोई क्षति भी न हो ॥ ४६ ॥ यदि आप कोई ऐसा उपाय जानते हैं तो उसको अपनी बुद्धिसे करिये; क्योंकि प्रत्येक पुरुषकी मति भिन्न २ होती है । और यह ठीक भी है; क्योंकि मंत्री अपने मतको-अपनी सम्मतिके कहनेका स्वामी है; परंतु उसको करना न करना इस विषयमें प्रमाण स्वामी (आप) ही हैं ॥ ४७ ॥ इस तरहके वचन कहकर जब वह मंत्रिमुख्य चुप हो गया तब राजाने मंत्रिओंका विसर्जन कर दिया । और मनमें स्वयं कुछ विचार करके, शीघ्र ही युवराजको बुलाकर उससे बोला—॥ ४८ ॥ मुझे मालूम हुआ है कि कामरूप देशका स्वामी मेरे प्रतिकूल मार्गमें चलने लगा है क्या तुमको यह बात मालूम नहीं हुई है ? अतएव मैं शीघ्र ही उसको नष्ट करनेके लिये जानेवाला हूं । हे पुत्र ! मेरे पीछे राज्यका शासन तुम करना ॥ ४९ ॥ राजाके ये वचन सुनकर और उन पर अच्छी तरह विचार कर विश्वनंदी बोला कि " मेरे

रहते हुए आपको यह प्रयास करनेकी क्या आवश्यकता है ? हे राजन् ! मुझको भेजिये मैं उसको अवश्य जीतूंगा ॥ ५० ॥ किसी प्रतिपक्षीको न पाकर ही मेरा प्रताप बहुत दिनसे मेरी भुजाओंमें ही लीन हो रहा है । हे नरनाथ ! जिसको आपने कभी नहीं देखा है उसीको वहां आप प्रकट करें । अर्थात् मेरा प्रताप आपने अभी तक देखा नहीं है अतएव इस वार उसीको देखियें ॥ ५१ ॥ इस तरहकी सगर्व वाणीको कह कर भी पीछेसे उसने अपने पूर्व शरीरको नम्र कर दिया । अर्थात् राजाके सामने शिरको नवा दिया । राजाने भी शत्रुके ऊपर उसीको भेजा । विश्वनंदीने भी अपने उपवनकी अच्छी तरह रक्षा करके शत्रु पर चढ़ाई कर दी ॥ ५२ ॥

कुछ थोड़ेसे-परिमित दिनोंमें अपने देशको पार करके विश्वनंदी मार्गमें जो२ अनेक राजा नीतिसे इसको आकर प्राप्त हुए उनके साथ २ शीघ्र ही शत्रु देशके समीप जाकर पहुंच गया ॥ ५३ ॥ एक दिन युवराजने जिसकी सारी देहमें घावोंके ऊपर पट्टियां बंधी हुई थीं ऐसे विश्वस्त वनपालको ड्योढ़ीवानके साथ २ सभामें प्रवेश करते हुए दूर हीसे देखा ॥ ५४ ॥ उसने सिंहासन पर बैठे हुए और अनाथ वत्सल नाथको भूमिमें शिर रखकर नमस्कार किया । और उनके पास पहुंचकर विश्वनंदीने अपनी प्रिय दृष्टिसे जो स्थान बताया वहां बैठ गया ॥ ५५ ॥ यद्यपि पहले कुछ देर तक बैठकर अपने घायल शरीरसे ही वह निवेदन कर चुका था तो भी मानों दुहरानेके लिये ही उसने राजाके पूछनेपर अपने आनेका कारण इस तरह बताया ॥५६॥ "आपका उपवन आपके प्रतापके योग्य है; परंतु महाराजकी आज्ञासे हम लोगोंकी अवहेलना करके विशाखनंदीने उसमें प्रवेश किया

है । इस विषयमें वनके रक्षकोंने क्या किया सो आपके सुननेमें पीछे आ जायगा ॥ ५७ ॥ वनपालने उपवनके विषयमें जो समाचार सुनाया उसको जानकार-सुनकर विश्वनंदीको क्रोध आगया तो भी उसका चित्त धीर था इस लिये उसने उस बातको किसी दूसरी हंसी दिल्लगीकी बातसे उड़ा दिया ॥ ५८ ॥ इसके बाद स्नानपूर्वक भोजनादिकके द्वारा उसका खूब सत्कार कराकर स्वयं महाराज, और उनके इस प्रसादको पाकर विनयसे नम्रीभूत हुआ वनपाल दोनों ही शोभाको प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥

विश्वनंदीने अपनी नीति और बढ़ी हुई प्रताप शक्तिके द्वारा शत्रुको नम्र बनादिया । और वह भी शीघ्र ही नमस्कार करके तथा भेट देकरके विश्वनंदी आज्ञासे लौटकर चला गया ॥ ६० ॥

महाराजकी आज्ञाको सफल करके युवराज उसीसमय वहांसे (शत्रुदेशसे) पूज्य राजलोकको वहां छोड़कर अपने देशको शीघ्र ही लौट आया । क्योंकि लौटना बहुत लम्बा था । अर्थात् मार्ग बहुत लम्बा था इस लिये आनेमें समय बहुत लगता किंतु विश्वनंदीको शीघ्र ही आना था इस लिये कार्य सिद्ध होते ही वह राजलोकोंको छोड़करके वहां शीघ्र ही अपने देशको लौट आया ॥ ६१ ॥

विश्वनंदी शीघ्र ही अपने देशमें आ पहुंचा । आकर देखा कि देशमेंसे देशको छोड़ २ कर लोग भाग रहे हैं । उसने अनिरुद्ध नामके एक आदमीसे पूछा कि " कहिये तो यह क्या बात है ? " इस पर उसने जबाब दिया कि ॥ ६२ ॥ " हे स्वामिन् ! विशाखनंदी आपके उपवनके चारो तरफ भयंकर और मजबूत किलेको बनाकर आपके साथ लड़ाई करना चाहता है । किंतु महाराज, आप और

विशाखनंदी दोनोंमें समान-वृत्ति-मध्यस्थ हैं ॥६३॥ इस बातको जान-कर और भयसे कुछ शंकित हो कर यह लोकसमूह जल्दी २ भाग रहा है। हे देव! जिस तरहकी बात लोगोंमें उड़ रही है यह वही बात मैंने कही है, इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं जानता" ॥६४॥ अनिरुद्धके ये वचन सुनकर कुछ विचार करके विश्वनंदी गंभीर शब्दोंमें बोला–" जिस कामके करनेमें मेरी चित्त–वृत्तिको लज्जा आती है, देखता हूं कि विधाता उसीको लेकर आगे खड़ा हुआ है ॥६५॥ यदि मैं लौटकर पीछा जाता हूं तो यह निर्भय सेवक नहीं लौटता है। यदि मैं मारता हूं तो लोकमें अपवाद होता है। अब आप इन दोनोंमेंसे एक काम बताइये कि कौनसा करना चाहिये था कौनसा न करना चाहिये " ॥ ६६॥ जब विश्वनंदीने मंत्रीसे यह प्रश्न किया तब वह स्फुट शब्दोंमें इस तरह बोला–" हे नर नाथ! जिस कामके करनेमें वीर लक्ष्मी विमुख न हो बस एक वही काम करना चाहिये ॥ ६७ ॥ पहले भी यह बात सुनकर कि विशाखनंदीने आपके वनको छीन लिया है, आप उससे विमुख न हुए। किंतु इस समय वह आप ही के वनको छीन कर और जबर्दस्तीसे आपको मारनेकी भी चेष्टा करता है ॥६८॥ अथवा यह भी एक बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे शख्सपर भी आपको क्रोध उत्पन्न क्यों नहीं होता! लोकमें यह देखा जाता है कि यदि कोई वृक्ष अत्यंत उद्धत हो और वह अपने मार्गमें प्रतिकूल पड़ता हो तो उसको नदीका वेग उखाड़ डालता है ॥ ६७ ॥ शत्रु अपना बहुत पराभव करता हो; किंतु उसपर जो मनुष्य अपने पौरु-षका उल्टा प्रयोग करता हो–जिस तरह अपने पौरुषको काममें

लेना चाहिये उस तरह नहीं लेता तो वह मनुष्य पीछेसे अपनी स्त्रियोंके मुखरूप दर्पणमें कलंकके प्रतिबिम्बको देखता है ॥ ७० ॥ यदि तुम्हारेमें उसको बंधुबुद्धि है, वह यदि तुमको अपना बंधु समझता है तो एक ऐसा दूत क्यों नहीं भेजता है कि "मुझसे आपका अपराध हुआ है, अब मैं आपके सामने भयसे हाथ जोड़ता हूं, फिर भी हे आर्य ! आप मुझपर कोप क्यों करते हैं" ॥ ७१ ॥ आप मनस्वियोंके अधीश्वर हैं । आपके पराक्रमका समय यही है। मैंने जो कहा है आप उसपर विचार करें, और विचार करके वही करें; क्योंकि आपकी भुजाओंके योग्य यही है और कुछ नहीं ॥ ७२ ॥ विश्वनंदीने समझा कि मंत्रीके ये वचन नीति जाननेवालों और पराक्रमशालियोंकेलिये मनोज्ञ हैं । इसलिये किसी तरहका विलंब न कर शीघ्र ही विशाखनंदीके किलेकी तरफ उसने उग्रकोपसे प्रयाण किया ॥ ७३ ॥ युद्धके आनेसे जो हर्षित हो उठी थी उस सेनाको कुछ दूर ही छोड़कर सुभटोंके साथ २ युवराज-सिंह दुर्ग देखनेके मिषसे; किंतु मनमें युद्धको रखकर शीघ्र ही आगे गया ॥ ७४ ॥ और उस अनुपम कोटके पास पहुंच गया, जिसकी खाई अलंघ्य थी, जिसके चारो तरफ यंत्र लगे हुए थे, तथा प्रसिद्ध२ वीरोंके झुंड जिसकी रक्षा कर रहे थे, जिसके बहुतसे स्थानोंपर सफेद झंडे उड़ रहे थे, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानों वह दुर्ग झंडेरूपी पंखोंसे दिशाओंकी हवा कर रहा हो ॥ ७५ ॥ जब विश्वनंदी जरासी देरमें खाईको पार करके कोटको भी लांघ गया और शत्रुसैन्यके साथ २ इसका भी तीक्ष्ण खड्ग भग्न हो गया तब उसने झटसे पत्थरका बना हुआ एक खंभा उखाड़ लिया

जिससे कि उसका हाथ दीप्त होने लगा और कोपसे शत्रुपर टूट पड़ा। भावार्थ—विश्वनंदी खाई और कोटको लांघकर जब भीतर पहुंचा तब शत्रुकी सेनासे उसकी मुठभेड़ हुई जिसमें शत्रुकी सेना भग्न हुई, और अंतमें इसका भी खड्ग भग्न हो गया। खड्गके टूटते ही एक पत्थरके खंभको उखाड़कर और उसीको लेकर यह शत्रुपर टूटा॥ ७६॥ उग्र पराक्रमके धारक विश्वनंदीको यमराजकी तरह आता हुआ देखकर विशाखनंदीका सारा शरीर कांपने लगा, भयसे शरीरकी द्युति—कांति मंद पड़ गई, और झटसे कैथके पेड़पर चढ़कर बैठ गया॥ ७७॥ परन्तु जब उस महाबलीने मनमें विचार करनेके साथ ही उस कैथके महान् वृक्षको भी उखाड़ डाला, तब अशरण होकर भयसे त्रासके रससे हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ विशाखनंदी इसीकी शरणमें आया॥ ७८॥ विशाखनंदीको सत्व-हीन तथा पैरोंमें पड़ा हुआ देखकर विश्वनंदीको लज्जा आगई। यह निश्चय है कि—जिनकी पौरुष निधि प्रख्यात है उनका शत्रु यदि मनमें भी नम्र हो जाय तो उनको स्वयमेव लज्जा आ जाती है। ७९॥ रत्नमुकुटसे भूपित विशाखनंदीका मस्तक जो कि नम्र हो रहा था उसको विश्वनंदीने दोनों हाथोंसे ऊपरको उठा दिया और उसको अभय दिया। जिन महापुरुषोंका साहस बढ़ा हुआ हो उनका शरणागतोंके विषयमें यही कर्तव्य युक्त है॥ ८०॥

"मैं इस तरहके कामको जो कि मेरे लिये अयुक्त था करके विशाखभूतिके सामने किस तरह रहूंगा" ऐसा विचार करके और हृदयमें लज्जाको धारण करके विश्वनंदी तप करनेके लिये राज्य छोड़कर घरसे निकल गया॥ ८१॥ मुनियोंके चारित्रका

आचरण करनेके लिये जानेवाले विश्वनंदीको उसके चाचा आकर रोकने लगे यहांतक कि सम्पूर्ण बंधुवर्गके साथ इसके लिये पैरोंमें भी पड़गये; परन्तु तो भी रोक न सके । क्या महापुरुष जो निश्चय कर लिया उससे कभी लौट भी जाते हैं ? ॥८२॥ पहले मंत्रिओंके वचनका उल्लंघन करके जो कुछ किया उस विषयमें पश्चात्ताप करके महाराज विशाखभूतिने भी लोकापवादसे चकित होकर–डरकर अपने पुत्र–विशाखनंदीके ऊपर समस्त लक्ष्मीका भार छोडकर विश्वनंदीका अनुगमन किया ॥ ८३ ॥ काका और भतीजे दोनों ही हजारों राजाओंके साथ संभूत नामके मुनिराजके निकट गये । वहां उनके चरणयुगलको शिर नवाकर नमस्कार किया । तथा उन राजाओंके साथ दोनोंने मुनिदीक्षाको ग्रहण किया जिससे कि वे बहुत दीप्त होने लगे; ठीक ही है तप मनुष्योंका अद्वितीय भूषण ही है ॥ ८४ ॥ विशाखभुतिने चिरकालतक तपश्चर्या की, बिना किसी तरहके कष्टके दुर्निवार परीषहोंको जीता, तीनों शल्योंका (माया मिथ्या निदानका) परित्याग किया, अन्तमें दशमें स्वर्गमें जाकर प्राप्त हुआ जहांपर कि इसको अनल्प सुख प्राप्त हुआ और सोलह सागरकी आयु प्राप्त हुई ॥ ८५ ॥

विशाखनंदीके कुटुम्बके एक राजाको शीघ्र ही मालूम हो गया कि विशाखनंदी दैव और बलप्रयोगसे भी रहित है, तब उसने युद्धमें उसको जीतकर राजधानीके साथ २ राजलक्ष्मीको ले लिया ॥ ८६ ॥ विशाखनंदीको पेट भरनेके सिवाय और कुछ नहीं आता । इसी कारणसे लोग निःशंक होकर अंगुली दिखा२ कर यह कहते थे कि पहले ये ही राजा थे तो भी वह अपने मानको छोड़कर अत्यन्त निर्लज्ज कामोंसे राजाकी सेवा करने लगा था ॥ ८७ ॥

एक दिन उग्र तपश्चरणकी विभूतिको धारण करनेवाले और जिनका शरीर मासोपवासके करनेसे कृष हो रहा था ऐसे विश्वनंदीने अत्यन्त उन्नत धनिओंके मकानोंसे पूर्ण मथुरा नगरीमें अपने समयपर भिक्षाके लिये प्रवेश किया ॥ ८८ ॥ गलीके मुखपर—गलीमें घुसते ही किसी पशुके सींगका धक्का लगते ही ये साधु गिर गये। इनको गिरा हुआ देखकर विशाखनंदी जो कि पास ही एक वेश्याके मकानके ऊपर बैठा हुआ था हंसने लगा ॥ ८९ ॥ बोला—जिस बलसे पहले किलेको और समस्त सेनाको जीत लिया था, पत्थरके विशाल खंभको तथा कैथके वृक्षको भी उखाड़ डाला था, तेरा वह बल आज कहां गया? ॥ ९० ॥ विश्वनंदीने इन वचनोंको सुनकर और विशाखनंदीकी तरफ देखकर अपना क्षमा गुण छोड़ दिया। और उसी तरह—विना आहार लिये उलटा वनको प्रयाण किया। अंतमें वहां निदान बंध करके अपने शरीरका परित्याग किया। ठीक ही है—कोप ही अनर्थ परंपराका कारण है ॥ ९१ ॥ निदान सहित शरीरके छोड़नेसे महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गको प्राप्त कर इंद्र तुल्य विभूतिका धारक देव हुआ। वहां इसकी सोलह सागरकी आयु हुई। इसकी लालसासे युक्त इंद्रियां स्वर्गीय अंगनाओंके देखनेमें ही लगी रहतीं ॥९२॥ विचित्र मणियोंकी किरणोंसे जिनसे कि समस्त दिशाओंके मुख भी चौंध जाते हैं चंद्रमाकी किरणोंके समूहकी कांतिका भी हरण करनेवाले, तथा जिसकी अनेक शिखरोंपर सफेद ध्वजाएं लगी

१—एक महीना तक चारों तरहके (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) आहारके त्यागको मासोपवास कहते हैं।

हुई हैं; और जो समस्त सुख–संपत्तिका स्थान है ऐसे उत्तम विमानको पाकर वह विश्वनंदीका जीव अत्यंत तृप्त हुआ ॥ ९३ ॥ लक्ष्मणाके इस कृपण पुत्रने अनुपम जैन व्रतको पाकर भी आकाशमें प्रचुर वैभवके धारक किसी विद्याधरोंके स्वामीको देखकर भोगोंकी इच्छासे खोटा निदान बांधा। जिससे कि वह तप करके समीचीन व्रतोंके पालन और कायक्लेशके प्रभावसे दशमें स्वर्गमें पहुंचा ॥ ९४ ॥

इस प्रकार अशग कवि कृत वर्द्धमान चरित्रमें विश्वनंदिनिदान नामका चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

पांचवां सर्ग।

जम्बूद्वीपमें भारत नामका एक क्षेत्र है। उसमें विजयार्ध नामका एक पर्वत है। जिसकी अत्यंत उन्नत अनेक शिखरोंकी किरणोंसे सम्पूर्ण आकाशमंडल सफेद हो जाता है ॥ १ ॥ जिस पहाड़के ऊपर निर्मल स्फटिककी शिखरोंकी टोंकपर खड़ी हुई अपनी बहुओंको देख कर विद्याधर लोक समानताके कारण भ्रममें पड़ कर पहले देवांगनाओंकी तरफ जाते हैं; किंतु उनके हंसते ही झट लौट आते हैं ॥ २ ॥ जिसके आसपासके समीपवर्ती छोटे २ पर्वतोंपर प्रकाशित होनेवाली मणिओंकी प्रभासे सिंहके बच्चे कितनी ही वार ठगे गये हैं—वे अपने मनमें गुहाके द्वारकी शंका करने लगते हैं—वे समझने लगते हैं कि यहां गुहाका द्वार है परंतु घुसते ही वंचित हो जाते हैं। इसीलिये वे सच्ची गुहाओंमें भी बहुत देर तक नहीं घुसते ॥ ३ ॥ शिखरोंमें लगी हुई पद्मरागमणिओंकी किरणोंसे जब आकाश लाल पड़ जाता है तब नित्य अनंत तेजका धारक वह मनोज्ञ पर्वत

अत्यंत शोभाको प्राप्त होता है, और उसको देखकर यह संदेह होने लगता है कि कहीं संध्या तो नहीं हो गई ॥ ४ ॥ जहां जंगली मदांध हस्ती पर्वतके किनारोंमें अपनी प्रतिबिंबको देखकर दौड़कर वहां आते हैं और दूसरा हस्ती समझकर उसके उपर अपने दांतोंका प्रहार करने लगते हैं । ठीक ही है—जो मत्त होते हैं क्या उनको विवेक रहता है? ॥५॥ जिसके लगनेसे ही जहर चढ़ जाय ऐसी जहरीली वायुकी उत्कटतासे जिनका फण विकराल हो रहा है ऐसे भुजंग वहां इधर उधर घूमा करते हैं; परंतु गरुड़मणिओंकी स्वच्छ किरणोंका स्पर्श होते ही वे विषरहित हो जाते हैं ॥ ६ ॥ इस पर्वतकी पश्चिम श्रेणीमें अलका नामकी नगरी है जो पृथ्वीकी तिलकके समान है । वहां उत्सव और गाने बजानेके शब्दोंसे दिशाएं पूर्ण रहती हैं । जिससे वह ऐसी मालूम पड़ती है मानों साक्षात् स्वर्गपुरी हो ॥ ७ ॥ इस नगरीकी शोभायमान विशाल खाईने अपने अत्यंत प्रचारसे दिशाओंको पूर्ण कर दिया है । यह खाई सत्पुरुष या समुद्रके समान मालूम पड़ती है; क्योंकि यह भी सत्पुरुष या समुद्रकी तरह महाशय, अत्यंत धीर, गंभीर, और अधिक सत्वकी धारक है । जिस तरह सत्पुरुष महान् आशय—अभिप्रायको धारण करता है, तथा जिस तरह समुद्र महान् आशय गड्ढोंको धारण करता है उसी तरह खाई भी महान्—बड़े २ आशयों—गड्ढोंको धारण करती है । जिस तरह सत्पुरुष धीर और गंभीर होता है उसी तरह समुद्र और खाई भी धीर—स्थिर और गंभीर—गहरे हैं । जिस तरह सत्पुरुष अधिक सत्वका—पराक्रमका धारक होता है उसी तरह समुद्र और खाई भी अधिक सत्व—प्राणिओंके धारक हैं ॥८॥

इस नगरीका विशाल परकोटा सती स्त्रीके वक्षःस्थलके समान मालूम होता है; क्योंकि दोनों ही किरणजालसे स्फुरायमान हैं, और परपुरुषके लिये अभेद्य हैं। दोनोंकी मूर्ति भी निरवद्य हैं, तथा दोनों ही की श्रेष्ठ अम्बरश्रीने (आकाशश्रीने दूसरे पक्षमें वस्त्रकी शोभाने) पयोधरोंका (मेघोंका दूसरे पक्षमें स्तनोंका) स्पर्श कर रक्खा है॥ ९॥ बाहरके दरवाजे—सदर फाटकके आगे खड़े हुए कोटमें जो कंगूरा खुदे हुए हैं उनके मध्य भागमें आकर विलीन होजानेवाली शरद् ऋतुकी मेघमाला उत्तम दुपट्टेकी शोभाको धारण करती है॥ १०॥ महलोंके ऊपर लगे हुए झंडे मंद २ वायुको पाकर हर्षित—चंचल होने लगते हैं। जो ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों ये झंडे नहीं हैं किंतु इस नगरीके हाथ हैं, जिनको ऊपरको उठा कर यह नगरी मानों स्वर्गीय पृथ्वीको बुलाकर उसे अपनी चारो तरफकी शोभाको हमेशा दिखाती हो॥ ११॥ जहांके वैश्य अच्छे नैयायिककी तरह विरोधरहित तथा प्रसिद्ध मानसे सत् और असत्का विचार करके किसी भी वस्तुका अच्छी तरह निर्णय करते हैं, और दक्षतासे अपनें वचनोंका प्रयोग करते हैं। भावार्थ—जिस तरह कोई नैयायिक प्रसिद्ध—प्रमाणसे सिद्ध तथा अव्यभिचारी प्रमाणके द्वारा सत् असत्का निर्णय करके किसी वस्तुका ग्रहण करता है उसी तरह इस नगरीके बनिये किसी चीजको भली बुरी देखकर, जिसमें किसीका विरोध न हो तथा प्रसिद्ध—जिसको सब जानते हों ऐसे मानसे—तराजू आदिकसे तोल कर लेते हैं। और नैयायिककी तरह ही अपने वचनोंका बड़ी दक्षतासे प्रयोग करते हैं॥ १२॥ इस अलका नगरीमें कोई अकुलीन नहीं थे, थे तो तारागण थे;

क्योंकि कु नाम पृथ्वीका है सो तारागण पृथ्वीसे कभी लीन नहीं होते—स्पर्श नहीं करते; किंतु ताराओंको छोड़कर नगरीमें और कोई भी अकुलीन—नीचकुली नहीं था। इसी तरह यहांपर सदा दोषाभिलापी कोई थे तो उल्लू ही थे, अर्थात यहां कोई मनुष्य दोषोंकी अभिलाषा नहीं करता था; किंतु उल्लू ही सदा दोषा—रात्रिकी अभिलाषा रखते थे। यहां कोई मनुष्य अपने सद्वृत्तका—सदाचारका भंग नहीं करता था; किंतु सद्वृत्तका—श्रेष्ठ छंदोंका भंग केवल गद्य रचनामें ही होता था, यहां रोध होता तो शत्रुओंका ही होता औरका नहीं ॥ १३ ॥ दंड केवल ध्वजामें ही पाया जाता, किसी पुरुषको दंड नहीं होता था। बंध केवल मृदंगका ही होता। भंग—कुटिलता सुंदरिओंके केशोंमें ही पाई जाती। विरोध केवल पींजरोंमें ही रहता—वि अर्थात् पक्षियोंका रोध अर्थात विराव केवल पींजरोंमें ही मिलता, और कहीं भी विरोध—झगड़ा नहीं दीखता था। वहां कुटिलताका सम्बंध केवल सांपोंकी गतिमेंही रहता है—अन्यत्र नहीं ॥ १४ ॥

इस नगरीका स्वामी नीलकंठ नामका महा प्रभावशाली राजा था। वह विद्याधर और धैर्यरूप धनका धारक था। इंद्रके समान क्रीड़ा करनेवाला तथा विविध ऋद्धियोंका स्वामी था। इसका सुंदर हृदय विद्याओंके संबंधसे उन्नत था॥ १५ ॥ यह राजा श्रेष्ठ पुरुषोंसे पूजनीय जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति—प्रजा आसक्त रहती है तथा जिसका उदय नित्य रहता है, और जो अंधकारके प्रचारको दूर करनेवाला

इस श्लोकके अंतमें "सदनस्य चाक्ष" ऐसा पाठ है, उसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आया।

है ऐसे सूर्यके समान प्रतापी था । इसीलिये जिसतरह सूर्य पद्माकरका—कमलवनका स्वामी होता है उसी तरह यह भी पद्माकर-का—लक्ष्मी समूहका स्वामी था । अधिक क्या कहा जाय, यह राजा जगतका अद्वितीय दीपक था ॥ १६ ॥ इस राजाकी मनोहर शरीरको धारण करनेवाली कनकमाला नामकी रानी थी । वह ऐसी मालूम होती थी मानों कमलरहित कमला हो, अथवा मूर्तिको धा-रण करके स्वयं आकर प्राप्त होनेवाली कांति हो, यद्वा कामदेवकी स्त्री—रति हो ॥१७॥ श्रेष्ठ कदली मानों इसकी जंघाओंकी मृदुतासे अत्यंत लज्जित होकर ही निःसारताको प्राप्त हो गई, अत्यंत कठिन भी वेल इसके पयोधरोंसे—स्तनोंसे जीते जानेके कारण ही मानों वनमें जाकर रहने लगा है ॥ १८ ॥ यह सुंदर नीलकमल इसके नेत्रकमलोंके आकारको न पाकरके ही मानों अपने मानको छोड़कर पराभवजनित संतापको दूर करनेकी इच्छासे अगाध सरो-वरमें जाकर पड़ गया है ॥ १९ ॥ पूर्ण भी चंद्र इसके मुखकी शोभाको न पानेसे कलंकित ही रहा । ऐसा कौन पदार्थ है जो मत्त-मातंग—हस्तीकी गतिको भी तिरस्कृत करदेनेवाली इस रमणीकी कांतिसे अपमानको प्राप्त न हुआ हो॥२०॥ यह कनकमाला श्रेष्ठ गुणोंसे भूषित, मधुर भाषण करनेवाली, और निर्मल शीलसे युक्त थी। इसमें विद्याधर-की—नीलकंठकी असाधारण भक्ति थी । भला कौन ऐसा होगा जो मनोहर वस्तु पर आशक्त न हो ? ॥२१॥ कमनीय मूर्तिके धारण करनेवाले इन दोनोंके यहां विशाखनंदीका जीव स्वर्गसे उतरकर पुत्र हुआ । उसी समय ज्योतिषीने हर्षित होकर बताया कि यह पुत्र इस समीचीन भारतवर्षके आधे भागका स्वामी होगा ॥२२॥

जिसके गर्भभारसे क्लांत होनेपर भी माता तीन लोकको जीतनेकी इच्छा करने लगी, तथा सूर्यके भी ऊपर आनेपर मुख और नेत्र क्रोधसे लाल करने लगी। उस पुत्रका जन्म होते ही राजाने पृथ्वीको "देहि" इस शब्दसे रहित कर दिया—अर्थात् इतना दान दिया कि जिससे पृथ्वीभरमें कोई याचक ही न रहा। तथा सम्पूर्ण आकाश मंडलको आनंद बाजे और सुंदर गीतोंके नादसे शब्दात्मक बना दिया ॥२३-२४॥ विद्याधरोंमें श्रेष्ठ नीलकंठने जिनेंद्र देवकी बड़ी भारी पूजा करके और अपने गोत्रके महान् २ पुरुषोंकी अनुज्ञा ले करके इस तेजस्वी पुत्रका नाम हयकंधर अश्वग्रीव रक्खा ॥२५॥ लक्ष्मीको प्रिय, कोमल और शुद्ध पादको धारण करनेवाला, लोगोंके नेत्रकमलोंको आनंद उत्पन्न करनेवाला, और कलासमूहको प्राप्त करनेवाला यह बालचंद्र दिन पर दिन बढ़ने लगा ॥२६॥ एक दिन यज्ञोपवीतको धारण करके यह अश्वग्रीव गुफामें पल्यंक आसन मांड़कर बैठा। वहां पर इसने जब तक अच्छी तरह ध्यान करना शुरू भी नहीं किया कि इतने हीमें इसके सामने सम्पूर्ण विद्यायें आकर उपस्थित हो गई। अर्थात्—हयकंधरको शीघ्र ही समस्त विद्यायें सिद्ध हो गई ॥२७॥ इस तरहसे यह कृतार्थ होकर, सुरगिरिकी—मेरुकी शिखरोंपर जो चैत्यालय हैं उनको प्रणाम करके और उनकी प्रदक्षिणा करके, तथा पांडुक शिलाकी पूजा करके, घरको लौट आया ॥२८॥ हजार आरोंसे युक्त चक्रको, अमोघशक्तिके धारण करनेवाले दंड और खड्गको तथा श्वेत छत्रको इसने प्राप्त किया। जिससे कि आधे भरतक्षेत्रकी लक्ष्मीका आधिपत्य भी इसको प्राप्त हुआ। भला पुण्यका उदय होनेपर क्या साध्य नहीं होता ॥२९॥ अत्यंत उन्नत और कठिन स्तनोंकी शोभा-

से भूषित, सुंदर ईषत् हास करनेवाली, अड़तालीस हजार, इसकी मनोहर नितंबिनी हुई ॥ २० ॥ जिनका साहस उन्नत है, तथा जो विद्या और प्रभावमें उन्नत और प्रसिद्ध हैं, ऐसे सोलह हजार राजाओंके साथ अश्वग्रीव समस्त दिशाओंको कर देनेवाला बनाकर राज्य करने लगा ॥ २१ ॥

भारतवर्षमें स्वर्गके समान सुरमा नामका अनुपम देश है, जो ऐसा मालूम होता है मानों जगत्में जो अनेक प्रकारकी कांति-शोभा देखनेमें आती हैं वे सब यहां स्वयमेव इकठी हो गई हैं ॥ २२ ॥ जहांके वृक्ष भी सत्पुरुषोंके साथ२ समस्त साधारण मनुष्योंको अपने नीचे करनेवाले, जिनके फलको अर्थी—याचक स्वयमेव ग्रहण करते हैं ऐसे और उन्नति सहित तथा सरस हो गये हैं ॥२३॥ जहांकी अटविओंकी—वनिओंकी नदिओंके तीरका जल कमलिनिओंके सरस पत्तोंसे ढक जाता है । अतएव उसको प्यासी—तृषातुर भी हरिणी सहसा पीती नहीं है; क्योंकि उसकी बुद्धि इस भ्रममें पड़ जाती है कि कहीं यह हरिन्मणियोंका—पन्नाओंका बना हुआ स्थल तो नहीं है ॥ २४ ॥ यहांकी नदियां और अंगना दोनों समान शोभाको धारण करनेवाली हैं । क्योंकि स्त्रियां सुपयोधरा—सुंदर स्तनोंको धारण करनेवाली हैं, नदियां भी सुपयोधरा— सुन्दर पय—जलको धारण करनेवाली हैं स्त्रियोंके नेत्र मछलियोंकी तरह चंचल होते हैं, नदियोंके भी मछलियां ही चंचल नेत्र हैं । स्त्रियां कलाओंको धारण करनेवाली हैं, नदियां भी कलकल शब्द करनेवाली हैं । स्त्रियां कृष लहरोंके समान भूजाओंको धारण करती हैं, नदियां कृष लहरोंको ही भूजा बनाकर धारण करती हैं ।

स्त्रियोंके नितंब—स्थानोंका लोग—उनके पति सेवन करते हैं,नदियोंके नितंब—स्थानोंका—तटोंका भी लोग सेवन करते हैं। स्त्रियां पापसे रहित हैं, नदियां कीचसे रहित हैं। इस तरह यहांकी स्त्रियां और नदियां दोनों समान हैं॥ ३५ ॥ इस देशने अपने उन ग्रामोंसे कुरुदेशको भी नीचा बना दिया, जो कि सदा पुष्प और फलोंसे लदे रहनेवाले सुंदर वृक्षोंसे व्याप्त हैं, सुधा समान या सुधा—कलईसे धवल महलोंसे पूर्ण हैं, तथा जिनमें उज्वल पुरुष निवास करते हैं॥ ३६ ॥

इस देशमें विद्वानोंसे भरा हुआ पोदन नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा नगर है। जिसने अपनी कांतिसे दूसरे समस्त नगरोंको नीचा कर दिया है। यह ऐसा मालूम होता है मानो आकाशसे स्वर्ग ही उतर आया है॥ ३७॥ जहांपर रात्रिके समय मकानोंके ऊपरकी जमीन—छत, जिसकी कि प्रभा मणियोंके दर्पणकी तरह निर्मल है तारागणोंकी प्रतिबिम्बके पड़ जानेपर ठीक ऐसी शोभाको प्राप्त होती है मानों इसपर चारों तरफ नवीन—अनविंध मोती बिखर गये हैं॥ ३८॥ जहांपर स्फटिक मणियोंके बने हुए मकान हिमालयकी सम्पूर्ण शोभाको धारण करते हैं। क्योंकि यहांके मकान भी हिमालयकी तरहसे ही धवल मेघोंसे घिरे रहते हैं। एवं जिस तरह हिमालयमें बहुतसी भूमि—गुहा होती हैं उसी तरह मकानोंमें भी बहुतसी भूमि—खन हैं। जिस तरह हिमालयके ऊपर तारागणोंके समान पक्षियोंकी पंक्ति रहती है उसी तरह मकानोंके ऊपर भी रहती है ॥ ३९ ॥ जहांके सामान्य तलावोंके तटोंपर लगी हुई शिरीष समान कोमल हरिन्मणियोंकी—पन्नाओंकी कांति, नवीन शैवालके

खाईमें कौतूहल-क्रीड़ा करनेवाली मस्त हंसनियोंको ठग लेती है ॥ ४० ॥ जहांके मकानोंके ऊपर चंद्रकांत मणि तथा नीलमणि दोनों लगी हुई हैं। उनमेंसे नीलमणिके कांतिपटलसे जब रात्रिके समयमें चंद्रमाका आधा भाग ढक जाता है तब उसको युवतियां सहसा देखकर यह समझने लगती हैं मानों इसको राहूने ग्रस लिया है ॥ ४१ ॥ जहां पर घरकी बावड़ियोंकी मंद २ लहरोंसे उत्पन्न होनेवाली वायु वहांकी ललनाओंके मुखकमलकी सुगंधिको लेकर निरंतर इस तरह उड़ती रहती है मानों ध्वजाओंमें लगे हुए सुंदर वस्त्रोंकी गणना कर रही हो ॥४२॥ जहां पर निर्मल रत्नोंकी बनी हुई भूमिमें सूर्य मंडलका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको कोई मुग्ध-वधू तपाये हुए सुवर्णका दर्पण समझकर सहसा उठाने लगती है, परंतु उसकी सखी जब उसको ऐसा करते हुए देखती है तब वह हसने लगती है ॥४३॥ खाई और कोटके बनानेसे शत्रुपक्षको यह बात सूचित होती है कि हमारा इसको भय है। अतएव सत्पुरुषोंको उनके-खाई और कोटके बनानेसे भी क्या फायदा है। ऐसा समझ कर ही मान धनको धारण करनेवाले बाहुबलीने इस नगरकी न तो खाई ही बनवाई थी और न कोट बनवाया था ॥ ४४ ॥ इस अप्रतिम नृपतिने इस नगरको भूषित कर रक्खा था। वह अपने गुणोंसे सार्थक प्रजापति था। उसके चरणयुगल, समस्त भूपालोंके-राजाओंके मुकुटोंपर लगी हुई मणियोंकी कांति-मंजरीसे जटिल रहते थे ॥ ४५ ॥ जिसके आत्मगुण अत्यंत निर्मल हैं, जो समस्त प्राणिगणकी परिस्थितिसे भूषित रहता है, ऐसे इस महापुरुषोंमें श्रेष्ठ राजाको पाकर लक्ष्मी भी इस तरह अत्यंत शोभाको प्राप्त हुई जिस तरह आकाशमें रहनेवाली

कला-चंद्रकला रात्रिसमयमें चंद्रमाको पाकर शोभाको प्राप्त होती है ॥४६॥ यह राजा धैर्यको धारण करनेवाला, विनयरूपी सारभूत धनको ग्रहण करनेवाला, और नीतिमार्गमें सदा स्थित रहनेवाला था। इसकी मति विशुद्ध थी। इसने अपने इंद्रिय और मनके संचारको अपने वशमें कर रक्खा था। यह इस तरह शोभाको प्राप्त होता था मानों स्वयं प्रशमका-शांतिका स्वरूप ही हो ॥४७॥ जगत्‌में इसने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि वह शत्रुओंमें सदा अपने महान् पौरुषको लगाता है, सज्जनोंसे प्रेम करता है, प्रजाका नय (न्याय) और गुरुओंका विनय करता है, एवं जो उसको आकर नम्र होते हैं उनको वह खूब धन देता है ॥ ४८ ॥

इस विभुके अपनी कांतिसे अप्सराओंको भी जीतनेवाली जयावती और मृगवती नामकी दो रानियां थीं। इन दोनोंको पाकर यह राजा इस तरह शोभाको प्राप्त होने लगा मानों उसने मूर्तिमती धृति (धैर्य) और साधुताको ही प्राप्त कर लिया हो ॥४९॥ ये दोनों ही अनन्यसाधारण थीं। ये ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों स्वयं लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही प्रकट हुई हों। इन्होंने अपनी मनोज्ञताके कारण पृथ्वीनाथको एकदम अपने वशमें कर लिया था ॥ ५० ॥

विशाखभूति स्वर्गसे उतरकर इसी राजाके यहां विजय नामका पुत्र हुआ। जो पहले मगधदेशका अधिपति था वह अब यहां जयावतीके हर्षका कारण हुआ ॥ ५१ ॥ जिस तरह संसारमें पूर्ण शशी-चंद्रमा निर्मल आकाशको, फूलोंका महान् उद्गम-फूलना उपवनको, प्रशम-शांति-क्रोधादिक कषायोंका न होना प्रसिद्ध यत

अभ्यस्त श्रुत-शास्त्रज्ञानको अलंकृत करता है उसी तरह वह भी अपने धवल कुलको अलंकृत करने लगा ॥ ५२ ॥

पृथ्वीका साधन करनेके लिये ही स्वर्गसे आनेवाले निर्मल देवको मृगवतीने अपने उदरके द्वारा शीघ्र ही धारण किया, मानों सीपने पहली जलविंदुको धारण किया ॥ ५३ ॥ मृगवतीका मुख बिलकुल पीला पड़ गया, मानों उदरके भीतर रहनेवाले बालकके यशका सम्बन्ध हो जानेसे ही वह ऐसा हो गया । उसका शरीर भी कृष हो गया, क्योंकि वह गर्भभारके वहन करनेमें असमर्थ थी ॥ ५४ ॥ शत्रुपक्षकी लक्ष्मीके साथ २ इसके स्तन युगलका मुख भी काला पड़ गया । और सम्पूर्ण पृथ्वीके साथ २ इसका उदर भी हर्षसे बढ़ने लगा ॥५५॥ सारभूत खजानेको धारण करनेवाली पृथ्वीकी तरह, अथवा उदयाचलसे छिपे हुए चंद्रमाको धारण करनेवाली रात्रिकी तरह, प्रथम गर्भको धारण करनेवाली मृगवतीको देखकर राजा हर्षित होने लगा ॥ ५६ ॥ क्रमसे गर्भ संम्बन्धी समस्त सुंदर विधिके पूर्ण हो जाने पर ठीक समय पर मृगवतीने इस तरह पुत्रका प्रसव किया जिस तरह शरद ऋतुमें कमलिनी विपुल गंधसे पूर्ण, लक्ष्मीके निधान, मुकुलित कमलको उत्पन्न करती है ॥ ५७ ॥

जिस समय पुत्रका जन्म हुआ उसी समय सारे नगरमें बड़ी भारी हर्षकी वृद्धि हो उठी । और चारो तरफ निर्मल आकाशसे पांच प्रकारके रत्नोंकी वृष्टि होने लगी ॥ ५८ ॥ बाजोंकी निर्दोष लय और तालके साथ २ राजमहलमें मयूरोंका समूह भी उत्सवमें मन लगाकर वारांगनाओंके वेश्याओंके साथ२ नृत्य करने लगा ॥५९॥

धवल छत्र और उसके सिवाय दूसरे भी सब तरहके राज चिन्होंको छोड़कर बाकीके अपने २ मनके अभिलषित धनको राज्यके लोगोंने सहसा स्वयं प्राप्त किया ॥ ६० ॥

अतुच्छ शरीरके धारक तीन कालकी बातोंके जाननेवाले ज्योतिषीने जो कि सम्पूर्ण दिशाओंमें शिरोभूषणकी तरह प्रसिद्ध था राजासे यह स्पष्ट कह दिया कि आपका यह पुत्र अर्ध चक्रको धारण करनेवाला होगा ॥ ६१ ॥ राजाने अपने कुलके योग्य जिनेंद्र देवकी महती पूजाको विधि पूर्वक करके जन्मसे दशमें दिन हर्षसे पुत्रका 'त्रिपिष्ट' यह नाम रक्खा ॥ ६२ ॥ शरद ऋतुके आकाशकी शोभाको चुरानेवाले शरीरके द्वारा धीरे २ कठिनताको प्राप्त करते हुए राजाकी रक्षासे वह इस तरह बढ़ने लगा जिस तरह समुद्रमें अमूल्य नीलमणि बढ़ती है ॥ ६३ ॥ असाधारण बुद्धिके धारक त्रिपिष्टने राजविद्याओंके साथ २ सम्पूर्ण कलाओंको स्वयमेव सीख लिया। अहो! गुणोंका संग्रह करनेमें प्रयत्न करनेवाला बालक भी जगत्‌में सत्पुरुष होता है। भावार्थ—गुणोंके होने पर एक बालक भी महापुरुष समझा जाता है। तदनुसार त्रिपिष्टने भी बाल्यावस्थामें विद्याओंको और कलाओंको प्राप्त कर लिया इसी लिये वह बालक होने पर महापुरुष समझा जाने लगा। ६४ ॥

जिस तरह वसंत ऋतुमें आम्र वृक्षके सम्बंधसे पहले ही निकलनेवाले बौरकी शोभा होती है और उस बौरको पाकर आम्र वृक्ष अच्छा लगता है, उसी तरह त्रिपिष्टको पाकर यौवन अत्यंत शोभाको प्राप्त हुआ, और यौवनको पाकर त्रिपिष्ट भी अत्यंत सुभगताको प्राप्त हुआ ॥६५॥ क्षत्रियोंके हरण करनेवाले

पुरुषश्रेष्ठ त्रिपिष्टका विजयगोपी पहले ही अप्रकटरूपसे स्वयमेव इस तरह आलिंगन करने लगी जिस तरह कोई अभिसारिका स्त्री जिसकी कि बुद्धि कामदेवसे व्याकुल हो उठी हो अपने मनोभिलषित पुरुषका आलिंगन करे ॥ ६ ॥

एक दिन राजा सिंहासनके ऊपर, जिसमेंसे कि लगी हुई पद्मराग (माणिक) मणियोंकी किरणोंके अंकुर निकल रहे थे, सभाभवनमें अपने दोनों पुत्र तथा दूसरे राजकीय लोगोंके साथ आनंदसे बैठा हुआ था ॥६७॥ उसी समय एक बुद्धिवान् प्रांतीय मंत्रीने राजासे अपने कर कमलोंको मुकुलित करके—हाथ जोड़कर और नमस्कार कर प्रकट रूपमें इस बातकी सूचना की कि हे पृथ्वीनाथ ! आपकी असिलताकी तीक्ष्ण धारसे पृथ्वी सब जगह सुरक्षित है तो भी एक बलवान् सिंह उसको बाधा दिया करता है। अहो ! जगत्में कर्मरूप शत्रु बड़ा बलवान् है ॥ ६८-६९ ॥ उसको देखकर ऐसा भ्रम हो जाता है कि क्या सिंहके छलसे स्वयं यमराज पृथ्वीकी हिंसा कर रहा है ? अथवा कोई महान् असुर है ? यद्वा आपके पूर्व जन्मका शत्रु कोई देव है ! क्योंकि उस तरहका कार्य सिंहका नहीं हो सकता ॥ ७० ॥ शहरके सम्पूर्ण लोगोंने उसके भयसे अपने स्त्रीपुत्रोंकी तरफ भी दृष्टि नहीं दी है और वे आपके शत्रुओंकी तरह पलायन कर गये हैं—भाग गये हैं। संसारियोंको अपने जीवनसे अधिक प्रिय कुछ भी नहीं है ॥७१॥ सिंहके निमित्तसे प्रजाको जो व्यथा हो रही थी उसको मंत्रीके वचनोंसे सुनकर राजाको उस समय हृदयमें बहुत संताप हुआ। अहो ! यह बात निश्चित है कि जगत्को उसका दोष ही संतापका देने-

वाला होता है ॥७२॥ राजा गंभीर शब्दोंसे सम्पूर्ण सभाभवनको रुद्ध करता हुआ इस तरह बोला मानों चंद्रमाके समान दांतोंसे अपने हृदयके भीतरकी निर्मल कृपाको ही बखेर रहा हो ॥७३॥ राजा बोला कि संसारमें धान्यकी रक्षा करनेके लिये घासका आदमी बना दिया जाता है तो उससे भी मृग वगैरहको भय होने लगता है। परंतु जिसने समस्त राजाओंको कर देनेवाला बना लिया वह उस घासके आदमीसे भी अधिक असामर्थ्यको प्राप्त हो गया है, यह कितनी निंदाकी बात है ॥ ७४॥ जगतके भयका निवारण किये विना ही जो जगत्का अधिपति बनता है उसको नमस्कार करनेवाली भी जनता इस तरह वृथा देखती है जिस तरह चित्रामके राजाको ॥ ७५ ॥ इस समय सिंह मार डाला जायगा तो भी क्या यह अपयश समस्त दिशाओंमें नहीं फैलेगा कि मनुवंशमें उत्पन्न होनेवाले पृथ्वीपतिके रहते हुए भी प्रजामें इस तरहकी ईति (उपद्रव) उत्पन्न होगई ॥ ७६ ॥ इस तरहके वचनोंको कहकर राजा उसी समय भ्रकुटियोंको चढ़ाकर सिंहको मारनेके लिये स्वयं उठा; किंतु विजयके छोटे भाईने पिताको रोककर और कुछ हँसकर तथा नमस्कार करके पीछेसे इस तरह कहना शुरू किया ॥ ७७ ॥

"हे तात ! जगत्में पशुओंका निग्रह करनेके लिये भी यदि आपको इतना बड़ा प्रयत्न करना पड़ा तो बतलाइये कि अब इसके सिवाय और ऐसा कौनसा काम है कि जिसको पहले हम सरीखे पुत्र करें ? ॥ ७८ ॥ इसलिये हे आर्य ! आपका जाना युक्त नहीं है।" इस तरह राजासे कहकर अद्वितीय सिंहके समान वह बल-

वांन् विजयका छोटा भाई उसकी—राजाकी आज्ञासे सेनाके साथ सिंहका वध करनेके लिये गया ॥ ७९ ॥ वहां उसने ऐसे मनुष्योंके विनाशको देखा कि जो, नखोंके अग्रभागोंसे गिरी हुई मनुष्योंकी आंतोंको ग्रहण करनेके लिये आकाशमें व्याकुल हो उठनेवाले गृध्रकुल—बहुतसे गीधोंद्वारा उस यमराज सदृश मृगराजकी गतिको प्रकट कर रहा था ॥ ८० ॥ वह सिंह, मारे हुए मनुष्योंकी हड्डियोंसे जो सब जगह पीला पड़ गया था ऐसे पर्वतकी एक भयंकर गुफामें सो रहा था । उसको सेनाके शब्दोंसे तथा भेरी वगैरहको पीटकर उसके शब्दोंसे जगाया ॥ ८१ ॥ जगते ही जो उसने जँभाई ली उससे उसका मुख बहुत भयंकर मालूम होने लगा । वह मेंढ़ी आंखोंसे सेनाके आदमियोंको देखकर उठा और शरीर जो टेढ़ा मेढ़ा हो रहा था अथवा आलस्यमें आ रहा था उसको सीधा करके धीरे २ अपनी पीली सटाओंको हिलाया ॥ ८२ ॥ अत्यन्त गर्जनाओंसे दिशाओंको शब्दायमान करते हुए जब उसने अपनी मुखरूपी कंदराको—गुहाको फाड़कर शरीरके आगेका भाग उठाया और उल्लंघन करने लगा—आक्रमण करने लगा उसी समय उसके सामने निर्भय राजकुमार अकेला ही आकर खड़ा हुआ ॥ ८३ ॥ राजकुमारने निर्दय होकर दक्षिण हाथसे तो उसके शिला समान कठिन आगेके पञ्जोंको रोका—पकड़ा, और दूसरा—बायां हाथ शरीरमें लगाकर झटसे उस मृगराजको पछाड़ दिया ॥ ८४ ॥ वह सिंह रोषसे मानों अपने दोनों नेत्रोंसे दावानलके स्फुलिंगोंका वमन करने लगा । परंतु जब नवीन खूनको धारण करनेवाले बली राजकुमारने उसका उद्यम निष्फल

कर दिया तब विवश होकर वह किसी अद्वितीय रक्षास्थानकी चिंता करने लगा ॥ ८५ ॥ कुमारने नवीन कमलनालके तंतुकी तरह उस मृगराजका विदारण करके उसके रूधिरसे जगत्में जो संताप बढ़ रहा था उसको शांत कर दिया। जिस तरह मेघ जलके द्वारा जगतके तापको शांत कर देता है। उसका वह खून जगत्को तृप्त करनेवाला था ॥ ८६ ॥ जो महा पुरुष होते है वे नियमसे अपने बड़े भारी साहससे भी हर्षित नहीं होता। यही कारण हुआ कि जिसका कोई भी दूसरा वध नहीं कर सकता था ऐसे सिंहका वध करके भी वह हरी—नारायण पद्वीका धारक—राजकुमार निर्विकार ही रहा ॥ ८७ ॥

एक दिन हरिने अपने दोनों हाथोंसे उस कोटिशिलाको भी लीला मात्रमें ऊपरको उठाकर अपना पराक्रम प्रकट कर दिया, जोकि बलवानोंकी अंतिम कसोटी है। भावार्थ—साधारण पुरुष कोटिशिलाको नहीं उठा सकता, जो नारायण होता है वही उठा सकता है, और वहीं उठाता है इसलिये वह उनके बलपरीक्षाकी कसौटी है ॥ ८८ ॥ विजयपताकाओंसे सूर्यकी किरणोंको ढकता हुआ, तथा अनुरागमें लीन बालकोंके भी द्वारा गाये गये अपने यशको सुनता हुआ वह कुमार वहांसे लौटकर नगरमें आगया ॥८९॥ विजयके छोटे भाई इस विनयी राजकुमारने शीघ्र ही राजघरमें जहांपर अनेक तरहका मंगलाचार हो रहा था प्रवेश कर चंचल शिखामणिसे भूषित शिरको नमाकर पहले विजयको और पीछे—विजयके साथ साथ आकर महाराजको नमस्कार किया ॥ ९० ॥ राजाने पहले तो हर्षके आंसुओंसे भरे हुए दोनों नेत्रोंसे उनका अच्छी तरह

आलिंगन कर लिया, पीछे दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिंगन किया। इस प्रकार उसने अपने दोनों पुत्रोंके आलिंगन करनेमें मानों पुनरुक्ति करदी—दो वार आलिंगन किया। ॥ ९१ ॥ राजाका शरीर हर्षके अंकुरोंसे व्याप्त हो गया। उसने आलिंगन करके दोनों पुत्रोंको बहुत देरमें छोड़ा। इसके बाद वे पिताकी आज्ञासे उसके साथमें राज सिंहासनपर ही एक भागमें नम्र होकर बैठ गये ॥९२॥ महाराजने क्षेमकुशल पूछा, परन्तु उसके उत्तरमें कुमारके विजयलाभने ही उसकी भुजाओंके यथार्थ पराक्रमका निरूपण करदिया। अतएव वह चुप होकर नीचेकी तरफ देखने लगा। ठीक ही है जो महापुरुष होते हैं उनको गुणस्तुति हर्षका कारण नहीं होती ॥ ९३ ॥ इस प्रकार शरद् ऋतुकी चंद्रकलाकी तरह समस्त दिशाओंमें निर्मल यशको फैलाता हुआ, और लोगोंको उनकी रक्षा करके हर्षित करता हुआ, वह राजा अपने दोनों पुत्रोंके साथ साथ समस्त पृथ्वीका शासन करता था ॥ ९४ ॥

एक दिन, आश्चर्यसे जिसके नेत्र निश्चल हो गये हैं ऐसा द्वारपाल हाथमें सोनेका वेत—छड़ी लिये हुए राजाके पास दौड़ता हुआ आया और इस तरह बोला, किंतु जिस समय वह बोलने लगा उस समय खुशीसे जल्दी जल्दी बोलनेके कारण उसके वाक्य रुकने लगे ॥ ९५ ॥ वह बोला—" कोई आकाश मार्गसे आकर हजूरके दरवाजेपर खड़ा है। वह तेजोमय है, और उसकी मूर्ति आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है। वह आपके दर्शन करना चाहता है। अब जो आपका हुकम हो वह किया जाय।" यह कहकर द्वारपाल चुप हो गया ॥ ९६ ॥ "हे सुमुख ! उसको जल्दी भीतर भेज

दो।" राजाकी इस आज्ञाको पाकर द्वारपाल लौट आया। और दरवाजेपर जाकर उसको भीतर भेज दिया। जिस समय वह भीतर पहुंचा आश्चर्य और हर्षयुक्त नेत्रोंसे सभा उसको मुड़ मुड़कर देखने लगी ॥ ९७ ॥ उसने आकर आदरसे–अदबसे महाराजको नमस्कार किया। महाराजने भी अपने पासमें लगे हुए एक सुवर्ण–सिंहासनपर उसको बैठनेके लिये हाथसे इशारा किया। बैठाकर, और उसको कुछ विश्रांत देखकर महाराज बोले ॥ ९८ ॥—"इस सौम्य आकारको जो कि अपने समान दूसरेको नहीं रखता–धारण करनेवाले आप कौन हैं? और इस भूमिपर किसलिये आये हैं? तथा यहांपर किस प्रयोजनसे आना हुआ है?" स्वयं महाराजके इस पूछनेपर आगन्तुकने इस तरह कहना शुरू किया ॥ ९९ ॥

इसी क्षेत्रमें चांदीके उन्नत शिखरोंसे युक्त "विजयार्ध" नामका एक पर्वत है। जिसपर नरेन्द्र और विद्याधर लोक निवास करते हैं। वह दो श्रेणियोंसे भूषित है–उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी ॥ १०० ॥ दक्षिण श्रेणिमें रथनुपुर नामका एक नगर है। जिसका शासन उसमें निवास करनेवाला, इन्द्रके समान क्रीड़ा करनेवाला विद्याधरोंका स्वामी करता है उसका नाम ज्वलनजटी है ॥ १०१ ॥ आपके वंशमें सबसे पहले बाहुबली हो गये हैं। वे महात्मा तीर्थकरोंमेंसे सबसे पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेवके पुत्र थे। जिन्होंने अपने बाहुबलसे क्रीड़ाकी तरह भरतेश्वरको पीड़ित कर समस्त सम्पत्तिके साथ साथ छोड़ दिया ॥ १०२॥ हे राजन्! विद्याधरोंका स्वामी–ज्वलनजटी भी, कच्छराजके पुत्र नमिके चंद्रकिरण–सदृश निर्मल कुलको अलंकृत करता है।

इसलिये नीतिदक्ष वह आपका मानजा लगता है ॥ १०३ ॥ इस लिये सकुशल वह हमारा स्वामी और आपका पुराना बन्धु आपसे दूरी पर रहता है तो भी जिस तरह चंद्रमा समुद्रका आलिंगन करता है उसी तरह प्रेमसे अच्छीतरह आलिंगन करके मेरे द्वारा आपका क्षेम कुशल पूछता है ॥१०४॥ तथा हे ईश ! शत्रुओंकी कीर्तिको नष्ट करनेवाला अर्ककिर्ति नामका उसका पुत्र, स्वयंप्रभा नामकी पुत्री, तथा अद्वितीया देवी—रानी आपके पूज्य चरणकमलोंकी अभ्यर्थना करते हैं ॥ १०५ ॥

एक दिनकी बात है कि कल्पलताके समान अद्वितीय पुष्पयुक्त पुत्रीको देखकर ज्वलनजटीको मालूम हुआ कि वह कामफलकी उन्मुख दशाको प्राप्त हो चुकी है। परंतु मंत्रि—नेत्रोंके द्वारा देखने पर भी उसको उसके समान योग्य वर कहीं भी नहीं दीखा ॥१०६॥ तब निमित्त शास्त्रमें कुशल आप्तकी तरह प्रमाण संभिन्न नामके दैवज्ञमें विश्वास किया। और मुख्य मुख्य मंत्रियोंके साथ एकांतमें उनके पास जाकर इस तरह पूछा ॥ १०७ ॥ "सुलोचना—सुंदर नेत्रोंवाली स्वयंप्रभाके योग्य पति हमको कोई भी नहीं दीखता है। इसलिये अब आप अपने दिव्य चक्षुओंसे उसको देखिये। मुझे यह कार्य किस तरह करना चाहिये इस विषयमें आप प्रमाण हैं" ॥ १०८ ॥ इस तरह जब राजा अपने कामके बीजको बताकर चुप हो गया तब संभिन्न विद्याधरोंके अधीशसे इस तरह बोला।—"हे आयुष्मन्! अवधिज्ञानी मुनिराजसे तेरा कर्तव्य मुझे पहले जैसा मालूम हो चुका है उसको वैसाका वैसा ही कहता हूं। सुन,—इसी भरतक्षेत्रमें भरत राजाके वंशमें प्रजापति नामका एक राजा है। वह बड़ा उदार है,

और उसका नाम भी अन्वर्थ है—अपने नामके अर्थके अनुसार प्रजाका पालक भी है। इसके दो विजयी पुत्र हैं। एकका नाम विजय है दूसरेका त्रिपिष्ट। यह समझो कि अमानुप बलके धारक ये दोनों भाई क्रमसे पहले बलभद्र और नारायण हैं। अर्थात् बड़ा भाई विजय पहला बलभद्र है और छोटा भाई त्रिपिष्ट पहला नारायण है ॥ ११० ॥ त्रिपिष्टके पहले भवका शत्रु विशाखनंदी यह अश्वग्रीव हुआ है। इसलिये त्रिपिष्ट इस विद्याधरोंके इंद्रको रणमें युद्धकर दुर्मद कर देगा, और उसको मारकर आप अर्ध चक्रवर्ती होगा ॥ १११ ॥ अतएव विद्याधरोंके निवास स्थानमें सारभूत कन्यारत्नको निःसंदेह वासुदेवको—त्रिपिष्टको देना चाहिये उनके प्रसादसे उत्तर श्रेणीको पाकर आपकी भी वृद्धि होगी" ॥ ११२ ॥ उस कार्तान्तिक-संभिन्न नामक दैवज्ञके जिसके वचन कभी झूठ नहीं हो सकते इस आदेशसे जब सम्पूर्ण शंकायें दूर हो गई तब हे देव! यह समझिये कि ज्वलनजटीने इस कार्यको घटित करनेके लिये मुझको ही दूत बनाकर भेजा है। मेरा नाम इंदु है। मैंने स्थिर चित्तसे आपके समक्ष वह कार्य प्रकाशित कर दिया है। आगे आप स्वयं कार्य-कुशल हैं" ॥ ११३ ॥ इस प्रकार जब वह आगंतुक विद्याधर अपने आनेके कारणको अच्छी तरह बताकर चुप हो गया, तब उस समृद्धिशाली राजाने उसका उन समस्त भूषणोंको देकर सत्कार किया कि जिनको उसने स्वयं अपने शरीरपर धारण कर रक्खा था। तथा मनुष्य शीघ्र ही विजयार्द्ध पर नहीं पहुंच सकता इसलिये उस आगंतुक विद्याधरके ही मारफत अपना संदेश और उसके साथ कुछ भेट खुश होकर उस विद्याधरोंके अधिपति-ज्वलनजटीके

यहां भेजी ॥ ११४ ॥ और यह कहकर उसको विदा किया कि " हमको दर्शन करानेके लिये उत्कंठा युक्त विद्याधरोंके अधीशको शीघ्र लाइये । " इंदुने भी अपने नम्रीभूत मुकुटके किनारे पर हाथोंको रखकर नमस्कार किया । पीछे अपने महान् विद्याबलसे दीप्तियुक्त विमानको बनाकर और उसमें बैठकर नीलकमल सदृश आकाश पर चला गया ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्री असग कविकृत वर्धमान चरित्रमें त्रिपिष्ट संभव नामका पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ।

छट्टा सर्ग ।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन प्रजापतिने वनपालसे सुना कि बाहरके प्रशस्त वनमें विद्याधरोंका स्वामी अपने बल सहित आकर उतरा है । यह सुनकर हर्षसे उसको देखनेके लिये वह निकला ॥ १ ॥ उन्नत और कठोर कंधाओंसे भूषित दोनों पुत्रोंके साथ २ राजा बहुत ही अच्छा मालूम पड़ता था । दोनों पुत्र ऐसे मालूम पड़ते थे मानों राजाकी ये दोनों भुजायें हैं । इनमेंसे पहला जो कि दक्षिणकी तरफ था मानों साधु जनोंके लिये, और दूसरा जो कि वाम भागमें था मानों शत्रुओंके लिये जा रहा है ॥ २ ॥ प्रसिद्ध वंशोंमें उत्पन्न होनेवाले राजपुत्रोंके साथ २ राजा वनमें पहुँचा । मार्गमें ये राजपुत्र अपने अपने वाहनों पर सवार होकर जब वेगसे चलने लगते उस समय उनके चंचल हो उठनेवाले हारोंमेंसे निकले हुए किरण जालसे सपूर्ण दिशायें प्रकाशित हो उठती थीं ।

थे. ऐसे मालूम पड़ते थे मानों ये राजपुत्र नहीं किंतु मार्गमें जगह जगह पर लगे हुए स्वयं राजाके प्रतिबिम्ब ही हैं ॥ ३ ॥

विद्याके प्रभावसे बनाये गये अद्भूत महलोंके कंगूरोंके कोनों पर बैठी हुई विद्याधरियोंके चंचल नेत्रोंके साथ साथ, सहसा उठकर विद्याधरोंके स्वामीने अपनी प्रीतिपूर्ण दृष्टिको फैलाकर भूपालको देखा ॥ ४ ॥ धरणीनाथ—प्रजापति और धरणीधरनाथ—विजयार्धका स्वामी ज्वलनजटी दोनों ही अत्यंत उत्सुक अपनी २ सवारीसे खुशीसे फुर्तीके साथ निकटवर्ती सुंदर भटोंका हस्तावलंबन लेकर दूरसे ही उतरे। और दोनों ही एक दूसरेके सन्मुख आधा आधा चलकर आये। अर्थात् उधरसे ज्वलनजटी उतरकर आया और इधरसे प्रजापति गया इस तरह दोनोंका बीचमें मिलाप हो गया ॥ ५ ॥ यद्यपि इन दोनोंका सम्बन्धरूपी चंदनका वृक्ष बहुत पुराना पड़ गया था तो भी दोनोंने मिलकर गाढ़ आलिंगनके अमृतजलसे उसको सींचा जिससे वह फिर हराभरा हो गया। दोनों राजाओंके बाजूबंदोंमें लगी हुई मणियोंमेंसे जो किरणें निकलतीं थीं उनसे ऐसा मालूम पड़ता था मानों उस सम्बन्धरूपी चंदनके वृक्षमेंसे ये नवीन अंकुर निकल रहे हैं ॥ ६ ॥ ज्वलनजटीके पुत्र अर्ककीर्तिने यद्यपि उस समय पिताने आंख वगैरहके इशारेसे कुछ बताया नहीं था तो भी दूरसे ही शिरको नमाकर नमस्कार किया। ठीक ही है— जो महा पुरूष होते हैं उनका महात्माओंमें स्वभावसे ही विनय हो जाता है ॥ ७ ॥ विजय और त्रिपिष्ट, लक्ष्मी प्रताप बल शूरवीरता बुद्धि और विद्या आदिकी अपेक्षा सम्पूर्ण लोगोंसे अधिक थे तो भी इन दोनों भाइयोंने साथ २ उस विद्याधरोंके स्वामीको प्रीतिसे

प्रमाण किया। जो महान पुरुष होते हैं वे गुणोंमें गुरुजनोंसे अधिक होनेपर भी नम्र ही रहते हैं ॥८॥ अत्यंत शोभायुक्त ये दोनों भाई खूब ऊंचे शरीरके धारक और कामदेवके समान मनोहर निर्मल चंद्रमाके समान कीर्तिके धारक अर्ककीर्तिका आलिंगन कर प्रसन्न हुए। प्रिय बंधु-ओंका संबन्ध किसके हर्षको नहीं बढ़ाता है ॥९॥ मनुष्य--भूमिके और विजयार्धके स्वामियोंके मुखकी चेष्टासे जब यह मालूम हो गया कि इन दोनोंके मनमें बोलनेकी इच्छा है तब राजा प्रजापतिका अत्यंत प्रिय मंत्री इस तरह बोला क्योंकि जो कुशल मनुष्य होते हैं वे योग्य समयको समझा करते हैं ॥१०॥ " आज कुल-देवता अच्छी तरह प्रसन्न हुए, और शुभ कर्मका उदय हुआ। आपका जन्म सफल है कि जिन्होंने, पूर्व पुरुषोंसे चली आई लताके समान स्वता (निजत्व) को जो किसी तरह छिन्न हो गई थी तो भी उसको फिरसे अंकुरित कर दिया ॥११॥—जिस तरह कोई योगी, प्रतिपक्षरहित, साधारण मनुष्योंके लिये दुष्प्राप्य, आत्मस्वरूप केवलज्ञानको पाकर सम्पूर्ण भुवनोंके लिये मान्य हो जाता है, तथा सर्वोत्कृष्ट और ध्रुवपदको प्राप्त हो जाता है। हे देव! प्रजा-पति भी आपको पाकर ठीक वैसा ही हो गया है " ॥१२॥ मंत्री जब इस प्रकारसे बोला तब उसी समय उसके वाक्योंको रोककर विद्याधरोंका स्वामी स्वयं इस तरह कहने लगा। बोलते समय इसके दांतमेंसे जो चंद्रमाके समान निर्मल किरणें नीकलीं उनसे वह ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों खिले हुए कुंदके पुष्पोंसे अंतरंगमें बैठी हुई वाग्देवता—सरवस्तीकी पूजा कर रहा है ॥ १३ ॥ ज्वलनजटी बोला—" हे विद्वानोंमें श्रेष्ठ! तुम इस तरहके वचन मत बोलो।

क्योंकि इक्ष्वाकु वंशवाले हमेशासे नमिवंशवालोंके स्वामी होते आये हैं। कच्छ राजाके पुत्रने आदीश्वर भगवानकी आराधना की थी तभी धरणेंद्रकी दी हुई विद्याधरोंकी विभूतिको प्राप्त किया था। ॥ १४ ॥ हे मित्र! अनादरसे उठाई गई कुटिलताको धारण न करनेवाली इनकी भृकुटि-मंजरीके विलासको उसके व्याजसे दी हुई आज्ञा समझकर उसको पूरा करनेके लिये यह जन तयार है। क्योंकि भले आदमियोंको अपने पूर्व पुरुषोंके क्रमका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

भूमिगोचरी और विद्याधरोंके स्वामी जब आपसमें इस प्रकार नम्र भाषणके द्वारा सत्कार कर चुके तब सुत और सुताके रमणीय विवाहोत्सवको करनेके लिये उद्युक्त हुए। इस विवाहके उत्सवको इनका प्रतिनिधि-एवजी ब्रह्मा पहले ही कर चुका था। जिसके ऊपर पताका वगैरह लगाई गई हैं ऐसे घरमें प्रजापति और ज्वलनजटीने प्रवेश किया ॥ १६ ॥ प्रत्येक मकानमें, तुरई शंख वगैरह मंगल बाजे बजने लगे। उनके ऊपर इतने ध्वजा और चंदोआ लगाये गये कि जिससे उनके भीतर अंधेरा हो गया। पहले ही दरवाजोंपर-सदर फाटकोंपर जिनमेंसे धान्यके सुकुमार अंकुर निकल रहे हैं ऐसे सुवर्णके कुंभ रक्खे गये ॥ १७ ॥ जिनके मुख कमलों-पर कामुक पुरुषोंके नेत्र मत्त भ्रमरकी तरह अत्यंत आसक्त हो रहे थे ऐसी मदसे अलस हुई वधुएं वहाँपर नृत्य कर रहीं थीं। रंगवल्लीमें जो निर्मल पद्मराग मणियां लगाई गईं थीं उनमेंसे प्रभाके पटल निकल रहे थे। उनसे ऐसा मालूम होता था मानो वहांका आकाश पल्लवोंसे लाल लाल नवीन पत्तोंसे व्याप्त हो रहा है ॥ १८ ॥ उच्चारण

करनेमें अति चतुर चारण-कत्थक तथा बन्दिजनोंके कोलाहलसे सम्पूर्ण दिशायें शब्दायमान हो उठीं थीं। नगर एवं विद्याधरोंसे व्याप्त उपवन दोनों ही मानों परस्परकी विभूतिको जीतनेकी इच्छासे एक दूसरेसे अधिक रमणीय बन गये ॥ १९ ॥ संभिन्न नामक ज्योतिषीने विवाहके योग्य जो दिन बताया उस दिन विद्याधरोंके इन्द्र ज्वलनजटीने पहले तो जिनमंदिर तथा मंदिर मेरुके ऊपर जिनेन्द्रदेवकी पूजा की पीछे अपने निवासस्थान कमलको छोड़ देनेवाली लक्ष्मीके समान अपनी पुत्रीको विधिपूर्वक त्रिपिष्ट नारायणके लिये अर्पण किया ॥ २० ॥ समस्त शत्रुओंको निःशेष करनेवाला नमिवंशकी ध्वजा भूत ज्वलनजटी, बाजुबंद, हार, कड़े, निर्मल कुंडल इत्यादि भूषणोंसे दूसरे राजपुत्रोंका भी सम्मानकर कन्यादान-विवाहको पूराकर, अपनी रानीके साथ २ चिंता-समुद्रके पार तर गया ॥ २१ ॥ विजयके छोटे भाई त्रिपिष्टको इस प्रकार अपनी पुत्री देकर वह विद्याधरोंका स्वामी बहुत ही प्रसन्न हुआ। भला कौन ऐसा होगा जो बढ़ते हुए महान् अभ्युदय और वैभवके पात्र महापुरुषके साथ सम्बन्धको पाकर संतुष्ट न हो ॥ २२ ॥

विद्याधरोंका चक्रवर्ती-अश्वग्रीव समाचारोंका पता लगानेवाले अपने दूतके द्वारा इस बातको सुनकर कि विद्याधर पतिने अपनी कन्याका दान भूमिगोचरीको किया है उसी समय कुपित हुआ जैसे कि सिंह नवीन मेघके गंभीर-शब्दपर कोप करता है। अथवा वह सिंहकी तरह नवीन मेघके समान गंभीर शब्द करने-गर्जने लगा ॥ २३ ॥ उसकी भयंकर दृष्टि कोपसे पल्लवित हो गई। जिससे ऐसा ज्ञान पड़ने लगा मानों वह सभामें बहुतसे

अंगारोंको बखेर रहा है । उस समय उसके मुखपर पसीनाके जलकी बहुतसी छोटी २ बिन्दु इकट्ठी हो गई । मालूम पड़ने लगा मानों वह बिंदुओंका समूह नहीं है उसका कर्ण भूषण है । वज्रके समान घोर नादको करता हुआ वह बोला—"हे विद्याधरो ! जो काम उस अधम विद्याधर ज्वलनजटीने किया है क्या तुम लोगोंने उसको नहीं सुना ? देखो ! उसने जीर्ण तृणकी तरह तुम्हारी अवहेलना करके, जगत्में प्रधान भूत और मनोहर कन्या एक मनुष्यको दे डाली ॥२५॥ जब अश्वकंधरने हर एकके मुखकी तरफ करके उसके विषयमें कहा तब उसके वचनोंसे सम्पूर्ण सभा क्षुब्ध होकर घूमने लगी । उस समय हर्षके नष्ट हो जानेसे सभाने उस दर्शनीय लीला—अवस्थाको धारण किया जोकि कल्पकालके अंत समयमें पवनसे क्षुब्ध हो जानेवाले समुद्रकी हो जाती है ॥ २६ ॥ कोपसे समस्त जगत्को कँपाता हुआ वह नीलरथ मनुष्योंका--भूमिगोचरियोंका क्षय करनेके लिये चला । मानों जनताका क्षय करनेके लिये हिमालय चला । यद्यपि वह नीलरथ था तो भी हिमालयके समान मालूम पड़ता था। क्योंकि उसकी और हिमालयकी कई बातें समान मिलती थीं । प्रथम तो वह हिमालयकी तरह स्थितिमानोंका (मर्यादाके पालन करनेवालोंका और हिमालयके पक्षमें—पर्वतोंका) अग्रेश्वर था । दूसरे अत्यंत अनुल्लंघ्य उन्नति (वैभवकी अधिकता तथा हिमालयके पक्षमें ऊंचाई) को धारण करनेवाला था । तीसरे, इसने अन्य स्थानोंपर नहीं होनेवाले महान् सत्व (सत्वगुण अथवा अत्यंत उद्योग या बल और हिमालयके पक्षमें जंतुओं) को धारण कर रक्खा था ॥ २७ ॥ चित्रांगद खून किये गये-अपने द्वारा मारे गये शत्रुओंके

खूनसे विचित्र हुई गदाको हाथमें लेकर उठा । और उसने अपने बायें हाथसे उसको खूब जोरसे घुमाया । घुमाते समय गदामें लगी हुई पद्मराग मणियोंकी जो प्रभा निकली उससे ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों उसके हाथमेंसे रोषरूपी दावानल निकल रहा है ॥२८॥ भृकुटियोंके टेढ़े पड़ जानेसे मुख टेढ़ा पड़ गया, आखें गुलाबी हो गईं, पसीनाके जलकणोंसे कपोल मूल व्याप्त हो गया, उन्नत शरीर झूमने लगा; और ओंठ कंपने लगे । वह भीम उग्र कोपको धारण कर सभामें साक्षात् कोप सरीखा ही हो गया ॥ २९ ॥ नीलकंठने जिसका कि हृदय विद्याओंसे लिप्त था, जो प्रतिपक्षियोंका भय होनेपर शरणमें आनेवालोंको अभय देता था इस समय कोपसे किये गये अपने गंभीर कहकहाट शब्दके द्वारा सभाके सभी मकानों-कमरोंके विवरोंको प्रतिध्वनित करते हुए हंसा दिया ॥३०॥ इस समय जो कोई भी क्रुद्ध होता हुआ सभामें आता था उसके शरीरका सेनके पसीनासे भीगे हुए निर्मल शरीरमें प्रतिबिम्ब पड़ जाता था, जिससे अनेक रूप हुआ वह—सेन ऐसा मालूम पड़ने लगता था मानों युद्ध रससे विद्यावलके द्वारा शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये बलकी विक्रिया कर रहा है ॥ ३१ ॥ क्रोधसे उद्धत हुआ परिधी शत्रुओंके मत्त हाथियोंके दांतोंका अभिघात पाकर जिसपर बड़े २ व्रण हो गये हैं, जिनमें कि हार भी मग्न हो गया है, एवं जिसपर रोंगटे खड़े हो गये हैं ऐसे अपने विशाल वक्षःस्थलको सीधे हाथसे ठोंक २ कर परिमार्जित करने लगा ॥३२॥ निष्कपट पौरुषसे शत्रुवर्गको वशमें करनेवाला, विद्यावैभवसे उन्नति करनेवाला, उन्नत कंधाओंसे युक्त अश्वग्रीव जिस समय कोपसे पृथ्वीको ठोंकने लगा उस समय उसके कर्णो-

त्पलपर बैठे हुए भ्रमर व्याकुल होकर उड़ने लगे ॥ ३३ ॥ कोपसे विवर्ण हुआ यह दिवाकर विद्याधर सूर्यके समान अपने बहुत बड़े प्रतापसे समस्त दिशाओंको पूर्ण करता हुआ, जगत्से नमस्कृत अ-ग्रपादोंको (चरणोंको—सूर्यके पक्षमें किरणोंको) पद्माकरके ऊपर रखता हुआ शीघ्र ही इस बातका बोध कराने लगा मानों यह अभी जनताका क्षय कर डालेगा ॥ ३४ ॥ सभामें कामदेवके समान सुन्दर मालूम पड़नेवाले चित्रांगदने शत्रुओंके कुल-पर्वतोंको मथनेवाले अपने दोनों हाथोंसे जिनमें कि उनका—शत्रुओंका घात करते२ छोटी२ गांठें—ठेके पड़ गई थीं, गलेमें पड़ी हुई हारलताको ऐसा चूर्णित कर डाला जिससे उसमेंका सूत भी बाकी न बचा ॥ ३५ ॥ ईश्वर और वज्रदंष्ट्र दोनों शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये आकाशमें डोलने लगे, पर सभासदोंने उन्हें किसी तरह रक्खा-रोका । उन्नत जलमें धोई गई—जिसपर अत्यंत तीक्ष्ण पानी चढ़ाया गया है ऐसी तलवारमेंसे निकलते हुए किरणांकुरोंसे उन दोनोंके दक्षिण बाहुदण्ड माङ्कुरित हो रहे थे ॥३६॥ बहुत दिनमें मुझको यह अवसर प्राप्त हुआ था तो भी मुझको इसने नहीं स्वीकारा इसीलिये मानों वह रुष्ट हुआ यथार्थनामा अकंपन राजाका कोप दूरसे हुआ । ठीक ही है—जो चंचल बुद्धि होता है वह सभामें कोप करता है नकि धीर ॥३७॥ जिसने जल्दी२ निर्दय होकर अपने रमणीय और आस्फालित ओठोंको चबा डाला ऐसे शनिश्चरके समान पराक्रमके धारण करनेवाले क्रुद्ध बलीने झणझणाट शब्द करनेवाले भूषणोंसे युक्त अपने दक्षिण हाथसे गंभीर शब्द करते हुए पृथ्वीको निःसत्व—निस्तेज कर दिया ॥ ३८ ॥

क्रोधके मारे लाल हुई आंखोंसे मानों उसकी आरती ही कर रहा है इस तरहसे सभाकी तरफ देखकर अभिमानशाली उद्धत धूमशिख सभामें इस तरह बोला। बोलते समय मुखके खुलते ही जो उसमेंसे धुंआ निकला उससे मानों समस्त दिशायें धूम्र हो गईं। वह बोला—' हे अश्वग्रीव ! आप वृथा क्यों बैठे हैं ? आज्ञा कीजिये। असत् पुरुषोंका पराभव करनेमें बुद्धि लगानी चाहिये न कि उपेक्षा करनी चाहिये। हे चक्रधर ! क्या मैं बायें हाथसे सारी पृथ्वीको उठाकर समुद्रमें पटक दूं ॥ ४० ॥ उस भूमिगोचरी मनुष्यने जो नमिकुलमें श्रेष्ठ विद्याधरकी अनुपम और लोकोत्तम पुत्रीको अपने गलेमें धारण किया है सो क्या वह उसके योग्य है। यह ऐसा ही हुआ है जैसे कोई कुत्ता उज्ज्वल रत्न-मालाको गलेमें पहर ले। इस विषयमें कौन ऐसा होगा जो विधिकी असह्य मनीषाको देखकर हंसेगा नहीं ॥४१॥ इन विद्याधरोंके स्वा-मियोंमेंसे चाहे जिसको आप हुकुम करें वही अकस्मात् जाकर नमिके कुलका एक निमिष मात्रमें प्रलय कर डालता है। काक समान उन मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥४२॥ यमराज समान आपके क्रुद्ध होनेपर एक क्षण भी कोई नहीं जी सकता, यह बात लोकमें प्रसिद्ध हो रही है। फिर भी—इस बातको जानते हुए भी न मालूम क्यों उसने आपसे इस तरहका विरोध किया है ! अथवा ठीक ही है—जब विनाशकाल आजाता है तब बड़े बड़े विद्वानोंकी भी बुद्धि हवाखाने चली जाती है ” ॥४३॥ इसी समय 'आत्म-बंधुओंके साथ २ नागपाश वगैरहसे बांधकर वधू और वर दोनोंको अभी लाते हैं यह सोचकर वे विद्याधर उठे । परन्तु मंत्रीने किसी

तरह उन्हें अनुनयादि कर रोक दिया; और रोककर वह अश्वग्रीवसे इस तरह बोला—

"हे नाथ! आप निष्कारण क्रोध क्यों कर रहे हैं? आपकी सम्पूर्ण नीतिमार्गमें प्रवीण बुद्धि कहां चली गई? संसारियोंका कोपके समान कोई शत्रु नहीं। यह नियमसे दोनों भवोंमें विपत्तिका कारण होता है ॥४४—४५॥ तृष्णाको बढ़ाता है, धैर्यको दूर करता है, विवेक—बुद्धिको नष्ट करता है, मुखसे नहीं कहने योग्य कार्मोको भी कराता है, एवं शरीर और इंद्रियोंको संतप्त करता है, इस तरह हे स्वामिन्! यह मनुष्यका उग्र कोप पित्तज्वरका एक प्रतिनिधि है ॥४६॥ आंखोंमें राग (लाली—सुर्खी) शरीरमें अनेक तरहका कंप, चित्तमें विवेकशून्य चिंतायें, अमार्गमें गमन और श्रम, इन बातोंको तथा इनसे होनेवाले और भी अनेक दुःखोंको या तो मनुष्यका कोप उत्पन्न करता है या मदिराका मद (नशा) ॥४७॥ संसारमें जो आदमी विना कारण ही दररोज क्रोध किया करता है उसके साथ उसके आप्त जन भी मित्रता रखना नहीं चाहते। विषका वृक्ष, मंद मंद वायुसे नृत्य करनेवाले फूलोंके भारसे युक्त रहता है तो भी क्या भ्रमरगण उसकी सेवा करते हैं? कभी नहीं ॥४८॥ अभिमानियोंको शत्रु आदिका भय होनेपर आलम्बन, वंशसे भी उन्नत, प्रसिद्ध और सारभूत गुणोंसे विशुद्ध, श्रीमान् जिनसे कि असत्पुरुषोंके परिवारने अपनी आत्माको छिपा रक्खा है, तथा यह आपकी इसी तरहकी तलवार मालूम होती है अब मानव—कलंकको प्राप्त करें ॥ ४९ ॥ अभिवांछित कार्य-सिद्धिकी रक्षा करनेवाली, अंधी आंखोंके लिये सिद्धांजनकी अद्वितीय गोली और लक्ष्मीरूपी

लताके वलयको बढ़ानेवाली जलधारा, यह क्षमा ही है। जगत्के भले आदमियोंमेंसे कौन ऐसा है जिसने उसको ऐसा ही नहीं माना है ॥ ५० ॥ यदि कोई अति बलवान् और पराक्रमका धारक भी अत्यंत उन्नत हुए दूसरोंपर कोप करे तो ऐसा करनेसे उसकी भलाई नहीं होती। मृगराज मेघोंकी तरफ स्वयं उछल उछल कर क्या व्यर्थका प्रयास नहीं उठाता? ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य अपने ही पक्षके बलका गर्व करके मूढ़ हो रहा हो, तथा जो अपनी और दूसरेकी शक्तिमें कितना सार है इसके विना देखे केवल जीतनेकी इच्छासे ही उद्योग करता है वह मनुष्य उस अचिंत्य दशाका अनुभव करता है जोकि वन्हिके सम्मुख पड़कर पतंगको प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ हे प्रभोः! जगत्में यदि शत्रु दैव और पराक्रमकी अपेक्षा तुल्य हो तो नीतिशास्त्रकारोंने उसके साथ संधि करना बताया है। क्योंकि ऐसा करनेसे जो दोनोंकी अपेक्षा दोनोंमें हीन हो तो वह भी सहसा विद्वानोंमें निंद्य नहीं होता, बल्कि पूज्यतम और अधिक उन्नत होता है ॥ ५३ ॥ जिस तरह हाथीकी चिंघाड़ उसके अंतर्मदको और प्रातःकालकी किरणें उदयमें आनेवाले सूर्यको बतलाती हैं इसी तरह मनुष्यकी चेष्टाएं लोकमें होनेवाले अंतरायरहित उसके आधिपत्यको बतला देती हैं ॥ ५४ ॥ करोड़ों सिंहोंका जिसमें बल था इस तरहके उस मृगराजको जिसने अपने आप अंगुलियोंसे नवीन कमलके तंतुकी तरह विदार डाला, जिसने शिलाको एक ही हाथसे उठाकर छत्रकी तरह ऊपरको कर दिया ॥ ५५ ॥ जिसकी विद्वान् ज्वलनजटीने स्वयं जाकर विधिपूर्वक कन्यादान कर उपासना की है, जो धीर त्रिपिष्ठ तेजकी निधि है

वह आज आपका अभियोज्य किस तरह हुआ? और आप बताइये कि उसपर किस तरह चढ़ाई कर दी जाय ॥ ५६ और हे मानद! "मैं चन्द्रवर्तीकी विभूतिसे युक्त हूं" ऐसा अपने मनमें वृथाका गर्व भी न करना, क्योंकि जो लोग इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त नहीं कर सके हैं उन मूढ़ात्माओंकी सम्पत्ति क्या बहुत काल तक अथवा परिपाक समयमें सुखके लिये हो सकती है? ॥ ५७ ॥ आप हरएक नरेशके स्वामी हैं। अतएव मेरी रायमें आपको यह चढ़ाई नहीं करनी चाहिये। यह आपके लिये परिपाकमें हितकर न होगी।" मंत्री इस तरहके वचनोंको जोकि परिपाकमें पथ्यरूप थे कहकर चुप हो गया। क्योंकि जो बुद्धिमान् होते हैं वे अकार्यको कभी नहीं बताते ॥ ५८ ॥

मंत्रीके ये वाक्य वस्तु तत्त्वके प्रकाशित करनेवाले थे और इसीलिये वे जगत्में अद्वितीय दीपकके समान थे तो भी जिस तरह सूर्यके किरणसमूहसे उल्लूको बोध नहीं होता; क्योंकि उसकी बुद्धि अंधकारमें ही काम करती है, उसी तरह यह दुष्ट अश्वग्रीव भी मंत्रीके उन वाक्योंसे प्रबोधको प्राप्त न हुआ। क्योंकि इसकी भी अज्ञानान्धकारसे बुद्धि मारी गई थी ॥ ५९ ॥ खोटी शिक्षा पाये हुए अथवा जिन्होंने कार्यके परिपाककी तरफ दृष्टि ही नहीं दी है ऐसे ही कुछ लोगोंने मिलकर अपने बुद्धिबलपर गर्विष्ठ हुए अश्वग्रीवको उत्तेजित कर दिया। अश्वग्रीव अपने भ्रुभंगसे उन्नत ललाटपट्टको भी टेढ़ाकर कोपके साथ मंत्रीसे इस तरह बोला। ६०॥

"परिपाकमें पथ्यको चाहनेवाला, शत्रुकी बढ़ी हुई वृद्धिको जरा भी नहीं चाहता। शत्रु और रोग दोनोंको यदि थोड़े काल

तक भी सहसा बढ़ते रहने दिया जाय तो थोड़े ही कालमें वे प्राणोंके ग्राहक हो जाते हैं ॥६१॥ केवल एक मेघ—शत्रु अपने समयपर तीक्ष्ण तलवारके समान बिजलीको लेकर जब विकराल होकर गर्जना करता है तब राजहंस पक्षयुक्त (सेनादिक सहायकोंसे युक्त, हंसकी पक्षमें पंखोंसे युक्त) तथा पद्माकरका (लक्ष्मीका, पक्षमें कमल समूहका) अवलंबन लेकर भी पृथ्वीमें प्रतिष्ठा (इज्जत, दूसरी पक्षमें स्थिति)को नहीं पाता। ॥ ६२ ॥ जीतनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य, अत्यंत प्रतापशाली तेजस्वी शरीरसे अभिन्न अगणित सहायकोंके साथ साथ उद्युक्त होकर, समस्त दिशाओंको प्राप्त करनेवाले करोंसे सूर्यकी तरह क्या समस्त भुवनको भी सिद्ध नहीं कर लेता है ? ॥६३॥ मदजलका सिंचन कर भीतके समान गंडस्थलोंको सुगंधित करनेवाले, जिनकी कायकी ऊंचाईको देखकर ऐसा मालूम पड़ने लगता है मानों ये चलते फिरते अंजनगिरि पर्वत ही हैं, ऐसे अजगर समान सुंडोंको धारण करनेवाले अनेक हाथियोंका सिंह जो वध करता है सो किसका उपदेश पाकर? ” ॥६४॥ इस तरह अपने वचनोंसे उदार बोधके देने वाले प्रमाणभूत मंत्रीके वाक्योंका कोपसे उल्लंघन करके अश्वग्रीव इस तरह अत्यंत स्वतंत्रताको—उच्छृंखलताको प्राप्त हो गया जिस तरह हस्ती मत्त पीलवानका उल्लंघन करके स्वतंत्र हो जाता है ॥६५॥ प्रसिद्ध सत्व पराक्रमको धारण करनेवाला दुर्वार अश्वग्रीव एक क्षणके बाद—शीघ्र ही जिस तरह कल्पकालके अंत समयमें समुद्र कल्लोलोंसे भर जाता है—आच्छन्न हो जाता है उसी तरह आकाशको असंख्य सेनासे आच्छन्न करता हुआ उठा ॥६६॥ उल्टी हवाके चलनेसे जिसकी ध्वजायें कांप रहीं थीं ऐसी सेनाको उस पर्वतके ऊपर

जहांपर कि छोटे २ राजकीय मकान बना दिये गये थे और जहांपर घास लकड़ी तथा जल सुलभतासे मिल सकता था, ठहरा कर आप भी दूसरोंका पालन करता हुआ ठहर गया ॥ ६७ ॥

ज्वलनजटीने सभामें एक बुद्धिमान दूतके द्वारा अश्वग्रीवकी इस निरंकुश चेष्टाको स्पष्टतया सुना। और सुनकर वह प्रजापतिसे विनयपूर्वक इस तरह बोला ॥ ६८ ॥ रौप्यगिरि-विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें वैभवसे भूषित नाना समृद्धिशाली अलका नामकी नगरी है। जिसमें मयूरकंठ और नीलांजनाके शरीरसे यह अर्धचक्रवर्ती अश्वग्रीव उत्पन्न हुआ है ॥ ६९ ॥ अश्वग्रीवका वीर्य-पराक्रम दुर्निवार्य है। इस समय वह दूसरे विद्याधरोंको साथ लेकर उठा है। अतएव इस विषयमें अब जो कुछ करना हो उसका एकांतमें आत्महितैषी-निजी-सभासदोंके साथ विचार कर लेना चाहिये ॥ ७० ॥ ज्वलनजटीकी इस वाणीको सुनकर पृथ्वीनाथने जब मंत्रिसभाकी तरफ़ मुड़कर देखा तो सभा स्वामीके अभिप्रायको समझकर उठ चली। मनुष्योंको बुद्धिरूपी सम्पदाके प्राप्त करनेका फल यही है कि मौकेके अनुसार वे वर्ताव करें ॥ ७१ ॥

इस प्रकार अशग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें अश्वग्रीव 'सभा क्षोभ' नामक छट्ठा सर्ग समाप्त हुआ।

सातवाँ सर्ग ।

विद्याधरोंके स्वामीने जब मंत्रिशालामें सम्पूर्ण मंत्रियोंको बुला लिया तब विनयके साथ २ आकर प्राप्त होनेवाले प्रजापतिने इस तरह बोलना शुरू किया ॥ १ ॥ हमारी यह अभीष्ट सम्पूर्ण सम्पदा आपके प्रतापसे ही हुई है। वृक्ष क्या ऋतुओंके विना स्वयमेव पुष्पश्रीको धारण कर सकते हैं? ॥ २ ॥ हम सब तरहसे बालकके समान हैं। अभी तक हमने अपनी मुग्धताको नहीं छोड़ा है। परंतु अब निश्चय है कि वियुक्त हुई जननी समान हितके करनेवाली आपकी मति हमको सब तरहसे देखेगी। क्योंकि वह वत्सल है, उसका हमपर बड़ा प्रेम है और कृत्याकृत्यके विषयमें भी वह कुशल है ॥३॥ 'जगत्में जो गुणहीन है वह भी गुणियोंके सम्बन्धसे गुणी बन जाता है। गुलाबके पुष्पोंसे सुगंधित हुआ जल मगज़को भी सुगंधित कर देता है ॥ ४ ॥ अच्छा हो चाहे बुरा हो; परंतु विधि प्राणियोंको ऐसे प्रयोजनको विना किसी तरहके प्रयत्नके किये ही स्वयं उत्पन्न कर देता है जिसका उन्होंने चितवन भी न किया हो। क्योंकि वह अपने अद्वितीय कार्यमें निरंकुश है ॥ ५ ॥ अति बलवान् चक्रवर्ती अश्वग्रीव दूसरे विद्याधर राजाओंके साथ २ सहसा उठा है। अतएव अब हमको आप बताइये कि उसके प्रति कैसा वर्ताव किया जाय? ॥ ६ ॥ यह बात कहकर तथा और भी बहुतसे कारणोंको दिखाकर जब राजाने विराम लिया तब बार बार मंत्रियोंसे देखे जानेपर सुश्रुत नामका मंत्री इस तरहके वचन बोला ॥ ७ ॥ " ज्ञानके विषयमें विशुद्धताको हमने आपके

प्रसादसे ही प्राप्त किया है। यह बात पृथ्वीपर प्रसिद्ध है कि पद्म—कमल तो सदा जड़ात्मक (कमलकी पक्षमें जलस्वरूप, मंत्रीकी पक्षमें जड़रूप) ही होता है, किंतु सूर्यके प्रसादसे वह प्रबोध (कमलकी पक्षमें खिलना, मंत्रीकी पक्षमें ज्ञान)को प्राप्त होता है। ॥८॥ हिमके समान द्युतिको धारण करनेवाले चंद्रमाकी प्रतिविम्बकी संगति करनेवाला मृग मलिन है तो भी प्रतिभासित होता है। इसका कारण यही है कि वह जो कुछ भी प्रकाश करता है सो स्वभावसे शुचिताको पाकर ही करता है ॥ ९ ॥ जो जड़ है वह भी उपाधि विशेषके पानानेसे चतुरताको पाजाता है। जरासा पानी तलवारको पाकर हस्तियोंके कठिन मस्तकको भी काट डालता है ॥ १० ॥ आप सरीखे वचन-कुशल पुरुषोंके सामने जो मैं बोलता हूं सो यह अधिकार-प्राप्त पदकी (मंत्रिपदकी) चपलता है। अन्यथा कौन ऐसा सचेतन है जो आपके सामने बोलनेका प्रारम्भ भी कर सके ॥११॥ जिस तरह परस्परमें मिली हुई एवं उन्नत तीनों पवनोंने इस चराचर (जीव और अजीवके समूहरूप) जगत्को धारण कर रक्खा है उसी तरह अति प्रभावशाली और प्रतिमाके धारण करनेवाले आप तीनोंने भी नीति शास्त्रको धारण कर रक्खा है ॥१२॥ श्रोता यदि निर्बोध है तो उसके सामने बोले हुए वचन चाहे वे सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ही क्यों न हों शोभाको नहीं पाते। यदि स्त्री नेत्ररहित पतिके सामने अपना विभ्रम—विलास दिखावे भी तो उससे फल क्या ? ॥१३॥ नीतिकारोंने यह स्पष्ट बताया है कि पुरुषका उत्तम भूषण परमार्थ है। और वह परमार्थ श्रुतज्ञान ही है दूसरा नहीं। श्रुतका

१. घनोदधिवान् धनबान तनुवान।

फल प्रशम—कषायोंकी मंदता और विनय है ॥ १४ ॥ जो विनय और प्रशमको धारण करनेवाला है उसको साधु लोग भी स्वयमेव नमस्कार करने लगते हैं। जगत्‌में साधु समागम अनुरागको करने लगता है, केवल इतना ही नहीं, अनुरागसे पराजित हुआ सारा जगत् स्वयमेव दासताको प्राप्त हो जाता है। इसलिये हे महीपते! विनय और प्रशमको कभी न छोड़ना ॥१५—१६॥ वेगके साथ चलनेवाले हरिणोंको भी वनमें नियमसे वनेचर पकड़ लेते हैं। कुत्सित गुणवाला प्रशंसनीय गुणसे भी किसके कार्यको सिद्ध नहीं करता? ॥१७॥ उपायके जानकारोंने यह कहा है कि कठोरसे कोमल अधिक सुखकर होता है। सूर्य पृथ्वीको तपाता है और चंद्रमा आल्हादित करता है ॥१८॥ प्राणियोंके लिये प्रिय वाक्योंके सिवाय और कोई अच्छा वशीकरण नहीं है। कोयल यथोचित मधुर शब्द करती है इसीलिये लोकोंकी प्रियपात्र होती है ॥ १९ ॥ अतएव हे विद्वन्! आप सरीखे भूपालोंको सामके—सांत्वनाके सिवाय दूसरा कोई ऐसा अस्त्र नहीं है जो विजयके लिये माना जाय। यह तीक्ष्ण नहीं है तो भी हृदयमें प्रवेश करनेवाला है। अपेक्षारहित है तो भी सकल अर्थका साधक है ॥२०॥ यदि कोई राजा कुपित हो रहा हो तो उसको शांत करनेके लिये विद्वान्‌लोग पहले साम—सांत्वनाका ही उपयोग करते हैं। कीचड़—मिश्रित जल क्या निर्मलीके विना प्रसन्न हो सकता है? ॥२१॥ उत्पन्न हुआ क्रोध कठोर वचन बोलनेसे और बढ़ता है; किंतु कोमल शब्दोंसे वह शांत हो जाता है। जिस तरहसे कि दावानल हवासे धधकता है; किंतु मेघोंका बहुतसा जल पड़नेसे शांत हो जाता है ॥ २२ ॥ जो

मृदुतासे—कोमलतासे शांत हो सकता है उसके ऊपर गुरु शस्त्र नहीं छोड़ा जाता। जो शत्रु साम—सांत्वनासे सिद्ध किया जा सकता है उसके लिये दूसरे उपायोंके करनेसे क्या प्रयोजन? ॥ २३ ॥ जो शत्रु सामसे सिद्ध कर लिया गया फिर वह मौकेपर विरुद्ध नहीं हो सकता। जिस अग्निको पानी डाल कर ठंडा कर दिया जाय क्या वह फिर जलनेकी चेष्टा कर सकती है? ॥२४॥ जो महापुरुष हैं वे कुपित-क्रुद्ध हो जांय तो भी उनका मन विकारको कभी प्राप्त नहीं होता। समुद्रका जल फूंसकी आगसे कभी गरम नहीं किया जा सकता ॥२५॥ जो अच्छी तरहसे निश्चय करके नीति मार्गपर चलनेका प्रयत्न करता है उसका कोई शत्रु ही नहीं होता। ठीक ही है, जो पथ्य भोजन करनेवाले हैं उनको क्या व्याधियां जरा भी बाधा दे सकती हैं ॥२६॥ उपायका यदि योग्य रीतिसे विनियोग न किया जाय तो क्या वह अभीष्ट फलको दे सकता है? यदि दूधको कच्चे घड़ेमें रख दिया जाय तो क्या वह सहज ही दही बन सकता है? ॥ २७ ॥ सामने खड़े हुए परिपूर्ण शत्रुका भी मृदुता—कोमलतासे ही भेद हो सकता है। नदियोंका वेग प्रति वर्ष क्या सारे पर्वतका भेदन नहीं कर डालता? ॥२८॥ जगत्में भी तेज निश्चयसे मृदुताके साथ रह कर ही हमेशा स्थिर रह सकता है। दीपक क्या स्नेह-तेल सहित अवस्थाके विना बुझ नहीं जाता ॥२९॥ अतएव मेरी समझ ऐसी है कि अश्वग्रीवके विषयमें निश्चयसे सामसे वर्ताव करना चाहिये और किसी तरह नहीं। यह कहकर मंत्री सुश्रुतने यह जाननेके लिये विराम लिया कि देखें इसपर दूसरे लोग अपना २ क्या मत देते हैं। ॥३०॥

सुश्रुतकी इस तरहकी वाणीको सुनकर अत्यंत तेजस्वी विद्वान् और विजयलक्ष्मीका पति विजय अंतःकरणमें-हृदयमें जल गया, अतएव वह इस तरहके वचन कहने लगा ॥३१॥ पढ़े हुए सम्बन्ध रहित अक्षरोंको तो क्या तोता भी नहीं बोल देगा? यथार्थमें तो विद्वान् लोग उस नीतिवेत्ताकी प्रशंसा करते हैं कि जिसके वचन अर्थके साधक हों ॥ ३२ ॥ जो किसी कारणसे कोप करता है वह तो हमेशा अनुनयसे शांत हो जाता है, किंतु यह बताइये कि जो विना निमित्तकारणके ही रोष करे उसका किस रीतिसे प्रतीकार करना चाहिये? ॥ ३३ ॥ अति प्रिय वचन अतिरोष करनेवालेके कोपको और भी उद्दीप्त कर देते हैं। आगसे अत्यंत गरम हुए घीमें यदि जल पड़ जाय तो वह भी आग हो जाता है ॥ ३४ ॥ जो अभिमानी है किंतु हृदयका कोमल है ऐसे पुरुषको तो प्रिय वचन नम्र कर सकते हैं। परन्तु इससे विपरीत चेष्टा करनेवाला दुर्जन क्या सांत्वनासे अनुकूल हो सकता है? ॥३५॥ लोहा आगसे नरम होता है और जलसे कठोर बनता है। इसी तरह दुर्जन भी शत्रुओंसे पीड़ित होकर ही नम्रताको धारण करता है, अन्यथा नहीं ॥३६॥ नीतिके जाननेवाले महात्माओंने दो तरहके मनुष्योंके लिये दो ही तरहके मतका भी विधान किया है। एक तो यह कि जो महापुरुष हैं उनका और अपने बांधवोंका विनय करना, दूसरा—शत्रुके समक्ष आनेपर महान् पराक्रम करना ॥३७॥ सत्पुरुष भी इस बातको मानते हैं कि पुरुषके दो ही काम अधिक सुखकर हैं। एक तो, शत्रुके सामने खड़े होनेपर निर्भयता। दूसरा प्रिय नारीके कटाक्ष-

पातसे भीरुता ॥३८॥ यद्यपि तृण बहुत दुर्बल होता है तो भी वह अपने प्रतिकूल पवनको नमता नहीं है । वह उस पुरुषसे अच्छा है जो स्वयं शत्रुको नमस्कार करने लगता है ॥३९॥ जिस कारणसे मरा हुआ आदमी गुरुत्व (महत्व, दूसरी पक्षमें भारीपन; क्योंकि मरा हुआ आदमी भारी हो जाता है) को पाता है वह कारण मुझे अब मालूम हुआ । क्योंकि लघुता (दीनता, दूसरी पक्षमें हलकापन; क्योंकि जिंदे मनुष्यका शरीर हलका रहता है) का कारण याचना है सो वह निन्दा आदमीमें बिलकुल नहीं रहती ॥४०॥ क्षमाधर (क्षमा—शांतिको धारण करनेवाला या राजा, दूसरी पक्षमें पर्वत) बहुत उन्नत होता है तो भी उसको लोग सहजहीमें लांघ जाते हैं । बात ठीक ही है; क्योंकि जगत्में कौन ऐसा है जिसके पराभवका कारण क्षमा नहीं होती ॥ ४१ ॥ दिनके अंतमें तेजके नष्ट हो जानेसे ही सूर्य अच्छी तरह अस्तको प्राप्त होता है । अतएव जो उदारबुद्धि हैं वे एक क्षणके लिये भी जाज्वल्यमान तेजको नहीं छोड़ते ॥४२॥ स्वभावसे ही महापुरुषोंसे शत्रुता करनेवाला सांत्वनाओंसे शांतिको धारण कर लेता है ? कभी नहीं । प्रत्युत उससे और भी वह प्रचण्डता धारण करता है । समुद्रकी वडवानल जलसे शांत नहीं होती, प्रचण्ड होती है ॥४३॥ जिसकी बुद्धि मदसे मूर्छित हो रही है ऐसा उद्धत पुरुष हस्तीकी तरह तभी तक गर्जता है जब तक वह सामने भीषण आकारके धारक सिंह समान शत्रुको नहीं देखता है ॥४४॥ एक तो जगत्में दुर्नामक (भयंकर जलजंतु) पहले ही प्राण हरण करनेवाला है फिर भी वह महान् उदयको धारण कर विक्रियाको प्राप्त हो जाय तो कौन बुद्धिमान

है जो विना छेदन किये उसको शांत कर दे॥ ४५ ॥ जो केसरी स्वयं चारो-तरफ हाथीको ढूंढ ढूंढ़कर मारता है क्या वह स्वयं युद्धकी इच्छासे अपने निवासस्थान गुहापर ही आये हुए हस्तीको छोड़ देगा ? ॥ ४६ ॥ आपकी वाणी अनुल्लंघ्य है तो भी उसका उल्लंघन करके मेरा छोटा भाई, अनर्गल हाथीके बच्चेका गंधहस्तीकी तरह क्या अश्वग्रीवका घात नहीं करेगा ? ॥ ४७ ॥ जो मनुष्योंमें नहीं रहता ऐसे इसके दैविक (देवसम्बन्धी) पौरुषको और कोई नहीं जानता, एक मैं ही जानता हूं। इसलिये इस विषयमें आपका केवल मौन ही भूषण है " ॥ ४८ ॥ पौरुष जिसका प्रधान साधन है ऐसे कार्यको पूर्वोक्त रीतिसे बताकर जब दुर्जय विजयने विराम लिया तब मतिसागर नामका बुद्धिमान मंत्री अपने वचनोंको इस तरह स्पष्ट करने लगा ॥ ४९ ॥ कर्तव्यविधिके विषयमें श्रेष्ठ विद्वान् विजयने यहां—आपके सामने सब बात स्पष्ट कर दी है तो भी हे देव ! यह जड़बुद्धि जन कुछ जानना चाहता है ॥ ५० ॥ ज्योतिर्षीने क्या यह सब बात हमसे पहले ही वास्तवमें नहीं कही थी ? अवश्य कही थी, तो भी मैं इसकी उत्कृष्ट अमानुष लक्ष्मीकी परीक्षा करना चाहता हूं ॥ ५१ ॥ जो काम अच्छी तरह विचार करके किया जाता है उससे परिणाममें भय नहीं होता। अतएव जो विवेकी हैं वे विना विचारे कभी कामका आरम्भ नहीं करते हैं ॥ ५२ ॥ जो सात ही दिनमें सम्पूर्ण रथविद्याओंको सिद्ध कर लेगा वह पृथ्वीमें नारायण समझा जायगा और वह इस अर्धचक्रवर्तीको युद्धमें नियमसे जीतेगा ॥ ५३ ॥ कर्तव्य वस्तुके लिये कसौटीके समान मंत्रीके कहे हुए इन

वचनोंको सुनकर सबने वैसा ही माना कि निःसंदेह यह करना चाहिये ॥ ९४ ॥

त्रिपिष्टकी विभूतिकी परीक्षा करनेके लिये ज्वलनजटीने उसके साथ २ विजयको भी पुरुविद्याओंके सिद्ध करनेकी उत्तम विधि बताई ॥ ९५ ॥ जिसको दूसरे बारह वर्षमें विधिसे भी सिद्ध नहीं कर सकते वही महारोहिणी विद्या इसके सामने स्वयमेव आकर सहसा प्रकट होगई ॥ ९६ ॥ पन्नगवाहिनी, ईशवाहिनी आदिक दूसरी समस्त विद्यायें भी आकर उपस्थित हुईं। अहो उत्कृष्ट पुण्य–संपत्तिके धारक महात्माओंको असाध्य क्या है? ॥९७। सिंहवाहिनी, वेगवती, विजया, प्रभंकरी इत्यादि पांचसौ उत्कृष्ट विद्यायें सात दिनमें विजयके वश हुईं ॥ ९८ ॥ विजयके छोटे भाई त्रिपिष्टने भी जब अति परिमित दिनोंमें विद्याओंको वशमें कर लिया तब राजा–प्रजापति और विद्याधरोंका स्वामी–ज्वलनजटी इन दोनोंने निश्चितरूपसे उसको जगत्के धुरापर विराजमान कर दिया ॥९९॥

युद्धमें शत्रुओंका हनन करने लिये जानेकी इच्छा करनेवाले त्रिपिष्टकी विजय–श्रीका मानों कथन ही कर रहे हैं। इस तरहसे पृथ्वी और आकाश मृदंगोंके अत्युन्नत शब्दोंसे एकदम व्याप्त हो गया ॥६०॥ मंगलसूचक शुभ शकुनोंसे जिसकी समस्त सेना संतोषको प्राप्त हो गई ऐसा त्रिपिष्ट तोरण और ध्वजाओंसे सुसज्जित नगरसे हाथीपर चढ़कर निकला ॥६१॥ मकानोंके आगे खड़े होकर स्त्रियोंने अपने नेत्रोंके साथ २ खीलोंकी भरी हुई अंजलियाँ इसके ऊपर इसतरह बखेरीं मानों ये इसकी निर्मल कीर्तिको ही पृथ्वीपर फैला रही हैं ॥६२॥ हाथियोंकी अंबारियोंपर लगी

हुई ध्वजाओंके समूहसे केवल आकाश ही नहीं ढका; किंतु दूसरे राजाओंके लिये अत्यंत दुःसह चक्रवर्तीका समस्त तेज भी ढक गया ॥६३॥ रथोंके घोडोंकी टापोंके पड़नेसे पृथ्वीमें जो गधेके बालोंकी तरह धूलि उठी उससे केवल समस्त जगत ही मलिन नहीं हो गया; किंतु शत्रुका यश भी उसी समय मलिन हो गया ॥६४॥ गुरु सेनाके भारसे पीड़ित होकर केवल पृथ्वी ही चलायमान नहीं हुई; किन्तु पवनके मारे मूलमेंसे ही उखड़ जानेवाली लताके समान शत्रुके हृदयमेंसे लक्ष्मी भी चलायमान हो गई ॥६५॥ उस समय जिनसे मदजलकी झड़ी चुचा रही थी फिर भी जो पीलवानोंके वश थे और इसीलिये जिन्होंने अपनी रोष—क्रोध—वृत्तिको दूर कर दिया था, ऐसे मदोन्मत्त हस्ती क्रीड़ासे लालित्यको दिखाते हुए निकले ॥६६॥ बिजलीके समान उज्ज्वल सोनेके भूषणोंको धारण करनेवाले, जिनके गलेमें चमर चंचल हो रहे हैं, एवं जो इतनी जल्दी चलते थे कि जिससे यह नहीं मालूम पड़ सकता कि इनके चरणोंके बीचमें विलम्ब भी लिया या नहीं; घुड़सवार ऐसे २ घोड़ोंपर चढ़ २ कर निकले ॥६७॥ दूसरे देशोंके राजा भी यथेष्ट वाहनोंपर चढ़कर, श्वेतछत्रसे आतापको दूर कर, गमनके योग्य भेषको धारणकर उसके पीछे २ निकले ॥६८॥ रज, सेनाकी धूलिके भयसे भूतलको छोड़कर आकाशमें चला गया। वहां व्याकुल होकर सबसे पहले उसने विद्याधरकी सेनाको घेरकर ढक दिया ॥६९॥ परस्परमें एक दूसरेके रूप, भूषण, स्थिति, सवारी आदिके देखनेमें उत्सुक दोनों सेनाएं आकाशमें चिरकाल तक अधोमुख और उन्मुख रहीं। अर्थात् प्रजापतिकी सेना उन्मुख और विद्याधरकी सेना

अधोमुख रही ॥७०॥ जिसकी ध्वजायें वेगसे निश्चल होगई हैं ऐसे उत्तम विमानमें पुत्र सहित बैठकर विद्याधरोंका अधिपति आकाशमार्गसे सेनाको देखता हुआ निकला ॥ ७१ ॥ उसने देखा—अतिसौम्य और अतिभीम दोनों पुत्रोंके आगे आगे मार्गमें जाता हुआ प्रजापति ऐसा मालूम पड़ता है, मानों नय (नीति) और पराक्रमके आगे २ प्रशम (शांति—कषायोंका अनुद्रेक) ही जारहा है ॥ ७२ ॥ अपनी २ वनिताओंके साथ साथ विद्याधरोंने ऊंटको देखा कि जिससे उनके मुखपर कुछ हँसी आगई। ठीक ही है—अपूर्वता उसीका नाम है जो कांतिशून्य वस्तुमें भी मनोहरताको उत्पन्न करदे ॥ ७३ ॥ आकाशमार्गसे जाते हुए हाथियोंका जो निर्मल पाषाणमें प्रतिबिम्ब पड़ा उसकी तरफ झुकता हुआ मदोन्मत्त हस्ती पीलवानकी भी परवाह न करके मार्गमें ही रुक गया ॥७४॥ आश्चर्यकारी भूषणोंसे भूषित, पीनसोंमें चढ़े हुए, जिनके आगे २ कंचुकी चल रहे हैं ऐसे राजाओंके अंतःपुरको लोग मार्गमें भय और कौतुकके साथ देखने लगे ॥७५॥ गहरे २ कड़ाहोंको, कठोटियोंको, कलशों—हंडोंको तथा पहरनेके कपड़ों—वर्दियोंको एवं और भी अनेक तरहकी सामग्रीको लेकर मात्र ढोनेवाली गाड़ियां इतनी तेजीसे चलने लगीं, जिससे यह मालूम पड़ने लगता मानों इनमें बिल्कुल बोझा ही नहीं है ॥ ७६ ॥ जिन्होंने किरणोंके द्वारा अपने आनंदको प्रकट करनेवाली तलवारको हाथमें ले रक्खा है, जो झटसे गड्ढों और छोटे २ वृक्षोंको भी लांघ जाते हैं, ऐसे बड़े २ योद्धा अपने अपने स्वामियोंके घोड़ोंके आगे २ चपलतासे दौड़ने लगे ॥ ७७ ॥ सहसा आगे हाथीको देखकर सवारने अपने घोड़ोंको

कुदाया और वह भी निशंक होकर कूद गया, ठीक ही है—जातिके अनुसार चेष्टा हुआ करती है ॥ ७८ ॥ जिसको खोटी शिक्षा मिलती है वह विपत्तियोंका ही स्थान होता है। देखिये न बुरी तरह शब्द करनेवाले—हिनहिनानेवाले घोड़ेने बारबार उछलकर अपने सवारको नवीन गेंदकी तरह ऐसा पटका कि जिससे उसका सारा शरीर घायल होगया ॥ ७९ ॥ गोरसोंकी—घी—दूध दहीकी खूब भेट करनेवाले, मर्दित—दांय चलेहुए धान्यको लिये हुए किसानोंने मार्गमें भूपालको देखा, जो कि जोर जोरसे यह कह रहेथे कि कोटयों राजाओंसे वेष्टित यह प्रजापति—राजा अपने पुत्रों सहित रक्षा—जगतका शासन करो। सब जगहसे शहरके लोग भी आश्चर्यके साथ उसकी सेनाको देखने लगे ॥८०–८१॥ ध्वजाओंकी पंक्तिको कंपानेवाली, झरनाके जल-कणोंको धारण करनेवाली हस्तियोंके द्वारा तोड़े गये अगुरु वृक्षोंकी सुगंधसे सुगंधित हुई पहाड़ी वायु उसकी सेनाकी सेवा करने लगी ॥८२॥ अटवियोंके—वनियोंके स्वामी भी वनमें इससे आकर मिले और मिलकर वहुतसे हाथीदांत चामरोंसे जिनमें कि कस्तूरी कुरङ्क भी रक्खा गया है उसकी आदरसे सेवा करने लगे ॥ ८३ ॥ प्रत्येक पर्वतपर अंजनपुंजकी शोभाको उत्पन्न करनेवाले, सेनाको देखकर भयसे पलायन करनेवाले हाथियोंको क्षणभरके लिये इस तरहसे देखा मानों ये जंगम—चलते फिरते अन्धकार—समूह हीहैं ॥८४॥ जिनका देखना मात्र सत्फल है, जो पीन (कठोर और उन्नत तथा स्निग्ध) पयोधरों (स्तनों, दूसरी पक्षमें मेघों) की श्रीको धारण किये हुए हैं, जिनके पत्रोंके ही वस्त्र हैं ऐसी भीलिनियों और पहाड़ी नदियोंको

देखकर वह प्रसन्न हुआ ॥८५॥ बड़े २ पहाड़ोंको दलन करता हुआ, नदियोंके ऊंचे २ तटोंको गिराता हुआ, विपथ–खोटे मार्गको अच्छी तरह प्रकाशित करता हुआ–स्पष्ट करता हुआ, सरोवरोंकी जलश्रीको गदला करता हुआ, रथोंके पहियोंकी चीत्कारसे आदमियोंके कानोंको व्यथित करता हुआ, दिशाओंके विवरों–छिद्रोंको वायुमार्गको ढक देनेवाली धूलिसे भरता हुआ वह प्रथम नारायण त्रिपिष्ट अपनी उस बड़ी भारी सेनाको आगे बढ़ाता हुआ जो कि घोड़ोंकी विभूतिसे ऐसी मालूम पड़ती थी मानों इसमें तरंगें उठ रही हैं, जो आयुधोंकी ज्योतिसे ऐसी मालूम पड़ती थी मानों इसमें बिजली चमक रही है, जिनसे मद झर रहा है एवं चलते हुए पर्वतोंके समान मालूम पड़नेवाले हाथियोंसे जो ऐसी मालूम पड़ती थी मानों जलसे भरा हुआ मेघ ही है। अंतमें वह कुछ थोड़े ही मुकाम करके उस रथावर्त नामके पहाड़पर पहुंचा जिसके ऊपर शत्रुकी सेना पड़ी हुई थी ॥८६–८७–८८–८९॥

सेनापतिने ऐसी जगह पहले ही जाकर देख ली कि जहां सरस घास वगैरह प्रचुरतासे मिल सकती हो, और जो घने वृक्षोंकी श्रेणीसे शोभित हो। बस उसी जगह एक नदीके किनारे सेना ठहरी ॥ ९० ॥ मजूर लोग पहले ही पहुंच गये थे। उन्होने जल्दीसे जगह वगैरह साफ करके कपड़ोंके डेरे और राजाओंके रहने लायक छोटे २ मकान बना दिये। प्रत्येकके रहनेके (राजाओं आदिके) स्थानपर उन २ के निशान लगे हुए थे ॥९१॥ जिनको सम्पूर्ण बन्दोबस्त मालूम हो चुका है ऐसे सेनाके लोगोंने बखतर झंडे तथा पलान वगैरहको उतारकर अत्यंत गर्मीसे संतप्त हुए हाथियों-

को जलमें स्नान कराकर जहां सेना पड़ी हुई थी उसके पास ही सघन वृक्षोंमें बांध दिया ॥ ९२ ॥ पसीनेकी बिंदुओंसे जिनका सारा शरीर भर रहा है, तथा जिनके ऊपरसे जीन उतार लिया गया है, ऐसे श्रेष्ठ घोड़े जमीनपर लोटकर खड़े हुए और जलमें अवगाहन—स्नान कर तथा जल पीकर, बंधे हुए विश्राम लेने लगे ॥ ९३ ॥ राजालोग भी हाथिओंकी सवारी छोड़कर श्रम दूर करनेके लिये जमीनपर बिछी हुई गद्दियोंपर लेट गये। और नौकर लोग ताड़वृक्षके पंखाओंसे हवा करके उनका पसीना सुखाने लगे ॥ ९४ ॥ ऊंटके ऊपरसे हथियारोंका बोझा उतारो। इस जमीनको साफ करो। ठंडा पानी लाओ, महाराजके रहनेकी इस जगहको—डेरेको उखाड़कर इसके चारोंतरफ कनात लगाकर इसे फिरसे सुधारो, यहांसे रथको हटाओ और घोड़ेको बांधो, बैलोंको जंगलमें लेजाओ, तू घासके लिये जा, इत्यादि जो कुछ भी अधिकारियोंने—हाकिमों-ने आज्ञा की उसको नौकरलोग बड़ी जल्दीसे पूरा करने लगे। क्योंकि सेवक स्वतन्त्र नहीं होता ॥ ९५–९६ ॥ राजाओंकी अद्वितीय रानियां भी, जबकि उनकी परिचित परिचारिकाओं—दासियोंने अपने हाथके अग्रभागों—अंगुलियोंसे दाबकर उनकी सवारीकी थकावटको दूर कर दिया, तब स्वयमेव सम्पूर्ण दैनिक कर्मको अनुक्रमसे करने लगीं ॥ ९७ ॥ जिसपर अत्यंत प्रकाशमान तोरणकी शोभा होरही है ऐसा यह महाराजका निवासस्थान है। इसकी पहचान गरुड़के झंडेसे होती है। यह विद्याधरोंके स्वामीका डेरा है जिसने कि नानाप्रकारके विमानोंके ऊपरी भागसे—शिखरोंसे मेघोंको भी भेद दिया है। यह क्रय विक्रयमें तल्लीन हुए बड़े २

जवानोंसे भरा हुआ बजार है। यह ज्वारियोंकी जगहके पास ही अच्छी २ वेश्याओंका कैम्प भी लगा है। इस तरह सारी सेनाका वर्णन करने वाले, पड़े हुए बूढ़े बैलके बोझको ढोनेवाले, बहुत देर तक काममें लगे रहनेवाले नौकरोंने अपने रहनेके स्थानको भी मुश्किलसे देखा ॥ ९८-९९-१०० ॥ सेनाके लोग पीछे रहजानेवाले अपने सैनिक प्रधानों-अधिकारियोंको भेरीके शब्दोंसे बुलाने लगे, भिन्न २ तरहकी विचित्र ध्वजाओंको प्रत्येक दिशाओंमें उठा २ कर वे अपने लोगोंको बार २ बुलाते थे ॥ १०१ ॥ पुरुषोत्तम-त्रिपिष्टने मार्गके अत्यधिक थकावटसे लँगडाजानेवाले विश्वस्त सेवकोंके साथ, संपत्ति-भोगोपभोग सामग्रीसे पूर्ण अपने डेरेमें प्रवेश किया। और 'आपलोग अपनी २ जगह पधारें' यह कह राजाओंको विदा किया, तथा 'तुम्हारी घनी पक्ष्मराजिपर-पलकोंपर धूल बहुत जम गई है' यह कह छलसे अपनी प्रियाको चुम्बन किया ॥१०२॥

इस प्रकार श्री असंग कविकृत वर्द्धमान चरित्रमें 'सेनानिवेशन' नामका सातवां सर्ग समाप्त हुआ।

आठवां सर्ग।

एक दिन विद्याधरोंके चक्रवर्ती अश्वग्रीवके हुक्मसे सम्पूर्ण बातको जाननेवाला एक संदेशहर-दूत सभामें आकर महाराजको नमस्कार कर इसतरहके वचन बोला ॥१॥ आपके गुणगण परोक्षमें सुननेवाले विद्वानोंको केवल आपकी दिव्यताको सूचित करते हैं इतना ही नहीं; किंतु जो आपके शरीरको देखनेवाले हैं उनको यह

भी सुचित करते हैं कि आपमें ये दोनों—गुणगण और दिग्गता—दुर्लभतासे रह रहे हैं ॥२॥ सदा समुन्नत रहनेवाली यह आकृति आपके मानसिक धैर्यको प्रकट करती है । समुद्रकी तरङ्गपंक्ति क्या उसके जलकी अति गम्भीरताको नहीं बताती॥३॥ जिनमेंसे अमृत-रसकी छटा छूट रही है ऐसे ये आपके शीतल वचन हृदयके कठोर मनुष्यको भी इसतरह पिघला देते हैं, जैसे चन्द्रमाकी किरणें चन्द्र-कांत मणिको ॥४॥ अधिक गुणोंके धारक आप यदि अश्वग्रीवसे अच्छी तरह स्नेह करें तो क्या सद्गुणोंसे प्रेम करनेवाला वह चक्र-वर्ती साधुताको स्वीकार नहीं करेगा ? क्योंकि जगतमें साधुपुरुष परोक्ष—बंधु होते हैं ॥५॥ समुद्र और चन्द्रमाकी तरह आप दोनोंको निःसंदेह ऐसा सौहार्द (मित्रता) कर लेना ही युक्त है कि जिसका उदय अविनश्वर हो—जो कभी टूटनेवाला न हो—तथा जो परस्परमें—एक दूसरेके लिये क्षम—योग्य हो ॥६॥ कुशल—बुद्धियोंका कहना है कि जन्मका फल गुणोंका अर्जन करना—इकट्ठा करना—संग्रह करना ही है। और गुणोंका फल महात्माओंको संतुष्ट करना है। इसी तरह महात्माओंके संतुष्ट करनेका फल समस्त सम्पत्तिओंका स्थान है ॥७॥ जो कार्य कुशल होते हैं वे पहलेसे ही केवल कल्याणके किये निर्मल बुद्धिरूपी सम्पत्तिसे सब तरफसे अच्छी तरह विचार करके ही किसी भी कामको करते हैं; क्योंकि इसतरहसे जो क्रिया की जाती है वह कभी विघटित नहीं होती ॥८॥ जो अपने मार्गसे उलटा ही चलता है क्या वह अभीष्ट दिशाको पहुंच सकता है ? दुर्नय—खोटे व्यवहारमें फलको आगे देखकर क्या उसका मन खेद-को नहीं पाता है ? ॥९॥ जो नीतिके जाननेवाले हैं वे, स्वामी मित्र

इष्ट-सेवक स्त्री भाई पुत्र गुरु माता पिता और बांधव, इनसे विरोध नहीं करते ॥१०॥ नीतिके समझनेवाले होकर भी आपने जो यह पड़ाव डाला है सो आपने अपने योग्य काम नहीं किया है। क्योंकि अभिन्नहृदयी चक्रवर्तीने पहले स्वयं स्वयंप्रभाको मांगा था ॥११॥ यह ठीक है कि यह बात आपने अभी सुनी होगी, नहीं तो ऐसा कौन होगा कि जिसको पहलेहीसे अपने स्वामीकी चित्तवृत्ति मालूम पड़ जाय फिर भी वह उसकी विनयका उल्लंघन करे ॥१२॥ अब चक्रवर्तीने यह बात कही है कि परोक्ष बंधुने मेरी परीस्थितिके विना जाने स्वयंप्रभाका स्वीकार कर लिया है। उन्होने यह काम मात्सर्यको छोड़कर किया है इसी लिये इसमें कोई दोष नहीं है ॥ १३ ॥ जो अन्तरात्मासे प्रेम करनेवालोंके जीवनको यथार्थमें मनोहर मानता है क्या उसके हृदयमें बाह्य वस्तुओंमें किसी भी तरह लोभकी एक मात्रा भी उत्पन्न हो सकती है? ॥ १४ ॥ बुद्धिमान आपको यदि इस कन्यासे ही प्रयोजन था तो तुमने पहले अश्वग्रीवसे ही क्यों नहीं प्रार्थना की? क्या वह उत्कृष्ट और अभीष्ट भी स्वयंप्रभाको छोड़ नहीं देता? ॥ १५ ॥ क्या उसके अप्सराओंके समान मनको हरनेवाली बहुतसी स्त्रियां नहीं है? परन्तु केवल बात इतनी ही है कि उसका मन इस अतिक्रम–विरुद्ध प्रवृत्तिको सहनेके लिये बिल्कुल समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥ जिस अनुपम और अक्षय सुखमें आप चक्रवर्तीका अनुनय–खुशामत करके प्रवेश कर सकते हैं, उस सुखको आप ही बताइये कि आप स्वयंप्रभाके चंचल नेत्रोंके विलासको देखकर किस तरह पा सकते हैं? ॥ १७ ॥ जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीतलिया है उसका दूसरेसे

पराभव कभी नहीं होता। यथार्थमें मनस्वियोंने उसी जीवनको प्रशंसनीय माना है जो पराभवसे खाली है—जिसका कभी तिरस्कार नहीं हुआ ॥ १८ ॥ मनुष्य तभी तक सचेतन है, और तभी तक वह कर्तव्याकर्तव्यको समझता है, एवं तभी तक वह उन्नत मानको भी धारण करता है, जबतक कि वह इन्द्रियोंके वश नहीं होता ॥ १९ ॥ चाहे जितना भी कोई उन्नत क्यों न हो यदि वह स्त्री रूपी पाशसे बंधा हुआ है तो उसको दूसरे लोग पादाक्रांत कर देते हैं। जिसके चारो तरफ बेल लिपटी हुई है ऐसे महान् वृक्षके ऊपर क्या बालक भी झटसे नहीं चढ़ जाता ॥२०॥ ऐसा कौन संसारी है कि जिसको इन्द्रियोंके विषयोंमें आशक्ति आपत्तिका स्थान—कारण नहीं होती। मानों इसी बातको बताती हुई या हाथियोंकी डिंडिम—ध्वनि—हाथियोंके ऊपर बजनेवाले नगाड़ोंका शब्द—विद्वानोंके कानोंमें आकर पड़ता है ॥२१॥ देखो जरासे सुखके लिये विद्याधरोंके अधिपति ज्वलनजटीसे प्रेम मत करो। तुमको इस तरहकी स्त्री तो फिर भी मिल जायगी पर उस तरहका प्रतापी तेजस्वी मित्र फिर नहीं मिलेगा ॥२२॥ आपके विवाहके मालूम पड़नेपर उसी वक्त बहुतसे विद्याधर तुमको मारनेके लिये उठे थे; पर स्वयं स्वामीने ही उनको रोक दिया था। यह और कुछ नहीं, महात्माओंकी संगतिका फल है ॥२३॥ अब मेरे साथ स्वयंप्रभाको स्वामीकी प्रसन्नताके लिये उनके पास अपने मंत्रियोंके साथ २ भेज दीजिये। दूसरेकी स्त्रियोंसे सर्वथा निःस्पृह रहनेवाला वह स्वयं याचना करता है। इससे और अच्छो बात क्या हो सकती है ?" ॥२४॥ जब इस तरहके हृदयको फड़का देनेवाले वचनोंको कहकर

दूत मौन धारणकर बैठ गया; तब त्रिपिष्टने बलसे कहनेके लिये विनयपूर्वक आंखके इशारेसे प्रेरणा की। और उसने भी शत्रुके विषयमें अपनी भारतीको इस तरह प्रकट किया॥२५॥ अर्थशास्त्र-नीतिशास्त्रसे जो मार्गविहित-सिद्ध-युक्त-है उसी मार्गसे जिसमें इष्टको साधा गया है ऐसे ओजस्वी वचनोंका तुम्हारे सिवाय और कौन ऐसा है जो सभामें कहनेका उत्साह कर सके। ये वचन दूसरोंके लिये दुर्वच (दुःखसे कहे जा सकने योग्य, दूसरी पक्षमें खोटे वचन) हैं॥२६॥ अश्वग्रीवको छोड़कर सत्पुरुषोंका वल्लभ तथा व्यवहार-कुशल और कौन कहा जा सकता है। पर ऐसा होकर भी वह नियमसे लौकिक क्रियाओंको नहीं जानता। अथवा ठीक ही है-जगत्में ऐसा कौन है जो सब बातोंको जानता हो॥२७॥ जगत्में जो कन्याको वर लेता है वही उसका नियमसे वर समझा जाता है। और वही क्यों समझा जाता है। इसका निश्चित कारण भाग्य ही माना गया है। ऐसा कोई भी शक्तिधारी नहीं है जो उस दैवका उल्लंघन कर सके॥२८॥ तुम्हारा मालिक नीति-रहित कामके करनेपर उतारू हुआ है, भला तुम तो समझदार हो और सज्जन भी हो तुमने उसको क्यों नहीं रोका? अथवा आश्चर्य है कि विद्वान् लोग भी अपने मालिकके मतको-चाहे वह खोटा ही क्यों न हो-निश्चित मान लेते हैं॥२९॥ पूर्व पुण्यके उदयसे अनेक प्रकारकी मनोहर वस्तुएं किसको नहीं मिल जातीं? फिर

---

१. मूलमें 'वर्त्मना साधितेष्टम्' ऐसा पाठ है। इसमें 'असाधितेष्टम्' ऐसा भी पदच्छेद हो सकता है। जिससे यह अर्थ भी हो जाता है कि जिसमें इष्टको नहीं साधा गया है।

बलवान् होकर तुम उसीकी क्या तारीफ करते हो ? ये क्रियां भले आदमियोंको अच्छी नहीं लगती ॥३०॥ योग्य संगमवाले पुरुषको देखकर दुर्जन विना कारणके ही स्वयं कोप करने लगता है। आकाशमें निर्मल चांदनीको देखकर कुत्तेके सिवाय दूसरा कौन भोंकता है ? ॥३१॥ जो विवेकरहित होकर सत्पुरुषोंके अमाननीय मार्गमें स्वेच्छाचारितासे प्रवृत्ति करता है वह निर्लज्ज निश्चयसे पशु है। अन्तर इतना ही है कि उसके बड़े २ सींग और पूंछ नहीं है। अतएव कौन ऐसा होगा जो उसको दण्डित न करेगा (दण्ड देना—सजा देना; दूसरी पक्षमें डण्डा मारना) ॥ ३२ ॥ जिसका जीवित रहना मांगनेपर ही निर्भर है ऐसा कुत्तेका बच्चा यदि मांगता है तो ठीक ही है; पर मनुष्योंमें तो अश्वग्रीवके सिवाय दूसरा और कोई ऐसा नहीं है जो इस तरहकी याचनाकी तरकीब जानता हो ॥ ३३ ॥ मेरी लक्ष्मी दूसरोंसे अत्यधिक है, मैं दूसरोंसे दुर्जय हूं, इस तरहका गर्व करके जो राजा दूसरोंका निष्कारण तिरस्कार करता है, भला वह जगत्में कितने दिनतक जीवित रह सकता है ॥ ३४ ॥ सत्पुरुष दो आदमियोंको ही अच्छा मानते हैं, और उन्हीके प्रशस्त जन्मकी सभाओंमें प्रशंसा होती है। एक तो वह शत्रुके सामने आनेपर निर्भय रहता है, दूसरा वह जो सम्पत्ति पानेपर भी मनमें मद नहीं करता ॥ ३५ ॥ सत्पुरुष उस दर्पणके समान है जो सुवृत्तता (सदाचार, दूसरी पक्षमें गोलाई) को धारण करता हुआ, भूति (वैभव—ऐश्वर्य, दूसरी पक्षमें भस्म) को पाकर निर्मल बनता है। और दुर्जन उस गधेके समान है जो प्रेत भूमिमें गड़े हुए शूलकी तरह भयंकर होता है ॥ ३६ ॥

जिस तरह चाहे उसी तरहसे ऐसे सर्पके फणमेंसे रत्नके निकाल लेने-की इच्छा करे जो अपने नेत्रसे निकली हुई जहरीली आगकी प्रभाके स्पर्शमात्रसे ऐसा कौन दुर्बुद्धि होगा जो अपने आसपासके वृक्षोंकी श्रीको भस्म करडालता है ॥ ३७ ॥ तुम्हारे मालिकको—जिसका हृदय कुशलतासे खाली और मदसे मत्त हो रहा है, क्या यह बात मालूम नहीं है कि हाथी, चाहे उसकी चेतना मदसे नष्ट ही क्यों न होगई हो तो भी क्या वह अपनी सूंड़में सांपको रखलेता है ? ॥ ३८ ॥ जो सिंह मदोन्मत्त हस्तियोंके कुम्भस्थलोंके विदा-रण करनेमें अति दक्षता रखता है यदि उसकी आंख निद्रासे मुंद जाय तो क्या उसकी सटाको गीदड़ नष्ट कर देंगे ? ॥ ३९ ॥ जिसका हृदय नीतिमार्गको छोड़ चुका है वह विद्याधर किस तरह कहा जासकता है ? उन्नतिका निमित्त केवल जाति नहीं होती। आकाशमें क्या कौआ नहीं चला करता ? ॥ ४० ॥ इस प्रकार प्रशस्त और तेजस्विताके भरे हुए तथा फिर जिसका कोई उत्तर नहीं दे सके ऐसे वचन कहकर जब बल चुप होगया तब वह दूत सिंहासनकी तरफ मुख करके इस तरह बोला ॥ ४१ ॥ यहांपर (सभामें अथवा जगत्में) मूर्ख मनुष्यकी बुद्धि अपने आप अपने हितको नहीं पहचान सकती है तो यह कोई विचित्र बात नहीं है परन्तु यह बड़ी ही अद्भुत बात है जो स्वयं भी नहीं समझता और दूसरा जो कुछ कहता है उसको भी नहीं मानता ॥ ४२ ॥ बिल्लीका बच्चा जीभके वशमें पड़कर दूध पीना चाहता है; पर घन समान दुःसह और अत्यंत पीडा देनेवाला दंड गर्दनपर पड़ेगा उसको नहीं देखता ॥ ४३ ॥ चमचमाते हुए चंचल खड्ग को हाथमें लिये हुए शत्रु को

युद्धमें जिसने कभी देखा ही नहीं है वह महात्माओंके सामने अपने अनुचित पौरुषकी प्रशंसा किस तरह करता है सो समझमें नहीं आता ॥ ४४ ॥ उत्कृष्ट वीर वैरियोंके सामने युद्धमें ठहरना दूसरी बात है। और अपने रनवासमें जिसतरह मनमें आया उसी तरह रणकी बात करना यह दूसरी बात है ॥४५॥ जैसा मुंहसे कह सकते हैं वैसा ही महान् युद्धमें क्या पराक्रम भी कर सकते हैं? मेघ जैसा कानोंको अति भयंकर गर्जना है। क्या वैसा ही वर्षता भी है ॥४६॥ मदोन्मत हस्तियोंकी घटाओंसे व्याप्त युद्धमें कौन किसका मित्र होता है। जगतमें यही बात प्रायः सबमें देखी गई है कि "यही बड़ी बात है जो प्राण बच गये" ॥४७॥ नदीके किनारों पर उत्पन्न होनेवाले जो वृक्ष उद्धतता धारण करते हैं—नमते नहीं हैं—उनको क्या जलका वेग जड़मेंसे उखाड़ नहीं डालता है? जरूर उखाड़ डालता है। किंतु बेंत नम जाता है इसीलिये वह बढ़ता है। सो यह ठीक ही है, क्योंकि खुशामद ही जीवनको रखती है ॥४८॥ अपने तेजसे जिसने राजाओंके ऊपर शत्रुको और मित्रको भी रख दिया है तथा दोनोंको सज्जनताके पदपर रक्खा है, उसकी बराबर और कोई भी उत्तम नहीं है ॥४९॥ जब कभी मेघ बनमें निष्ठुरतासे गर्जने लगता है उस समय हिरणोंके बच्चोंके साथ साथ शत्रुओंकी बुद्धि क्या अब भी इस शंकासे त्रस्त नहीं हो जाती, और क्या वे मूर्च्छित नहीं हो जाते कि कहीं यह तो अश्वग्रीवके चापका—धनुषका शब्द है ॥५०॥ उसके शत्रुओंकी ऐसी स्त्रियां कि जिनके पैर डाभकी नोकोंके लग जानेसे अंगुलियों-मेंसे बहते हुए खूनके महावरसे रंग गये हैं, और जिनकी आंखें बाष्प (आंसू या पसीना) से भरी हुई हैं, जो भयसे व्याकुल हो रहीं

हैं, जिनके बांये हाथको उनके पतियोंने अपने हाथमें पकड़ रक्खा है, दावानलके चारों तरफ पैरोंको टेढ़ामेढ़ा डालती हुई घूमती हैं। जिससे ऐसा मालूम पड़ता है मानों इस समय वनमें इनका फिरसे विवाहोत्सव हो रहा है ॥ ९१–९२॥ रस्तागीरोंकी टोली भयसे एक दूसरेकी प्रतीक्षा न करके त्रस्तचित्त होकर झटसे वनमें चली जाती है। क्योंकि वह अश्वग्रीवके शत्रुओंके मकानोंको ऐसा देखती है कि जहां पर इतने बांस उत्पन्न होगये हैं कि जिनसे उनके भीतर गहन अंधकार छागया है, उनके चारो तरफका परकोटा बिल्कुल टूटफूट गया है, जंगली हाथियोंने उनके बाहरके दरवाजोंको तोड़ डाला है, सदर दरवाजेके पासका आंगन खंभोंसे ऐसा मालूम पड़ता है मानों इनके दांत निकल रहे हैं, जिनमें छोटी २ पुतलियोंपर सर्पराजोंने अपनी केंचुली छोड़ दी हैं जिससे वे ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों उन्होंने यह ओढ़नी ओढ़ रक्खी है, जहांपर चित्रामके हाथियोंके मस्तकोंको सिंहोंके बच्चोंने अपने नखरूप अंकुशोंको मार २ कर विदीर्ण कर डाला है, जमीनके फर्समें जलकी शंकासे मृगसमूह अपनी प्यासको दूर करना चाहते हैं और मर्दन करते हैं। एक तरफ जो फूटा हुआ नगाड़ा पड़ा है उसको बंदर अपने हाथोंसे निशंक होकर बजा रहे हैं, एक सोनेकी शयन करनेकी वेदिका बाकी रह गई है जिसको यौवनसे उद्धत हुई भीलोंकी सुंदरियां अपने काममें लेती हैं, जहांपर शुक सारिकायें पींजरेमेंसे छूटकर नरनाथका मंगलपाठ कर रहीं हैं ॥९३–९७॥ महान् पुण्य–संपत्तिके भोक्ता उस अश्वग्रीवके उन्नत वज्रतुंब चक्रको क्या तू नहीं जानता? जो सुवर्णसमान निकलती

हुई अग्निकी ज्वालाओंसे आठों दिशाओंको चकित कर देता है, जिसकी रक्षा देव करते हैं, जो अक्षय है—कोई उसका क्षय नहीं कर सकता, जो सूर्यबिम्बके समान अति प्रकाशमान है, जिसमें एक हजार आरे हैं, जिसके द्वारा समस्त नरेन्द्र और विद्याधरोंको वशमें कर रक्खा है, तथा जो अरिचक्र—शत्रुसमूहको मर्दित कर डालता है ॥५८—५९॥ इसी तरहसे जब वह उद्धत दूत बोल रहा था तब स्वयं पुरुषोत्तमने जिन्होंने युद्धका निश्चय कर लिया था उसको रोककर कहा कि "हमारे और उसके युद्धके सिवाय और कोई भी इसकी परीक्षाकी कसौटी नहीं हो सकती ॥ ६० ॥ इसपर त्रिपिष्टके हुकुमसे शंख बजानेवालेने युद्धकी उद्घोषणा करने वाले शंखको बजाया। और उससे ऐसा शब्द हुआ जिससे कि समस्त राजाओंकी सेनाओंके विल्कुल भीतरसे प्रतिध्वनि निकलने लगी ॥ ६१ ॥ रणभेरीकी ध्वनि, जो कि जलके भारसे नम्र हुए मेघोंके शब्दकी मनमें शंका करनेवाले मयूरोंको आनंद करनेवाली थी, योद्धाओंको सावधान करती हुई दिशाओंमें फैल गई ॥६२॥ बंदीजनोंके द्वारा अपने नामकी कीर्तिकी स्तुति कराते हुए सैनिक लोग सब तरफसे जय जय शब्द करके रणभेरीके शब्दका अच्छी-तरह अभिनंदन कर फुर्तीसे युद्ध करनेके लिये तैयारी करने लगे ॥ ६३ ॥ किसी २ योद्धाका शरीर उसके हृदयके साथ २ युद्धके हर्षसे फूल गया। इसीलिये अपने नौकरोंके बार २ प्रयत्न करनेपर भी वह अपने कवचमें समा न सका ॥ ६४ ॥ भ्रमर-समान काले लोहेके कवचको पहरे हुए तथा जिसमेंसे प्रभा निकल रही है ऐसी तलवारको घुमानेवाले किसी योद्धाने जिसमें बिजली

चमक रही है ऐसे पृथ्वीश्वर प्राप्त नवीन मेघकी सदृशताको धारण किया ॥ ६५ ॥ हाथी कलकल शब्दसे व्याकुल हो उठा। इसी लिये उसने दूनी उन्मत्तता धारण की। तो भी चतुर पीलवान झटसे उसको हाथीखानेमें ले गया। जो कुशल मनुष्य होता है उसको चाहे जैसा आकुलताका कारण मिले तो भी वह घबड़ाता नहीं है ॥ ६६ ॥ उन्नत किंतु गुणनम्र (औदार्य साहस धैर्य पराक्रम आदि गुणोंसे नम्र; दूसरे पक्षमें डोरीसे नम्र) भंगवर्जित (जिसका कभी अपमान नहीं हुआ; दूसरे पक्षमें जो कहीं टूटा नहीं है) जो निंद्य वंशमें (कुलमें; पक्षांतरमें बांसमें) उत्पन्न नहीं हुआ है ऐसे अपने समान धनुषको पाकर कोई २ वीर बहुत सुंदर मालूम पड़ने लगा। योग्यका योग्यसे सम्बंध होनेपर क्या श्री-शोभा नहीं बढ़ती ? बढ़ती ही है ॥ ६७ ॥ जिनके हाथ भालेसे चमक रहे हैं ऐसे कवच पहरे हुए सवारोंने अपनी अभिलाषाओंको सफल माना और वे हरिणसमान वेगवाले दौड़ते हुए घोड़ोंपर झटसे चढ़ लिये ॥ ६८ ॥ जिनके जूआओंमें घोड़े जुते हुए हैं, तथा अनेक प्रकारके हथियार भीतर रक्खे हुए हैं, जिसके ऊपर ध्वजायें लगी हुई हैं ऐसे रथोंको कवचसे सुसज्जित जूआपर बैठनेवाले—हांकनेवाले अपने २ स्वामियोंके रहनेके डेरेके दरवाजेके पास ले गये ॥ ६९ ॥ यश ही जिनका धन है ऐसे युद्धके रससे उद्धत हुए भटोंने विचित्र २ ही कवच पहरे और अपने २ अभीष्ट हथियारोंको लेकर जल्दी करनेवाले अपने २ राजाओंके सामने आकर हाजिर हुए ॥ ७० ॥ राजाओंने अपने करकमलोंसे अपने सेवकोंका सबसे पहले भूषण पुष्प वस्त्र आदिके द्वारा सत्कार किया। सेवकोंको

और कोई नहीं बस यह सत्कार ही मारता है ॥ ७१ ॥ बहुतसे गेरूके लगनेसे लाल पड़ जानेवाले जो हाथी निकले वे ऐसे मालूम पड़ते थे मानो ये सन्ध्यायुक्त मेघ ही हैं। उनके ऊपर वध और अवध: क्रियाके धारण करनेवाले वीर योद्धा पुरुष बैठे हुए थे ॥ ७२ ॥ युद्धका नगाड़ा बजाया गया, उसी समय सम्पूर्ण मंगल क्रियायें भी की गईं, प्रजापति महाराज सुन्दर कवचोंसे कसे हुए महा-भटोंसे वेष्टित—घिरे हुए हाथीपर सवार हुए ॥ ७३ ॥ कवच पहरे हुए अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित विद्याधरोंसे वेष्टित ज्वलनजटी महाराज जो कि पहरे हुए कवचसे अति सुन्दर मालूम पड़ते थे, जिससे मद चू रहा है ऐसे सार्वभौम—हस्तीपर चढ़कर आगे निकले ॥७४॥

युद्धलंपट अर्ककीर्ति कवच वगैरह पहरकर अपने ही समान शिक्षासे दक्ष, निर्भीक, उन्नत, ऊर्जित—महान्, विपुलवंश (ऊंचा कुल; पक्षान्तरमें मद्र भद्र आदि ऊंची जाति अथवा चौड़ी पीठ) वाले दानी (दान देनेवाला; दूसरे पक्षमें मदवाला) हाथीपर सवार हुआ ॥७५॥ मेरा यह शरीर ही वज्रका बना हुआ है फिर बख्तर चढ़ानेसे क्या फायदा ? इसीलिये निर्भय विजयने श्रेष्ठ पुरोहितके लाये हुए भी कवचको ग्रहण नहीं किया ॥७६॥ कुंद पुष्पके समान गौरवर्ण बल अंजनसमान कांतिके धारक कालमेघ नामक उन्मत्त हाथीपर चढ़ा हुआ अत्यंत शोभाको प्राप्त हुआ । वह ऐसा मालूम पड़ा मानों काले मेघके ऊपर पूर्णमासीका चन्द्रमा बैठा है ॥७७॥ मैं भुवन-मंडलका रक्षण करनेवाला हूँ । इस रक्षणके—कवचके रहनेसे मेरी क्या बहादुरी रही ? इस अभिमान गौरवसे निर्भीक आदि नारा-यण—त्रिपिष्टने कवचको धारण नहीं किया ॥ ७८ ॥ जिसके शरी-

रकी कांति शरदकालके मेघ समान है ऐसा महान् गरुड़ध्वज हिम- वतके समान और हिमगिरि नामके हाथीपर सवार हुआ जिससे वह ऐसा मालूम पड़ा मानो विन्ध्याचलके ऊपर काला मेघ बैठा है ॥ ७९ ॥ जिस तरह शरत्कालमें विचित्र प्रकारको धारणकर दीप्ति-सेना आ- काशमें सूर्यको घेरकर उपस्थित होती है उसी तरह अनेक प्रकारके ह- थियारोंको धारण कर सम्पूर्ण देवता गरुड़ध्वजको चारों तरफसे घेरकर आकाशमें स्थित हुए ॥ ८० ॥ गरुड़ध्वजके हुक्मसे जिस समय ध्वजाओंसे मेघोंका चुम्बन करनेवाली सेनाने प्रयाण किया, उस समय मालूम हुआ मानो प्रतिपक्षियोंकी सेनाके तूर्यनादने उसको बुला लिया है ॥ ८१ ॥ त्रिपिष्टने जिस देवताको पहले ही शत्रुओंकी सेनाको इकट्ठा करनेके लिये भेजा था वह सब बातको देख और जानकर उसी समय लौटकर आई और हाथ जोड़कर इस तरह बोली ॥ ८२ ॥ " प्रतिपक्षोंका अंत बनानेवाले मजबूत कव- चोंको पहरे हुए विद्याधर राजाओंके साथ साथ अपनी समस्त सेनाको सुसज्जित कर वह बलवान अश्वग्रीव बड़े भारी निःशंक होकर उठा है ॥ ८३ ॥ आपके प्रसादसे विद्याधर राजाओंकी समस्त विद्याओंका पहलेसे ही छेदन कर दिया गया है। जिनके पंख काट डाले गये हैं ऐसे पक्षियोंकी तरह अब उनको कौनसा मनुष्य युद्धमें नहीं पकड़ सकता ? " ॥ ८४ ॥ इस प्रकार मदोन्मत्त भ्रमर जिनपर भ्रमण कर रहे हैं ऐसे पुष्पोंकी वृष्टि दोनों हाथोंसे त्रिपिष्टके शिरपर करती हुई वह देवता कानके पासमें शत्रु सेनाकी सब बात बताकर चुप हो गई ॥ ८५ ॥ किंतु स्वयं अपराजित मंत्रसे अजित उस विजयकी जयके लिये वह देवता बड़ी भारी विद्याओंके धारण

करनेवाले हलके साथ २ उन्नत अद्भुत और कभी व्यर्थ न होनेवाले मूसल तथा युद्धमें शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाली प्रकाशमान गदाकी सेवा करने लगी ॥ ८६ ॥ गंभीर ध्वनि करनेवाला निर्मल पांचजन्य शंख, कौमुदी गदा, अमोघमुखी नामकी दिव्य शक्ति, पुण्य कर्मसे प्राप्त हुआ शार्ङ्ग नामका धनुष, नंदक नामका खड्ग, किरणोंसे व्याप्त कौस्तुभ रत्न, जिनकी यक्षाधिप रक्षा करते हैं ऐसी इन अत्युत्तम वस्तुओंके द्वारा त्रिपिष्ट नारायण राज्य लक्ष्मीकी जय संपदाके स्थानको प्राप्त हुआ । ८७ ॥

इस प्रकार असग कविकृत वर्द्धमान चरित्रमें 'दिव्यायुधागमन' नामका आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

नवमाँ सर्ग ।
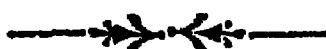
नारायणने पृथ्वीसे उठी हुई गधेके बाल समान धूसर धूलिसे व्याप्त अश्वग्रीवकी सेनाको ऐसा देखा मानो वह अपने (त्रिपिष्टके) तेजसे ही मलिन हो गई हो ॥ १ ॥ उसी समय दोनों तरफकी सेनाओंके युद्धके बाजे बजने लगे, गज गर्जने लगे, और घोड़े हींसने लगे । वीर पुरुष 'जो कायर है वह लौटकर जाता है' यह कह कहकर भयभीतोंकी तृणकी तरह अवहेलना करने लगे ॥ २ ॥ घोड़ोंके टापोंके पड़नेसे नवीन मेघ समूहके समान सांद्र-घनी धूलि जो उठी वह दोनों तरफकी सेनाओंके आगे हुई । परंतु उस तेजस्वीने अपने तेजसे उसका निवारण किया

सो मानों युद्धका ही निवारण किया ॥३॥ आपसके मौर्वी–धनुषकी प्रत्यंचाओंके शब्दोंको करनेवाले घोड़े और हाथियोंको त्रस्त कर देनेवाले भयंकर या उनमें घुसे हुए बाणोंको हर्षित हाथोंसे खींचकर योद्धा लोग वीर रसमें अधिक अनुराग करने लगे ॥ ४ ॥ पदाती पदातियोंको, घोड़े घोड़ोंको, या घुड़सवार घुड़सवारोंको, रथी रथों–रथियोंको, हाथी हाथियोंको बिना क्रोधके ही मारनेके लिये उद्युक्त हुए। बस इसीलिये तो जो पापभीरु हैं वे सेवाको नहीं चाहते ॥५॥ दाढ़ी मूंछ और शिरके बालोंपर नवीन–खिले हुए काशके समान सफेद धूलिके छा जानेसे सफेद होजाने वाले जवान योद्धाओंने यह समझकर मानों वृद्धताको धारण किया कि यह मृत्युके योग्य है ॥ ६ ॥ धनुषपरसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाण दूर स्थित योद्धाओंके कवचवेष्टित अंगोंपर ठहरे नहीं। ठीक ही है–जो गुण (ज्ञानादिक, पक्षांतरमें धनुषकी डोरी) को छोड़देता है ऐसा कोई भी क्या पृथ्वीमें प्रतिष्ठा (सम्मान, पक्षांतरमें ठहरना) को पा सकता है॥७॥ बिना वैरके ही उदार पराक्रमके धारक भट आपसमें बुला बुलाकर दूसरे भटोंका कत्ल करने लगे। अपने मालिककी प्रसन्नताका बदला देनेके लिये कौन धीर पुरुष प्राण नहीं देना चाहता ॥ ८ ॥ शत्रुओंके शस्त्रोंसे घायल होनेपर भी दौड़ते हुए अपने बल्लभों–पक्षके लोगोंसे आगे निकलकर किसी २ ने जिसको कि अपने और पराये का भेद ही मालूम नहीं है, खुद अपने ही राजाके हृदयको जला–चीर डाला ॥ ९ ॥ किसी २ की दोनों जंघायें कट गई उसपर शत्रुओंके खड्गोंके प्रहार होने लगे फिर भी वह शूरवीर नीचे नहीं गिरा। किंतु उत्तम वंश (कुल; पक्षांतरमें बांस) में उत्पन्न होनेवाले

अपने मानसिक पराक्रम और अखंडित चापका अवलंबन लेकर वहीं डटा रहा । १० ॥ धनुपको कानतक खींचकर किसी २ योद्धाके द्वारा कठोर मुष्टिसे छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणने कवचको भी भेदकर दूसरे भटको छेद डाला । यह निश्चय है कि जिसका अच्छी तरह प्रयोग किया जाय वह क्या सिद्ध नहीं कर सकता ? ॥ ११ ॥ हाथीवान् तो जबतक मदोन्मत्त हाथीके मुखपर वस्त्र डालने भी नहीं पाता है तबतक—एक क्षणभरमें ही योद्धालोग उसे बाण मार २ कर भेद देते हैं जिससे वह बिलकुल सिमजाता है ॥ १२ ॥ प्रचंड हाथी मन्द २ हवाके लिये प्रतिपक्षी—हाथी क्रुद्धकर—सूंड़से स्वयमेव मुखवस्त्रको हटाकर पीलवान् की भी परवाह न कर चला गया ॥ १३ ॥ जिनके कुंभस्थलमें बर्छियां घुसी हुई हैं ऐसे गजेन्द्रोंके गंडस्थल ऐसे मालूम पड़ते थे मानों अपने पंखोंसे सुंदर मालूम पड़नेवाले शब्द रहित मयूरोंके समूह जिनपर बैठे हों। ऐसे ये पर्वतोंके शिखर ही हैं ॥ १४ ॥ किन्ही २ प्रधान योद्धाओंने युद्धमें अपनी विशेप शिक्षाको दिखलाते हुए जिनपर अपने नामके अक्षर खुदे हुए हैं ऐसे अनेक बाण मारकर राजाओंके श्वेत छत्रोंको जमीनपर लुड़का दिया ॥ १५ ॥ चिरकाल तक युद्धकी धुराको धारणकर मरजाने वाले तेजस्वी क्षत्रियश्रेष्ठोंको जब लौटकर शूरवीरोंने देखा तब उनके नाम और कुलको भाटोंने सुनाया ॥ १६ ॥ हाथियोंके कुम्भस्थल खड्गोंके प्रहारसे फट गये । उनमेंसे चारों तरफको उछलते हुए बहुतसे मोतियोंसे आकाशश्री दिनमें भी तारागणोंसे व्याप्त मालूम पड़ने लगी ॥ १७ ॥ कोई २ मुख्य योद्धा चित्र लिखित योद्धाके समान मालूम पड़ते थे ।

उनका सुंदर चाप हमेशा खिंचा हुआ और चढ़ा हुआ ही रहता। पासमें खड़ा हुआ आदमी भी उनके बाण चढ़ाने और छोड़नेके अतिशयको पहचान नहीं सकता था। अर्थात् वे इतनी शीघ्रतासे बाणको धनुषपर चढ़ाते और छोड़ते थे कि जिससे पासका भी आदमी उनकी इस क्रियाको नहीं जान सकता था। इसीलिये वे चित्रलिखित सरीखे मालूम पड़ते थे ॥१८॥ शत्रुगजको मारनेकी इच्छा जिसको लगी हुई है ऐसा दंती सुभटोंके असिघातसे सूंडके कट जानेपर भी उतना व्याकुल नहीं हुआ जितना कि दोनों दांतोंके टूट जानेसे दंत चेष्टासे रहित होजाने पर हुआ ॥ १९ ॥ भालोंके प्रहारसे अपना सवार गिर गया तो भी कुंद समान धवल घोड़ा उसके पास ही खड़ा रहा जिससे वह ऐसा मालुम पड़ा मानों उस वीरका पराक्रमसे इकट्ठा किया हुआ यश ही हो ॥ २० ॥ अनल्प पराक्रमके धारक किसीने मर्मस्थानोंमें लगे हुए प्रहारोंसे व्याकुल रहते हुए भी तब तक प्राणोंको धारण किया कि जब तक उसके स्वामीने कोमल परिणामोंसे इस तरहके वचन नहीं कहे—नहीं पूछा कि 'क्या श्वास ले सकते हो?' ॥ २१ ॥ शत्रुताका उत्कृष्ट सहायक क्रोध है। इसी लिये चक्रसे शिर कट गया था तो भी उसको बांये हाथसे थांभ कर क्रोधसे व्याप्त हुए किसीने सामने आये हुए शत्रुको साफ मार डाला ॥ २२ ॥ जो गुणरहित है वह त्याज्य है; इसी लिये किसी २ योद्धाने अपने सामनेकी उस धनुर्लताको कि जिसके गव्यको दूसरे योद्धाने भालेसे छेद डाला था इसतरह छोड़ दिया जिस तरह दूषण लगानेवाली भ्रष्ट हुई अच्छे वंश (कुल; पक्षांतरमें बांस) वाली भी स्त्रीको

लोग छोड़ देते हैं ॥ २३ ॥ जिनका शरीर बाणोंसे घायल हो गया है, पैर बेकाम हो गये हैं, गला कांप रहा है, नाकमेंसे घुर घुर शब्द निकल रहा है ऐसे घोड़ोंने, खूनकी घनी कीचमें जिनके पहिये फस गये हैं ऐसे रथोंको बड़ी मुश्किलसे खींचा ॥ २४ ॥ युद्धकी रंगभूमिसे किसीकी मूलमेंसे कटी हुई भुजाको लेकर गृध्र आकाशमें घूमने लगा । मालूम हुआ मानों प्रशस्त कर्म करनेवाले उस वीरकी जयपताका ही चारोतरफ घूम रही है ॥ २५ ॥ क्रुद्ध और मदोन्मत्त हस्तीने अपने सामने खड़े हुए योद्धाको झटसे नीचे डालकर उसके बांये पैरको खूब जोरसे सूंड़में दबा कर और दांये पैरको पैरसे दबा कर चीर डाला ॥ २६ ॥ किसी २ योद्धाको किसी २ हाथीने सूंड़में पकड़कर आकाशमें फैंक दिया । परंतु वह खिलाड़ी था इसी लिये वह वहांसे गिरते गिरते ही उसके कुम्भस्थलके पृष्ठ भाग पर तलवारका प्रहार करता हुआ ऐसा मालूम पड़ा मानों उसके हृदयमें किसी तरहका संभ्रम ही नहीं हुआ ॥२७॥ जब आश्रय देनेवाले पर विपत्ति आवे उस समय कौन ऐसा होगा जो निर्दय हो जाय । इसीलिये तो बाणोंसे घायल हुए हाथीवानोंको जो घावोंसे मूर्छा या खेद हो रहा था उसको हाथियोंने अपनी सूंड़को ऊपर उठाकर और उसका जल छोड़कर दूर कर दिया ॥ २८ ॥ जिनका शरीर शरोंसे पूर्ण है ऐसे योद्धा निश्चल हाथियोंके ऊपर बैठे हुए ऐसे मालूम पड़े मानों पर्वतके ऊपर ये ऐसे वृक्ष हैं कि जिनकी तापसे (धूपसे; पक्षांतरमें दुःखसे) पत्र (पत्ते; पक्षांतरमें सवारी) शोभा तो निःशेष—नष्ट हो गई है और केवल उनमें त्वचाका (वक्कल; पक्षांतरमें चर्म) सार रह गया है;

॥१९॥ एक अत्युन्नत गजराजकी लम्बी सूंड़ मूलमेंसे ही कट गई। इसीलिये उसके कुनकुने खूनका महा प्रवाह बहने लगा। मालूम पड़ा मानों अंजनगिरिकी शिखरपरसे गेरूमें मिला हुआ झरनाका जल गिर रहा है ॥२०॥ घावोंके दुःखके मारे जो मूर्च्छा आगई थी उसको दूरकर फिरसे शत्रुओंको मारनेके लिये जो प्रवृत्त हुए उनको महाभटोंने बड़ी मुश्किलसे रोका। कौन ऐसा धीर पुरुष है जो सत्संग्रह नहीं करता है? ॥२१॥ चमकती हुई तलवारसे शत्रुके मारनेकी यह चेष्टा तो कर रहा है पर इस शूरवीरका शरीर घावोंके मारे बिल्कुल विह्वल हो रहा है। यह देखकर किसी सज्जन योद्धाने उसको करुणा करके नहीं मारा। क्योंकि जो महानुभाव होते हैं वे दुःखियोंको कभी मारते नहीं ॥२२॥ किसी२ के इतनी भीतरी मार लगी कि उसने मुखके द्वारा एकदम खूनकी धार छोड़ दी। मालूम पड़ा कि पहलेसे सीखी हुई इन्द्रजाल विद्याको रणमें राजाओंके सामने प्रकट की है ॥२३॥ किसीके वक्षःस्थलपर असह्य शक्ति पड़ी तो भी उसने उसकी—योद्धाकी शक्ति—सामर्थ्यका हरण नहीं किया। ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो युद्धमें लालसा रखनेवाले मनस्वियोंके दर्पको नष्ट कर सके ॥२४॥ नीलकमलके समान श्याम दीप्तिवाली, दंतोज्ज्वला (जिसकी नोंक चमक रही है, पक्षांतरमें उज्ज्वल दांतोंवाली) चारुपयोधरोरु (अच्छे पानीवाली और महान्; पक्षांतरमें सुंदर स्तन और जंघावाली) प्रियाके समान खड्गलताने शत्रुके वक्षःस्थलपर पड़ते हुए उस वीरको ऐसा कर दिया जिससे कि उसने सुखपूर्वक नेत्र मींच लिये ॥ २५ ॥ शत्रुके द्वारा हृदयमें भेदे गये भी किसी क्रुद्ध हुए योद्धाने अपने वंशका

अनुगमन कर उसके–भेदनेवालेके पीछे दौड़ते हुए उसके कंठमें आगेकी तरफ सर्पके समान छौंने ऐसा काटा जो उसके लिये दुःसह हो गया ॥ ३६ ॥ दूसरेके द्वारा अपने कौशलसे युद्धमें शीघ्रताके साथ हस्तगत की हुई दुष्ट कटार अपने ही स्वामीकी इस तरह मृत्युका कारण बन गई कि जिसतरह निर्धन मनुष्यकी मुट्ठिके बाहर निकल जानेवाली दुष्ट वेश्या दूसरेके हाथमें पहुंचकर अपने पहले पोषककी मृत्युका कारण हो जाती है ॥ ३७ ॥ लोहेके बाणोंसे जिसके रागका बंधन कीलित हो गया है–अर्थात् जिसकी रागोंमें लोहेके बाण कीलोंकी तरह ठुक गये हैं–बुन गये हैं ऐसा कोई विवश हुआ घुड़सवार योद्धा उछलते हुए घोड़ेसे भी नहीं गिरा। जो परिष्कृत हैं उनकी स्थिरता चलायमान नहीं हो सकती ॥३८॥ किसी २ ने दक्षिण बाहुदंडके कट जानेपर भी बांये हाथसे ही तलवार लेकर सामने प्रहार करते हुए शत्रुको मार डाला। विपत्तियोंके पड़नेपर वाम (बांया भाग श्लेषसे दूसरा अर्थ प्रतिकूल) भी उपयोगमें आ जाता है ॥ ३९ ॥ श्रेष्ठ तुरंगका अंग बाणोंसे घायल हो गया था तो भी उसने पहलेके न तो वेगको छोड़ा और न शिक्षाको छोड़ा तथा न अपने सवारकी विधेयता–कर्तव्यता (जिस तरह सवार चलाना चाहे उसी तरह चलना) को ही छोड़ा। ठीक ही है जो उत्तम जातिमें उत्पन्न हुए हैं वे सुख और दुःख दोनों अवस्थामें समान रहते हैं ॥ ४० ॥ जिसके कंठमें बहुतसे लाल चमर बंधे हुए हैं ऐसे खाली पीठवाले घोड़ेने सामनेकी तरफ तेजीसे दौड़ते हुए हाथियोंकी घटाको तितर बितर कर दिया। अतएव वह केवल नामसे ही नहीं; किंतु क्रियासे भी हरि–सिंह हो गया ॥ ४१ ॥

लोहमयी बाणोंसे शरीरके विदीर्ण हो जानेपर भी कोई २ घोड़ा वेगसे इधर-उधर दौड़ने लगा। मालूम हुआ मानों वह अभी २ मरे हुए अपने स्वामीकी शूरताको युद्धकी रंगभूमिमें प्रकाशित कर रहा है ॥ ४२ ॥ किसीके मस्तकमें शत्रुने लोहमय मुद्गर ऐसा मारा कि जिससे वह विवश होकर जमीनपर लोट गया। परंतु तो भी उसने शरीरको छोड़ा नहीं। धीर पुरुषोंके धैर्यका प्रसर निष्कंप होता है, उसका कोई हरण नहीं कर सकता ॥ ४३ ॥ पैने अग्रभागसे रहित भी बाणने सुभटके अभेद्य कवचको भी भेद कर उसके प्राणोंको बड़ी जल्दी हर लिया। दिनोंके आयुके पूर्ण हो जानेपर प्राणियोंको कौन नहीं मार देता है ॥ ४४ ॥ अतुल्य पराक्रमके धारक किसीने अपने शरीरके द्वारा चारो तरफसे स्वामीकी बाणोंसे रक्षा करते हुए अपने शरीरको एक क्षणभरमें नष्ट कर दिया। दृढ़ निश्चय रखनेवाला वीर पुरुष क्या नहीं कर डालता ॥४५॥ शूरवीर लोग आपसमें-एक दूसरेकी तरफ देखकर और कुल-क्षत्रिय वंशके अभिमान, विपुल लज्जा, स्वामीका प्रसाद तथा निज पौरुष इन बातोंका ख्याल करके शरीरके घावोंसे भरे रहने पर भी गिरे नहीं ॥४६॥ वह दुर्गम युद्धांगण हाथियोंके टूटे हुए दांतोंसे तथा छिन्न हुए शरीर और सूंड़ोंसे, टूट फट कर गिर पड़ने वाली अनेक ध्वजाओंसे, जिनके पहिये और धुरा नष्ट हो चुके हैं ऐसे रथोंसे भरगया ॥४७॥ मनुष्योंकी आंतोंकी मालासे जिनका गला बिल्कुल भरा हुआ है, जो खूनकी मद्यको पीकर बिल्कुल मत्त हो गये हैं ऐसे राक्षस मुर्दाओंको पाकर या लेकर कबंधों रूंडोंके साथ २ यथेष्ट नृत्य करने लगे ॥४८॥ जहां तृणके

भीतर अग्नि छिपी रहती है ऐसी अरणीमें—वनीमें जन्म लेनेवाली बन्हिने शर पंजरपर पड़े हुए उन समस्त शूर वीरोंको जला दिया प्रशस्त कर्म करनेवालोंको कौन नहीं अपनाता है ॥४९॥ उन दोनों ही सेनाओंके गर्विष्ठ हाथी घोड़े पदाति और रथोंके समूहोंका आपसमें भिड़कर यमराजकी उदरपूर्तिके लिये चारों तरफसे युद्ध हुआ ॥५०॥ हरिस्मश्रु नामका अश्वग्रीवका मंत्री जो कि रथके विषयमें अद्वितीय वीर था रथमें बैठा हुआ ही सेनाका संचालन करता और वहींसे उस धनुर्धरने प्रति पक्षियोंकी सेना और आकाश दोनोंको एक साथ बाणोंके मारे आच्छादित कर दिया ॥५१॥ भालोंके मारे प्रत्यंचाओंके साथ २ सुभटोंके शिरोंको भी उड़ा दिया। हाथियोंकी घटाओंके साथ महारथोंकी विशेष व्यूह रचनाको इसतरह तोड़ दिया जिस तरह कच्चे घड़ेको जल फोड़ देता है ॥५२॥ मंत्रीकी महान् बाणवृष्टि-के छोड़ते ही छत्रोंके साथ २ झंडे गिर गये, हाथियोंके साथ साथ खाली (जिनके ऊपर सवार नहीं थे ऐसे) घोड़े त्रस्त हो गये, सूर्यके प्रकाशसे युक्त दिशायें नष्ट हुईं दिशाओंमें अंधकार छा गया ॥ ५३ ॥ अति शुद्ध आचरणवाले (श्लेषसे शुद्ध आचरणका अतिक्रम त्याग करनेवाला) अथवा ठीक गोलाईको लेकर मंत्रीने अतिशुद्ध अनेक बाणोंसे विष्णुके त्रिपिष्टके बल सेनाको इधरउधरसे इस तरह संकोच लिया—घेर लिया जिस तरह रात्रिमें चंद्रमा अपने करकिरणोंसे कमलोंको संकोचलेता है ॥ ५४ ॥ इस तरह उस भीमको अपने बाहुवीर्यका विस्तार करते हुए देखकर उसका वध

करनेके लिये त्रिपिष्टके भयंकर निर्भय सेनापतिने बाण उठाकर उससे युद्ध करना शुरू किया ॥ ५५ ॥ वेगकी वायुसे जिसकी ध्वजा सतर लंबी होगई, जिसमें मनके समान वेगवाले घोड़े जुते हुए हैं ऐसे रथमें बैठ हुए सेनापतिने उसके सन्मुख जा कर प्रत्यंचाके शब्दसे दिशाओंको शब्दायमान करते हुए बाणोंसे उसको तुरत वेध दिया ॥ ५६ ॥ जिनके संधान और मोक्षबाण चढ़ाने और छोड़नेके कालको कोई लक्ष्यमें ही नहीं ले सकता था, जिसकी सुंदर प्रत्यंचा सदा खिची ही रहती ऐसे उस भीम धनुर्विद्यामें अतिदक्ष सेनापतिने अपने बाणोंसे मंत्रीके बाणोंको बीचमें ही काटडाला ॥ ५७ ॥ जिनके आगे अर्धचन्द्राकार पैना भाग लगा हुआ ऐसे बाणोंसे उसने ध्वजाके डंडेके साथ २ मंत्रीके धनुषको भी बड़ी जल्दी छेद डाला इस पर मंत्रीने कोपसे निर्दय होकर सेनापतिके वक्षःस्थलपर शक्तिका प्रहार किया ॥ ५८ ॥ उदार पराक्रमके धारक उस भीमसेन पतिने धनुषको छोड़कर तलवारको लेकर अपने रथमेंसे मंत्रीके रथमें कूद शिरके ऊपर श्रेष्ठ खड्गका प्रहार कर उसको कैद करलिया ॥ ५९ ॥ शत्रुओंके सैकड़ों आयुधोंके पड़नेसे जिनका शरीर क्षत होगया है और वक्षःस्थल फट गया है ऐसा वह शतायुध युद्धमें धूमध्वजको जीत कर बहुत ही सुंदर मालूम पड़ने लगा क्योंकि राजाओंका भूषण शूरता ही तो है ॥ ६० ॥ अपने शत्रुजित् शत्रुंजय इस नामको मानों सार्थक करनेके लिये ही उस प्रतापीने युद्धमें उग्र अशनिघोषको जिसकी कि भुजाओंका पराक्रम दूसरोंके लिये असाधारण था एक क्षणमें जीत लिया ॥ ६१ ॥ उस जयने (बलदेवने) युद्धमें समस्त सेनाको कंपा देनेवाले अकंप-

नको और विद्याधरोंको अश्वग्रीवके जयध्वजको बाणोंके मारे गिरा दिया ॥६२॥ इधर अश्वग्रीव अर्ककीर्तिकी सारी सेनाको जीतकर आगे हुआ। उसने धनुषको खींचकर उससे आकाशको आच्छादित करनेवाली बाणोंकी वृष्टि की ॥६३॥ उसको अवज्ञा सहित निर्भय अर्ककीर्तिने दृढ़ धनुषको विना प्रयत्नके चढ़ाया। जो शूर होता है उसको युद्धमें किसी तरहका संभ्रम नहीं होता ॥६४॥ अपने प्रभाव–दैवी शक्तिसे धनुषको खींचकर वेगसे उसपर बाणको चढ़ाकर इस तरह फुर्तीसे उसको छोड़ा जिससे कि एक ही बाण पंक्ति–गुण–क्रमसे असंख्याताको प्राप्त करने लगा–एक ही बाणके असंख्यात बाण होने लगे ॥ ६५ ॥ जिनके आगे–सिरेपर अपने नामके अक्षर खुदे हुए हैं और जिनके चारो तरफ पंख लगे हुए हैं ऐसे बाणोंसे उसने सद्वंशवाली लक्ष्मीलताके साथ साथ उसकी ध्वजाकी वंशयष्टिको भी मूलमेंसे छेद दिया ॥६६॥ अश्वग्रीवने क्रोधसे उसकी विजयरूप अद्वितीय लक्ष्मीकी लीलाके उपधान (तकिया) के समान दक्षिण भुजामें जिसमें चञ्चल कंकपक्ष लगा हुआ है ऐसे तीक्ष्ण बाणको छेद दिया ॥६७॥ लम्बे या मुड़े हुए एक ही बाणसे अर्ककीर्तिके छत्र और हाथीपर लगे हुए झण्डेको छेदकर दूसरे बाणसे मुकुटके ऊपर लगे हुए प्रकाशमान–चारोंतरफ जिसकी किरणें निकल रही हैं ऐसे चूड़ामणि रत्नको उपाट डाला ॥६८॥ अर्ककीर्तिने बलसे उद्धत हुए अश्वग्रीवके धनुषके अग्रभागको भालेसे छेद दिया। उस निर्भय युद्ध धुरन्धरने भी उसको–टूटे हुए धनुषको छोड़कर उसपर भालेका प्रहार किया ॥ ६९ ॥ वेगसे छोड़े हुए बाणोंकी परम्परासे कवच या पराक्रमके

साथ अश्वग्रीवको विदीर्ण कर अर्ककीर्ति बहुत ही शोभने लगा। युद्धमें शत्रुको मार कर—जीतकर कौन नहीं शोभता है ? ॥७०॥ इसी पृथ्वीपर जिस तरह पूर्वकालमें समस्त प्रजाके पति निर्मंथ आदि तीर्थकरने तप करते हुए दूसरोंके लिये अजय्य कामदेवको जीता था उसी तरह युद्धमें निर्मंथ प्रजापति राजाने दूसरोंसे अजय्य—नहीं जीत सकने योग्य कामदेवको जीता ॥७१॥ अर्ककीर्तिके पिता—ज्वलनजटीने विना ही प्रयासके अपने बाहुओंके पराक्रमके अतिशयसे युद्धमें अश्वग्रीवकी विजयाभिलाषाके साथ चन्द्रशेखरके दर्पको नष्ट कर दिया ॥ ७२ ॥ चित्रांगदादिक सातसौ विद्याधरोंको जीतकर शोभते हुए उस विजयने विरोधमें खड़े हुए मदांध नील रथको इसतरह देखा जिस तरह सिंह हाथीको देखता है ॥७३॥ कल्पनाथ और देवनाथ—इन्द्रके समान अथवा कल्पकालके अंतमें पूर्वके और पश्चिमके समुद्रके समान बढ़े हुए पराक्रमके धारक वे दोनों वीर परस्परमें युद्धके लिये तैयार हुए ॥ ७४ ॥ अपनेको अनेकरूप करनेकी क्रियाओंसे विशेष शिक्षाको दिखलाते हुए विद्याधरने पहले अधिक बलवाले भी बलभद्रके विशाल वक्षःस्थलमें गदाका प्रहार किया ॥ ७५ ॥ उसकी गदाके प्रहारसे घाव पाकर क्रोधसे गर्जते हुए बलभद्रने भी उसके शिरपर रक्खे हुए मुकुटको इस तरह गिराया जैसे मेघ विजलीकी तड़तड़ाहटसे पर्वतोंके शिखरोंको गिरा देता है ॥ ७६ ॥ उसके मुकुटसे पड़े हुए मोतियोंसे युद्धभूमि व्याप्त होगई जिनसे कुछ क्षणके लिये ऐसा मालूम पड़ा मानों अश्वग्रीवकी लक्ष्मीकी निन्द्य जलबिन्दुओंसे ही यह भूमि व्याप्त होगई है ॥ ७७ ॥ दोनोंका जोर देखकर तथा दोनोंसे

अचिंत्य बलवीर्य और युद्ध कौशलको देख कर खिन्न होता हुआ कोई मनसे ही इस तरहके संदेहके झूलामें झूलने लगा कि इन दोनोंमेंसे कोई जीतेगा भी या नहीं ? ॥ ७८ ॥ जिस तरह हाथीवान्‌के बल वीर्यकी पहचान अधीर—मत्त हाथी पर ही होती है उसी तरह विद्याधरों—सातसौ विद्याधरोंको जीतनेवाले बलदेव—विजयका बल और वीर्य भी समान पराक्रमके धारक उस नील रथ पर ही प्रकट हुआ ॥७९॥ जैसे क्रुद्ध सिंह मत्त हस्तीको मृत्युगोचर बनाता है उसी तरह बलभद्र भी अपने सिवाय दूसरेसे असाध्य—अजय्य नील रथको युद्धमें अपने हलसे शीघ्र ही मृत्युगोचर बनाया ॥८०॥ प्रतिपक्षियोंके द्वारा प्रधान प्रधान विद्याधर मारे गये। यह देखकर धीर वीर अश्वग्रीवने बांये हाथमें धनुषको और हृदयमें शूरताको धारण किया ॥ ८१ ॥ और बलभद्रादिक जितने दूसरे थे उन सबको छोड़ कर " प्रभुत्व बलका धारक वह त्रिपिष्ट कहां है ? कहाँ है ? वह है कहां ? " इस तरह पूछता हुआ पूर्व जन्मके कोपसे हाथीपर चढ़ा हुआ उसके सामने जा खड़ा हुआ ॥ ८२ ॥ अमानुष—देव-तुल्य आकारके—शरीरके धारक त्रिपिष्टको देखकर उसने समझ लिया कि यही लक्ष्मीके योग्य मेरा शत्रु है और कोई नहीं। जो अधिक गुणोंका धारक होता है उसपर किसको पक्षपात नहीं हो जाता ? ॥ ८३ ॥ बाण छोड़नेकी विधिके जाननेवाले चक्री अश्वग्रीवने वक्र-टेढ़ी पड़ जानेवाली उत्तुङ्ग कमानकी डोरीपरसे जिनका अग्रभाग वज्र सा है ऐसे अनेक प्रकारके विद्यामयी अनेक अत्यंत दुर्निवार बाणोंको चारोतरफ छोड़ा ॥ ८४ ॥ पुरुषोत्तमने अपने शार्ङ्ग[1] धनुष परसे छोड़े हुए बाणोंसे उसके बाणोंको बीचमें ही

[1] नारायणके धनुषका नाम शार्ङ्ग है।

काट दिया। वे काटे हुए वाण पुष्पमय हो गये। दूसरोंका भंग भी सज्जनोंको गुणके लिये—हितका कारण हो जाता है। अर्थात् कोई यदि सज्जनोंका किसी तरह अपमानादिक करता है तो उससे उनका—सज्जनोंका अपमानादि न होकर कुछ हित ही होजाता है ॥ ८५ ॥ चक्री—अश्वग्रीवने पृथ्वीतल और आकाशमार्गको एक कर देनेवाली अंधकारपूर्ण रात्रि करदी परन्तु त्रिपिष्टके कौस्तुभ रत्नकी सूर्यकी प्रखर किरणोंको भी जीतनेवाली दीप्तिने उसको छेद दिया—उस अंधकारको नष्ट कर दिया ॥ ८६ ॥ अश्वग्रीवने दृष्टि-नेत्रके विषकी अग्निकी रेख से दिशाओंको चितकवरा बनानेवाले सर्पों—नागबाणोंको चारो तरफ छोड़ा। कृष्णने (त्रिपिष्टने) पंखोंकी वायुसे वृक्षोंको उखाड़ देनेवाले गरुड़—गरुड़बाणोंसे उनका निराकरण किया।८७। अश्वग्रीवने स्थिर और उन्नत शिखरोंवाले पर्वतोंसे जिनपर सिंह गर्जना कर रहे हैं समस्त आकाशको ढक दिया। वज्रके आयुधवाले—इंद्रके समान श्रीके धारक त्रिपिष्टने क्रोधसे वज्रके द्वारा उनको शीघ्र ही भेद डाला ॥८८॥ उस धीर (अश्वग्रीव) ने आकाश और पृथ्वी तलको विना ईंधनके जलनेवाले ज्वलन—अग्निबाणोंसे व्याप्त कर दिया। परंतु विष्णुने विद्यामय मेघोंसे जल वर्षाकर शीघ्र ही उनको शांत कर दिया ॥८९॥ अश्वग्रीवने हजारों उल्काओं—ज्वालाओंसे आकाशके जलाने—प्रकाशित करनेवाली अत्यंत दुर्निवार शक्तिको छोड़ा। परंतु वह पुरुषोत्तमके गलेमें जिसमेंसे किरणें निकल रही हैं ऐसी प्रकाशमान हारकी लड़ी बन गई ॥ ९० ॥ इस तरह निष्फल हो गये हैं समस्त दिव्य—देवोपनीत शस्त्र जिसके ऐसा वह दुर्वार अश्वग्रीव जिसकी धार अग्निकी ज्वालाओंसे घिरी हुई है ऐसे चक्रको हाथमें लेकर स्मेरास्य होकर—मुखपर कुछ

हसी लाकर निर्भय हो त्रिपिष्टसे अथवा निर्भय त्रिपिष्टसे ऐसा बोला ॥९१॥ "अब यह चक्र तेरे मनोरथोंको विफल करता है। इससे इन्द्र भी तेरी रक्षा नहीं कर सकता। अतएव या तो मुझको प्रणाम करनेमें अपनी बुद्धिको लगा। मुझको प्रणाम करनेका विचार कर, नहीं तो परमात्माका ध्यान धर जो परलोकमें काम आवे" ॥९२॥ इसका उत्तर केशवने अश्वग्रीवको इस तरह दिया:—

"जो डरपोक हैं उनको यह तेरा वचन अवश्य ही भय उत्पन्न कर सकता है; परंतु जो उन्नत हैं—निर्भीक हैं उनके लिये यह कुछ भी नहीं है। जंगली हाथियोंकी चिंघाड़ हिरणोंके बच्चोंको अवश्य थरहा दे सकती है; पर क्या सिंहको भी त्रास दे सकती है? ऐसा कौन पराक्रमी होगा जो तेरे इस चक्रको कुंभारके चाक समान न माने? शूरता वचनमें नहीं रहती क्रियामें रहती है" ॥९३॥ इस तरहके वचन सुनकर अश्वग्रीव शीघ्र ही चक्रको छोड़ा। जिसको कि राजा लोग ऐसा देख रहे थे या समझ रहे थे कि यह अवश्य ही भय देनेवाला है। जिसमेंसे वारवार किरणें निकल रही हैं ऐसा वह चक्र मानो यह कहता हुआ—पूछता हुआ ही कि क्या आज्ञा है? अश्वग्रीवके पाससे त्रिपिष्टकी दक्षिण भुजा पर आकर प्राप्त हुआ ॥९४॥ प्रसिद्ध बड़े बड़े शत्रुओंका शिरच्छेद कर उनके खूनसे जिसका शरीर लाल पड गया है, हे विद्वन्! जिसके प्रतापसे तू समग्र पृथ्वीके ऊपर पूर्ण काम—सफल मनोरथ हो रहा था—जो तेरी इच्छा होती थी वह सफल होती थी वही यह तेरा चक्र पूर्वजन्मके पुण्यसे मेरे हस्तगत हुआ है। इसका फल क्या है सो जानकर—ध्यानमें लेकर या तो सामंतोंके साथ साथ मेरे

चरणयुगलकी पूजा करो नहीं तो धैर्यसे इसके चक्रके आगे हाजिर हो" ॥९५॥ अपने हाथपर रक्खे हुए, बड़ी बड़ी ज्वालाओंसे जिसके आरे चमक रहे हैं ऐसे निर्धूम अग्निके समान मालूम पड़नेवाले चक्रको देखकर त्रिपिष्ट अश्वग्रीवसे फिर बोला—"हे अश्वग्रीव! मेरे पैरोंपर शीघ्र ही पड़कर मुनिपुंगवकी शिष्यता स्वीकार करो—मुनिके पास दीक्षा लेलो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। नहींतो मुझे तुम्हारा जीवन दीखता नहीं है—इसके विना तुम जीवित नहीं रह सकते हो ॥९६॥ समुद्रसमान—गम्भीर अश्वग्रीव विष्णुकी तरफ हँसकर बोला—मेरा बड़ा भारी आलय (आयुधशाला) आयुधोंसे भरा हुआ है। उसमें इतने हथियार भरे हुए हैं कि जिनके बीचमें एक संधिभागकी भी जगह नहीं है। पर इस अलातचक्र—चिनगारियोंके समूह समान चक्रसे तेरी मति गर्विष्ठ होगई है। अथवा ठीक ही है—जो नीच मनुष्य होते हैं वे क्या नीचको पाकर हर्षित नहीं होते हैं?[1] जरूर होते हैं ॥९७॥ आगे खड़ा हो, बहुत बकनेसे क्या और हे मूढ़! आज इस युद्धमें तू परस्त्रीसे सुरत करनेकी अभिलाषाका जो कुछ फल होता है उसको भोगकर नियमसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हो। ऐसे कोई भी मनुष्य कि जिनका चित्त परस्त्रीके संगमसे होने वाले सुखमें अत्यंत आशक्त रहता है समस्त शत्रुओंको वशमें करनेवाले पृथ्वीपालके जीवित रहते हुए चिरकालतक जीवित रह सकते हैं ॥९८॥ एक जरासे ढेलेके समान अथवा खलके टुकड़ेके समान इस चक्रको जिसको कि मैंने भोग कर छोड़ दिया है जो मेरी झूठनके

---

१ अथवा दूसरा अर्थ यह भी है कि जो नीच नहीं हैं वे मनुष्य क्या नीचको पाकर हर्षित होते हैं? कभी नहीं होते।

समान है अथवा जो मेरी दोनों पैरोंकी धूलके बराबर है अत्यंत प्रेमसे पाकर अतिशय मूढ़ तू गर्विष्ठ हो गया है ! अथवा ठीक ही है—जगत्में क्षुद्र प्राणियोंको केवल भुसीके पा जानेसे ही अत्यंत संतोष होजाता है। यदि हृदयमें कुछ नियमसे शक्ति है तो तू इसको अभी छोड़ ॥९९॥ चक्रको पाकर वह विष्णु इस तरह बोला— "यदि तू अपने हृदयमें बैठे हुए खोटे हर्षको या वृथाके अभिमानको छोड़ दे, और मेरे पैरोंमें आकर नमस्कार करे तो मैं तेरा पहलेकासा ही वैभव कर देता हूं !" त्रिपिष्टके इतना कहते ही अश्वग्रीवने उसकी—त्रिपिष्टकी बहुत कुछ निर्भत्सना की—उसको धिक्कारा। इस पर क्रोधसे उस त्रिपिष्टने इसका शिर ग्रहण करो इसलिये तत्क्षण फेंक कर चक्र चलाया ॥ १०० ॥ उसी समय विष्णुकी इस आज्ञाको पाकर चक्रने उसको पूरा कर अश्वग्रीवकी गर्दन परसे जिसमेंसे किरणें निकल रही हैं ऐसे मुकुटसे युक्त शिरको युद्धकी रंगभूमिमें शीघ्र ही डाल दिया ॥ १०१ ॥ इस प्रकार अपने शत्रुको मारकर त्रिपिष्ट धारसे निकलती हुई अग्निकी ज्वालासे पल्लवित भूषित आगे रहनेवाले चक्रसे वैसा शोभाको प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि वैरको सूचित करनेवाली या कहनेवाली—बतानेवाली संपत्तिको राजाओंके साथ साथ देखते हुए अभयकी याचनाके लिये अंजलि जोड़कर—खड़े हुए विद्याधरोंके चक्रसमूहसे शोभाको प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अशग कविकृत वर्द्धमान चरित्रमें 'त्रिपिष्ट विजय, नामक नववां सर्ग समाप्त हुआ।

दशवाँ सर्ग।

समस्त राजाओं और विद्याधरोंके साथ साथ विजय—बलभद्रने केशव—त्रिपिष्टका अभिषेक किया। अभिषिक्त होकर त्रिपिष्टने पहले जिनेन्द्रदेवका पूजन कर यथोक्त—आगममें कहे अनुसार चक्रकी भी पूजन की। अथवा पहले जिनेन्द्रकी पूजन की। उसके बाद विनयके द्वारा अभिषिक्त हुआ और बादमें उसने चक्रकी पूजन की ॥१॥ प्रणामसे संतुष्ट हुए गुरुओंने प्रसन्नतासे जिसको आशीर्वाद दिया है, जिसके आगे आगे चक्रका मंगल उपस्थित है या जिसके आगे चक्रवाक पक्षीका शकुन हुआ है ऐसे नारायणने राजाओंका योग्य सत्कार कर दशों दिशाओंके जीतनेकी इच्छासे प्रयाण किया ॥२॥ महेन्द्र तुल्य त्रिपिष्ट पहले अपने तेजसे महेन्द्रकी दिशाको वशमें कर उसके बाद मागध देवको नम्रकर उसके दिये हुए बहुमूल्य विचित्र भूषणोंसे शोभाको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ इसके बाद वरतनुको और उसके बाद क्रमसे प्रभासदेवको नम्रकर अच्युतने दूसरे द्वीपोंके स्वामियोंको जो भेटको ले लेकर आये थे उनको अपने तेजमें ही ठहराया। अर्थात् अपने तेजसे ही उन सबको वशमें कर लिया ॥४॥ इसतरह कुछ परिमित दिनोंमें ही भरतक्षेत्रके पूरे आधे भागको उसने कर देनेवाला कर लिया—बना लिया—वह आधे भरतक्षेत्रका राज्यशासन करने लगा। इसके बाद नगर निवासियोंने मिलकर जिसकी पूजा—सत्कार किया है ऐसे त्रिपिष्टने जिसके ऊपर ध्वजायें उड़ रही हैं ऐसे पोदनपुरमें इच्छानुसार प्रवेश किया ॥५॥ जिसके नायकका अंत हो चुका है ऐसी विज

यार्द्धकी अभीष्ट उत्तर श्रेणीको नारायणके प्रसादसे पाकर रथनूपुरका स्वामी ज्वलनजटी कृतार्थ—कृतकृत्य हो गया। पुरुषोत्तमके आश्रित रहनेवाला कौन वृद्धिको नहीं प्राप्त होता है ॥६॥ "तुम विजयार्ध वासियोंके ये स्वामी हैं। आदरसे इनका ही हुकुम उठाओ—भक्ति-से इनकी आज्ञानुसार चलो।" यह कहकर स्वामीने ज्वलनजटीके साथ साथ विद्याधरोंको क्रमसे सम्मानित कर विदा किया ॥ ७ ॥ बलभद्रके साथ साथ सम्राट् त्रिपिष्ट प्रजापतिसे यथायोग्य अभिवादन आदि करते हुए विदा लेनेवाले ज्वलनजटीके चरणोंपर पड़े। ठीक ही है—लक्ष्मी सत्पुरुषोंको विनय दिया करती है ॥८॥ प्रणाम कर-नेके कारण नमे हुए मुकुटके अग्र भागसे दोनों चरण कमलोंको पी-ड़ित करनेवाले उस अर्ककीर्तिको हर्षसे दोनों भाइयोंने—विजय और त्रिपिष्टने एक साथ आलिंगन कर अपने तेजसे विदा किया ॥९॥ विद्याधरोंके स्वामी उस ज्वलनजटीने वायुवेगा रानीके साथ २ पुत्रीको सतियोंके उत्कृष्ट मार्गकी शिक्षा देकर वारवार उसके नेत्रोंको जिनसे आंसू वह रहे थे अपने हाथसे पोंछकर प्रयाण किया ॥ १० ॥

सोलह हजार नरेशों और किंकरकी तरह रहनेवाले देवताओंसे युक्त त्रिपिष्ठ नारायण कमनीय मूर्तिके धारण करनेवाली आठ हजार रानियोंके साथ साथ हमेशह रहने लगा ॥ ११ ॥ अभिलाषाओंके भी बाहर विभूतिके धारण करनेवाले अपने बन्धुवर्गके साथ प्रजा-पति अपने मनके अनुकूल वर्ताव करनेवाले उस पुत्रके इस तरहके साम्राज्यको देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ ॥ १२ ॥ वह नारायण राजाओंके और विद्याधरोंके मुकुटोंपर अपने दोनों पैरोंके नखोंकी

प्रभाकी पंक्तिको तथा दिशाओंमें चन्द्र किरण समान निर्मल अपनी कीर्तिको रखकर पृथ्वीका शासन करने लगा ॥ १३ ॥ करुणा बुद्धिके धारक केशवने मंत्रीकी शिक्षासे शत्रुओंके बालकोंको जो कि अपने पैरोंमें आकर पड़गये थे देखकर उनपर विशेष कृपा की। जो सज्जन होते हैं वे नम्र पुरुषोंपर दयालु होते ही हैं ॥ १४ ॥ उसके पुण्यसे वह पृथ्वी भी विना जोते ही पक जानेवाले धान्योंसे सदा भरी रहती थी। प्राणियोंकी अकाल मृत्यु नहीं होती थी। मनोरथोंकी कोई असिद्धि नहीं हुई—सबके मनोरथ सिद्ध होते थे ॥ १५ ॥ उसकी इच्छाका अनुवर्तन करती हुई वायु हमेशह सब जगह प्राणियोंको सुख देनेके लिये बहती थी। दिन दिन—समय समयपर मेघ पृथ्वीकी धूलिको साफ करते हुए—धोते हुए सुगंधित जल वरसाते थे ॥ १६ ॥ अपने अपने वृक्षों और बल्लियोंको उत्पत्तिके साथ २ परस्परमें विरुद्ध रहते हुए भी समस्त ऋतुगण उसको निरंतर प्राप्त होने लगे। चक्रवर्तीकी प्रभुता आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥ १७ ॥

जिस समय यह समीचीन राजा पृथ्वीका रक्षण करता था उस समय कठिनता केवल यौवनकी बढ़ी हुई श्रीको धारण करनेवाली मृगनयनियोंके एकदम गोल और अत्युन्नत कुचोंमें ही निवास करती थी ॥ १८ ॥ जिसके भीतरकी मलिनता बिल्कुल भी नहीं देखनेमें आती ऐसी अस्थिरता—चंचलता केवल स्त्रियोंके बिल्कुल कानतक पहुँचे हुए विस्तीर्णता युक्त कांतिके धारण करनेवाले धवल नेत्रोंमें ही रहती थी ॥ १९ ॥ विचित्र रूपता और निष्कारण निरर्थक गर्जना निरंतर भीतर भीगे हुए और वर्षनेवाले तथा रजो

विकार-धूलिके, विकार उड़ने आदिके प्रसारको दूर करनेवाले उत्तम मेघोंमें ही पाई जाती थी या उत्पन्न होती थी ॥ २० ॥ पृथ्वीपर जिनकी स्थिति अलंघनीय है जो प्रशस्त वंशवाले हैं तथा उन्नतता धारण करनेवाले हैं ऐसे भूधरोंमें ही सदा विपक्षता रहती थी और उन्हींमें दुर्गमगति निश्चित थी ॥ २१ ॥ वहांपर धनिक और जलाशय या समुद्र समान थे । दोनोंही—अनूनसत्व (बहुतसे जंतुओंको धारण करनेवाले; दूसरे पक्षमें बड़े भारी सत्त्व गुणको धारण करने वाले), बहुरत्नशाली—बहुतसे रत्नोंको धारण करनेवाले, महाशय (खूब गहरे; दूसरे पक्षमें उत्कृष्ट विचार वाले), धीरता (स्थिरता; दूसरे पक्षमें आपत्तियोंसे चलायमान न होना) से परिष्कृत, जिनमें बड़ी मुश्किलसे प्रवेश किया जा सके ऐसे थे । परन्तु जलाशयों या समुद्रोंने प्रसिद्ध दुर्ग्राहतासे धनिकोंकी स्थिति धारण कर रक्खी थी ॥ २२ ॥ कलाधरोंमेंसे एक चंद्रमा ही ऐसा था जिसमें प्रदोष (रात्रिका पहला पहर; दूसरे पक्षमें प्रकृष्ट दोष) का सम्बंध पाया जाता था । पृथ्वीपर जितने लक्ष्मीके निवासस्थान थे उनमेंसे एक महोत्पल (महान् कमल) ही ऐसा था जिसमें जल स्थिति (जलमें रहना; दूसरे पक्षमें जड़ता—मूर्खताकी स्थिति—सम्बंध—क्योंकि श्लेशमें ल और ड में भेद नहीं माना जाता) तथा मित्रबल (सूर्यके निमित्तसे; दूसरे पक्षमें सहायकोंका बल) से विजृंभण (खिलना; दूसरे पक्षमें बढ़ना) पाया जाता था ॥ २३ ॥ चारु—सुंदर फलोंमें सुविप्रिय (उत्पत्तिमें प्रिय; दूसरे पक्षमें अच्छी तरह प्रतिकूल)

---

१. पक्षरहितपना । कवि समयके अनुसार पर्वतोंका इंद्रके द्वारा पक्ष काटे जानेका वर्णन किया जाता है ।

कोई था तो पादप—वृक्ष ही था। सुमनोनुवर्तियोंमें (पुष्पोंका अनुवर्तन करनेवालोंमें; दूसरे पक्षमें विद्वानोंके अनुवर्तन करनेवालोंमें) कोई मधुप्रिय (जिसको पुष्परस पराग—प्रिय हो ऐसा; दूसरे पक्षमें मद्य जिसको प्रिय हो ऐसा) था तो एक भ्रमर ही था। भोगियोंमें (भोगेवालोंमें) स्फुरायमान द्विज्हिना (दो जीभों) को धारण करनेवाला कोई विद्वानोंको प्राप्त हुआ तो अहि—सर्प ही प्राप्त हुआ॥ २४॥ गुणवानोंमें केवल हार ही ऐसा था जो सुवृत्तमुक्तात्मकता (बिलकुल गोल मोतियोंको; दूसरे पक्षमें सदाचारसे शून्यता) को निरन्तर धारण करता था। सुजातरूपों (मुनियों; दूसरे पक्षमें सोनेकी चीजों) में मणिमय मेखला गुण ही ऐसा था जो सदा दूसरोंकी स्त्रियोंको ग्रहण करता था॥ २५॥ कामुकों—कामियोंमें एक कोक पक्षी ही ऐसा था जो रात्रिके समय प्रियाके वियोगकी व्यथासे कृश हो जाता था। वहांपर और कोई दुर्बल न था यदि कोई था तो नितंबिनियोंका कुच भारसे पीडित मध्यमाग था जो कि दुर्बलताके मारे नम गया था॥ २६॥ इस प्रकार प्रजामें प्रतिदिन उत्कृष्ट स्थितिको विस्तृत करता हुआ—फैलाता हुआ बड़े संभ्रमसे या शत्रुओंके संभ्रमसे रहित अच्युत रत्नाकरके जलकी जिसके मेखला है ऐसी पृथ्वीकी एक नगरीकी तरह रक्षा करता हुआ॥२७॥

इस तरह कुछ दिन बीत जाने पर स्वयंप्रभाने क्रम क्रमसे दो पुत्र और एक कन्याका प्रसव किया। मानों त्रिपिष्टको प्रसन्न

१—भोग शब्दके दो अर्थ हैं—एक विलास दूसरा सांपका फण। २—गुण शब्दकें भी दो अर्थ हैं—एक औदार्य प्रताप आदि गुण; दूसरा सुत—डोरा।

करनेके लिये उसकी वल्लभा मरिचीने भविष्यत् लक्ष्मी या भाग्यलक्ष्मी अथवा प्रतापलक्ष्मीके साथ साथ उत्तम कोष और दंडको उत्पन्न किया ॥२८॥ लक्ष्मीपर विजय करनेवाले बड़े पुत्रका नाम परंतप था और यश ही है धन जिसका ऐसे छोटे भाईका नाम विजय था। सुंदर मृगनयनी लड़कीका नाम ज्योतिप्रभा था ॥२९॥ दोनों पुत्र हर तरफसे शरीरकी विशेषताके साथ साथ पिताके गुणों-का अतिक्रम करने लगे। और वह कन्या कांतिसे अपनी माको जीतकर केवल शीलकी अपेक्षा समान रही ॥३०॥ वे दोनों ही पुत्र राजविद्याओंमें—नीति शास्त्रादिकमें, हाथीके चढ़ने चलाने आ-दिकमें, घोड़ेकी सवारीमें, हरएक तरहके अस्त्रशस्त्रके चलाने आदि-कमें निरन्तर कुशलताको धारण करने लगे। कन्याने भी समस्त कलाओंमें कुशलता प्राप्त की ॥ ३१ ॥

एक दिन प्रजापतिने दूतके मुखसे सुना कि विद्याधरोंका स्वामी ज्वलनजटी तपपर प्रतिष्ठित हो गया—उसने मुनिदीक्षा ले ली। वह उसी समय अपनी बुद्धिमें विषयोंके प्रति निःस्पृहा धा-रण कर यह विचार करने लगा ॥३२॥ "वह रथनूपुरका स्वामी ही धन्य है, और उसकी ही बुद्धि—हितानुबंधिनी—हितमें लगाने-वाली है। जो कि इस तृष्णामय वज्रके पिंजरेमेंसे, जिसमेंसे कि दुःखपूर्वक भी नहीं निकला जा सकता, सुखपूर्वक निकल गया ॥३३॥ समस्त पदार्थ क्या क्षणभंगुर नहीं हैं? जगत्में क्या सुख-का एक लेशमात्र भी है? बड़े खेदकी बात है कि विवेकरहित यह जीव फिर भी अपने हितमें प्रवृत्त नहीं होता, किन्तु नहीं करने योग्य कामोंमें ही प्रवृत्ति करता है ॥३४॥ प्रतिक्षण जैसे जैसे

आयु गलती–बीतती है तैसे तैसे और भी श्वास लेना–जीना ही चाहता है। आत्माको विषयोंने अपने वशमें करके अशक्त कर डाला है तो भी इसकी उनसे तृप्ति नहीं होती ॥३५॥ जिस तरह समुद्र हजारों नदियोंसे, अग्नि ढेरों ईंधनसे चिरकाल तक भी संतुष्ट नहीं होती। उसी तरह कामसे विह्वल हुआ यह पुरुष कभी भी विषयभोगोंसे संतुष्ट–तृप्त नहीं होता ॥३६॥ ये मेरे प्राण समान सहोदर भाई है, यह इष्ट पुत्र है, यह प्रिय मित्र है, यह भार्या है, यह धन है, इस तरहकी व्यर्थकी चिंता करता हुआ यह विचार रहित जीव अहो निरर्थक दुःखी होता है ॥३७॥ यह जीव अपने पूर्व जन्मके किये हुए कर्मोंके एक शुभाशुभ फलको ही नियमसे भोगता है। अतएव देहधारियों–संसारियोंका अपनेसे भिन्न न तो कोई स्वजन है और न कोई परजन है ॥३८॥ इन्द्रियोंके विषय इस प्राप्त हुए पुरुषको कालके वशसे क्या स्वभावसे ही नहीं छोड़ देते हैं। अर्थात् ये विषय तो २ काल पाकर पुरुषको स्वभावसे ही छोड़ देते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि वृद्धावस्थासे बिल्कुल दुःखी हुआ भी तथा वे विषय इसको छोड़ दें तो भी यह प्राणी स्वयं उनको नहीं छोड़ता है ॥ ३९ ॥ सत्पुरुष विषयोंसे उत्पन्न हुए सुखको प्रारम्भमें अशक्त–अपरिपूर्ण तथा मधुर और मनोहर बताते हैं। किंतु परिपाक समयमें अत्यंत दुःखका कारण बताते हैं। इसका सेवन ठीक ऐसा है जैसा कि अच्छी तरह पके हुए इन्द्रायणके फलका खाना क्योंकि वह खानेमें तो अच्छा लगता है पर काम जहरका करता है ॥४०॥ यद्यपि संसार-समुद्र अत्यंत दुस्तर है–सहज ही उसको कोई तर

नहीं सकता; तो भी जबकि उससे पार करदेनेवाला जिनशासनरूपी जहाज मौजूद है तब संसारमें ऐसा कौन सचेतन—समझदार होगा जो कि विषयोंकी इच्छासे वृथा ही दुःखी होता हुआ घरमें ही रहनेके लिये उत्साह करे ॥ ४१ ॥ जिसके रागका प्रसार नष्ट हो गया है ऐसे जीवको जो आत्मामें ही स्थित शांति रूप शाश्वत सुख मिलता है क्या उसका एक अंश भी जिसका परिपाक दुःख रूप है ऐसी मोहरूप अग्निके निमित्तसे जिनका हृदय संतप्त हो रहा है उनको मिल सकता है? ॥ ४२ ॥ तात्विक यथार्थ जिनोक्त धर्मकी अवहेलना करके जो विषयोंका सेवन करना चाहता है वह मूर्ख अपने जीवनकी तृष्णासे हाथमें रक्खे हुए अमृतको छोड़ कर विष पीता है ॥ ४३ ॥ जिस तरह वृद्धावस्थाके पंजेमें पड़ा हुआ नवीन यौवन फिर कभी भी लौट कर नहीं आता है, उसी तरह निश्चित—नियमसे आनेवाली मृत्युके निमित्तसे यह आयु और आरोग्य प्रतिक्षण नष्ट हो रहे हैं ॥ ४४ ॥ संसारमें फिर-बार बार जन्म लेनेके क्लेशको दूर करनेमें समर्थ अत्यंत दुर्लभ सम्यक्त्वको पाकर मेरे समान और कौन दूसरा ऐसा प्रमत्तबुद्धि होगा जो कि तपस्याके विना अपने जन्मको निरर्थक गमावे ॥४५॥ जब तक यह बलवती जरा—वृद्धावस्था इन्द्रियोंके बलको नष्ट नहीं करती है तब तक हंसके नीरक्षीर न्यायकी तरह मैं यथोक्त शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार ली हुई तपस्याके द्वारा शरीरसे और आयुसे सब निष्कर्ष निकाल लेता हूं" ॥ ४६ ॥ उस उदार—बुद्धि प्रजापतिने चिरकाल तक ऐसा विचार करके उसी समय हर्षसे इस समाचारको सुनानेकी इच्छासे दोनों पुत्रोंको बुलाया। बलभद्र और केशवने

आकर प्रजापतिके चरणोंको नमस्कार किया। इस पर प्रजापति दोनोंसे बोला ॥ ४७ ॥ कि-" आप विद्वानोंके अग्रेसर हो। क्या आपको यह संसारकी परिस्थिति मालूम नहीं है कि यह प्रातःकालके इन्द्र धनुष या मेघ अथवा बिजलीकी श्री-शोभाकी तरह उसी क्षणमें विलीन हो जानेवाली है ॥ ४८ ॥ जितने समागम हैं, वे सब छूट-नेही वाले हैं, जितनी विभूतियां हैं वे सब विपत्तिका निमित्त हैं, शरीर बिल्कुल रोग रूप है, संसारका सुख बिल्कुल दुःख मूलक है, यौवन जन्म शीघ्र ही मृत्युके निमित्तसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४९ ॥ यह पुरुष आत्माके अहितकर कार्मोंके करनेमें स्वभावसे ही कुशल होता है, और अपने हितमें स्वभावसे ही जड़ होता है। यदि आत्माकी ये दोनों बातें उल्टी हो जाँय अर्थात् जीव स्वभावसे ही अपने हितमें तो कुशल हो और अहितमें जड़ हो तो कौन ऐसे होंगे जो उसी समय मुक्तिको प्राप्त न करलें ॥ ५० ॥ अनादिकालसे अनेक संख्यावालीं अथवा जिनकी संख्या नहीं बताई जा सकती ऐसी कुगतियोंमें भ्रमण करते करते चिरकालसे बहुत दिनमें आकर इस जीवने किसी तरह इस दुर्लभ मनुष्य जन्मको पाकर प्रधान इक्ष्वाकुवंशको भी पालिया है ॥ ५१ ॥ मैं समस्त पंचेन्द्रियोंकी शक्तिसे युक्त हूं, कुलमें अग्रणी हूं, उसमें कुशाग्र बुद्धि हूँ, हित और अहितका जाननेवाला हूं, समुद्रवसना वसुंधराका स्वामी भी हो गया हूं ॥ ५२ ॥ तुम दो मेरे पुत्र हो गये। जोकि किसीके भी वश न होनेवाले हो। और सभी महात्मा हलधरों-बलभद्रों तथा चक्रधरों-नारायणोंमें सबसे पहले हो। संसारमें पुण्यशालियोंके जन्मका फल इसके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ५३ ॥

आदीश्वर भगवान्की संतानके संतानमें होनेवाले पुत्रके मुखकमलके देखनेतक गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले प्राचीनों—पूर्वजोंकी जो कुलकी मर्यादा प्रसिद्ध है उसको अर्थात् पुत्र होनेतक घरमें रहनेकी जो हमारे कुलमें रीति चली आती है उसको मैंने विफल कर दिया—तोड़ दिया ॥ ९४ ॥ अतएव क्रमानुसार अब भी मैं दिगम्बरोंकी पवित्र दीक्षाका अनुगमन करता हूं। तुम्हारा स्नेह दुस्त्यज है—कठिनतासे भी नहीं छूट सकता है तो भी मोक्षसुखकी स्पृहा-वांछासे मैं उसको छोड़ता हूं ॥ ९५ ॥ वह पुत्रवत्सल प्रजापति इस तरह कहकर दोनों पुत्रोंके मुकुटोंकी किरणरूप रस्सीसे उसके पैर बंधे हुए थे तो भी तपोवनको चल गया। जो भव्य प्राणी हैं, जिनकी मोक्ष होनेवाली है उनको कोई भी निबंधन—रोकनेवाला नहीं होता ॥ ९६ ॥ जितेन्द्रियोंके अधीश्वर यथार्थनामा पिहिताश्रव (कर्मोंके आश्रवको रोकनेवाले) मुनिके चरणोंको नमस्कार करके उसने—प्रजापतिने शांत मनवाले सातसौ राजाओंके साथ मुनियोंकी उत्कृष्ट धुरा—अग्रपदको धारण किया ॥ ९७ ॥ जैसा आगममें कहा है उसी मार्गके अनुसार अत्यंत कठिन उत्कृष्ट और अनुपम तपको करके प्रजापतिने आठों कर्मोंके पाशके बंधनको दूर कर उपद्रव रहित श्री—केवलज्ञानादि विभूतिसे युक्त सिद्धि—मुक्तिपदको प्राप्त किया ॥ ९८ ॥

कुछ समय बीत जानेपर एक दिन माधवने देखा कि पुत्रीको यौवनकी सम्पत्तिने अभिषिक्त कर रक्खा है। इससे वह बार बार इस तरहकी चिंता करता हुआ खिन्न हुआ कि इसकी दीप्तिके सदृश—योग्य अतिश्रेष्ठ वर कौन हो सकता है

॥ ५९ ॥ जब स्वयं अपनी बुद्धिसे कुछ निश्चय न कर सका तब नीतिमें प्रवीण मंत्रियोंके साथ २ एकान्तमें बलभद्रसे प्रणाम करके इस तरह बोला ॥ ६० ॥ "आप पिताके सामने भी हमारे कुलके धुरंधर अग्रनेता थे पर अब उनके पीछे तो विशेषतासे हैं। जिस वनमें सूर्य प्रकाश करता है उसीमें चंद्रमा भी लोगोंको समस्त पदार्थोंका प्रकाश करता है ॥ ६१ ॥ इसलिये हे आर्य! तत्वतः अच्छी तरह विचार करके कि राजाओंमें या विद्याधरोंमें कुलकी अपेक्षा और रूपकी अपेक्षा तथा कला गुण आदिकी अपेक्षा आपकी पुत्रीके योग्य पति कौन है उसको मुझे बताइये।" ॥ ६२ ॥ नारायणके इस तरहके वचन कहने पर दांतोंकी कुंद समान सफेद किरणोंसे प्रसिद्ध बने हुए हारकी किरणोंसे ग्रीवाको ढकनेवाला बलभद्र इसतरह वचन बोला ॥ ६३ ॥ "जो छोटा है वह भी यदि लक्ष्मीसे अधिक है तो वह बड़ा ही है। आप सरीखे महात्मा इस विषयमें वय—उम्रकी समीक्षा नहीं करते। अतएव तुम हमारे गति—निधि हो, नेत्र हो, कुलके दीपक हो ॥६४॥ जिस तरह आकाशमें चंद्रकलाके समान आकार रखनेवाला कोई भी नक्षत्र बिलकुल देखनेमें नहीं आता उसी तरह इस भारतमें भी रूपकी अपेक्षा तुमारी पुत्रीके समान कोई क्षत्रिय भी देखनेमें नहीं आता ॥ ६५ ॥ अपनी बुद्धिसे कुछ काल तक अच्छी तरह विचार करके यत्नसे राजाओंमेंसे किसीको यदि उस निर्दोष कन्याको हम दे भी दें तो भी उससे इसका निश्चय नहीं होता कि क्या उन दोनोंमें समान अनुराग होगा? ॥ ६६ ॥ सौभाग्यका निमित्त न केवल रूप है, न कला है, न यौवन है और न आकार है। स्त्रियोंको

पतियोंमें प्रेमके कारण जो उचित दूसरे दूसरे गुण बताये हैं अर्थात् जिनसे स्त्रियोंको पतियोंमें प्रेम होता वे गुण इन सबसे भिन्न ही हैं ॥ ६७ ॥ इसलिये स्वयं कन्या ही स्वयंवरमें अपने अनुरूप वरको अपनी बुद्धिसे वर ले। यह विधि चिरकालसे बहुत कुछ प्रवृत्त हो रही है। उनकी की हुई यह विधि सफलताको प्राप्त होओ" ॥ ६८ ॥ इस प्रकार कहकर और उदार बुद्धियों-मंत्रियोंसे दूसरे कामके विषयमें विचार करके बलभद्र चुप हो गये। तब नारायणने मंत्रियोंके साथ साथ "ऐसा ही ठीक है" इस तरह बलभद्रके कथनको स्वीकार कर अपने दूतों द्वारा दिशाओंमें स्वयंवरकी घोषणा करा दी ॥ ६९ ॥

अर्ककीर्ति स्वयंवरकी बात सुनकर सहसा–शीघ्र ही पुत्र अमिततेजको और मनोराङ्गी पुत्री सती सुताराको लेकर विद्याधरोंके साथ साथ पोदनपुरको आया ॥७०॥ चारो तरफके प्रवेश देशोंमें अर्थात् नगरके बाहर किंतु पास ही चारोतरफ राजाओंके सिविरोंसे तथा स्वयंवरोत्सवकी उड़नेवाली ध्वजाओंसे परिष्कृत नगरको पाकर नगरमें पहुंचकर जहां भीड़ लगी हुई है ऐसे राजदरबारमें पहुंचा ॥७१॥ लताओंका जो तोरण बना हुआ था उसके बाहरसे उत्सुकताके साथ उन्नत या उदयको प्राप्त बलभद्र और नारायणको देखकर उन दोनों ही साम्राज्य कर्त्ताओंके चरणयुगलको पहले नमस्कार किया। उन दोनोंने भी उसका आलिंगन कर सत्कार किया ॥ ७२ ॥ अपने पैरोंमें नमस्कार करते हुए अर्ककीर्तिके उस पुत्र अमिततेजको देखकर तथा मनोहरताकी सीमा अपनी कांतिसे नाग कन्याको जीतनेवाली पुत्रीको देखकर उन दोनोंके नेत्र आश्चर्यसे निश्चल होगये

॥ ७३ ॥ कुलकी ध्वजा श्री विजयने विजयके साथ अपने मामाकी वंदना की। वह भी तत्क्षण उनको देखकर हर्षसे व्याकुल हो उठा। अपने बंधुओंका दर्शन होना इससे अधिक और क्या सुख हो सकता है ॥ ७४ ॥ इसके बाद बलभद्र और नारायण जिसके आगे आगे हो लिये हैं ऐसे अर्ककीर्तिने उत्सवसे व्याप्त राजमहलमें प्रवेश किया। वहां पर पुत्रवधूके साथ साथ स्वयंप्रभा उसके पैरोंमें पड़ी। अर्ककीर्तिने उनका यथोचित आशीर्वाद वचनोंसे सत्कार किया ॥ ७५ ॥ साथ ही सुतारा और अमिततेज स्वयंप्रभाके पैरों पड़े। उसने (स्वयंप्रभाने) उनको देख कर उसी समय बिना स्वयंवरके मनसे ही अपने पुत्र और पुत्रीके लिये नियुक्त किया ॥ ७६ ॥ चक्रवर्तीकी पुत्री अमिततेजपर आशक्त होगई। स्वयंवरकी अपेक्षा वह नियमसे उसकी स्त्री होगई। यह काम उसने मानों अपनी माताके संकल्पके वश होकर ही किया। मन नियमसे आने पहले वल्लभको जान लेता है ॥ ७७॥ सुताराने श्री विजयके मनको हर लिया। श्री विजयने कुटिल कटाक्षपातोंको बार बार देखकर उसके मनको हरलिया। भवांतरका स्नेहरस ऐसा ही होता है ॥ ७८ ॥

शुद्ध दिनमें अति विशुद्ध लक्षणोंवाली सखीजनोंके द्वारा जिसका सम्पूर्ण मङ्गलाचार किया गया है ऐसी ज्योतप्रभा राजाओंके मनोरथोंको व्यर्थ करनेके लिये स्वयम्वरके स्थान—मंडपमें आकर प्राप्त हुई ॥ ७९ ॥ विधिपूर्वक सखीके द्वारा क्रमसे बताये गये समस्त राजपुत्रोंको छोड़ कर ज्योतिप्रभाने लज्जासे मुख फेर कर चिरकालके लिये अमिततेजके गलेमें माला पहरा दी ॥ ८० ॥ इसके बाद सुताराने स्वयंवरमें दूसरे सब राजाओंको छोड़ कर श्री विज—

यके मनोहर या उसकी तरफ झुके हुए कंठको पुष्प मालासे गाढ़-तासे बांध लिया। मानों अलक्षित—अदृष्ट मनको कामदेवके पाशसे बांध लिया॥ ८१ ॥ इसके बाद पुत्र और पुत्रियोंकी यथोचित विवाह करके विद्याधरोंका स्वामी परस्परकी बंधुताकी शृंखलाके बँध जानेसे संतुष्ट हुआ। बहुत दिनके बाद बहिन—स्वयंप्रभा बलभद्र और नारायणने उसको किसी तरह विदा किया। तब वह अपने नगरको गया॥ ८२॥ अपनेको इष्ट और मनोज्ञ विषयोंके द्वारा जिसकी बुद्धि आकृष्ट हो रही है। अर्थात् जिसका मन विषयोंमें तल्लीन हो रहा है ऐसा तृपिष्ठ पूर्वोक्त प्रकारसे साम्राज्यको चिरकालतक भोगकर सोता हुआ ही अपने निदानके वशसे रौद्रध्यानके द्वारा जीवनके विपर्यय—मरणको प्राप्त हुआ॥ ८३ ॥ जहां पर चिंतवनमें आ सके ऐसा दुरंत (जिसका अंत भी दुःखरूप हो) घोर दुःख मौजूद है जहांकी आयु तेतीस सागरकी है ऐसे सातवें नरकमें नारायणने पापके निमित्तसे उसी समय जाकर निवास किया॥ ८४ ॥ बलदेवने यश ही जिसका अवशेष बाकी रह गया है ऐसे त्रिपिष्ठको देखकर उसके कंठको अतिचिरकालमें छोड़ा। और ऐसा विलाप किया कि जिसको सुनकर शांतस्वरूपवाले मुनियोंको भी अति ताप हो उठा॥८५॥ जिनकी आंखोंमें जल भरा हुआ ऐसे संसारकी परिपाटीको बतानेवाले वृद्ध पुरुषोंके द्वारा तथा वृद्ध मंत्रियोंके द्वारा समझाये जानेपर और स्वयं भी संसारकी अशरण और प्रतिक्षणमें नष्ट होनेवाली स्थितिको समझकर बलभद्रने बड़ी मुश्किलसे चिरकालमें जाकर किसी तरह शोकको छोड़ा॥८६॥ स्वयंप्रभा जो कि त्रिपिष्ठके पीछे आप भी मरनेके लिये उद्यत हुई थी उसको बलदेवने शांति देनेवाले

वचनोंसे यह कह कर कि यह निरर्थक व्यवसाय—उद्योग आत्माको सैकड़ों भवोंका कारण होना है, उस समय स्वयं रोका ॥ ८७ ॥ जिनसे बार बार आंसुओंकी बिंदुएं टपक रही हैं ऐसे दोनों नेत्रोंको पोंछ कर कुशल शिल्पियोंके द्वारा बनाये गये लोकोत्तर वेशको धारण कर नारायण बाह्य पदार्थोंका ज्ञान न होने देनेवाली निद्राके वशसे वश होकर अग्निकी शिखाओंके समूहके नवीन पत्तोंके बिछोनेपर सो गया ॥ ८८ ॥ संसारके दुःखसे भयभीत हुए बलभद्रने श्री विजयको राज्यलक्ष्मी देकर सुवर्णकुम्भ मुनिको नमस्कार करके हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की ॥ ८९ ॥ रत्नत्रयरूप हथियारकी श्रीसे चारो घतिया कर्मोंको नष्ट करके केवलज्ञानरूप नेत्रके द्वारा तीनों लोकोंकी वस्तु स्थितिको युगपत् एक ही कालमें देखते हुए बलभद्रने भव्य प्राणियोंको अभयदान देनेमें रसिक होकर और फिर स्थिर होकर अर्थात् योगनिरोध करके सुख संपदाके उत्कृष्ट और नित्य सिद्धोंके स्थानको प्राप्त किया ॥ ९० ॥

इस प्रकार असग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें 'बलदेव सिद्धि-गमन' नामक दशवां सर्ग समाप्त हुआ।

ग्यारहवां सर्ग ।

चिरकाल तक (तेतीस सागर तक) नरक गतिमें अनेक तरहके दुःखोंको भोगकर वह चक्रवर्तीका जीव फिर वहांसे किसी तरह निकला और इसी भरतक्षेत्रके भीतर प्रविपुलसिंह नामके पर्वतपर सिंह हुआ ॥ १ ॥ प्रथम—अनंतानुबंधी कषायके कषाय-

रंगमें रंगे रहनेके कारण उसका मन स्वभावसे ही शांतिरहित था। विना निमित्तके ही यमकी तरह कुपित होनेवाला भूखा न होनेपर भी वह मदोन्मत्त हस्तियोंका वध कर डालता था ॥ २ ॥ पर्वतके रंध्रों-गुफाओंको प्रतिध्वनिसे पूर्ण कर देनेवाली उसकी गर्जनाको सुनकर हाथियोंके बच्चोंका हृदय दहल जाता था या फट जाता था। वे अवसर न होनेके कारण प्रियप्राणोंके साथ साथ अपने यूथों-समूहों-झुंडोंसे भी निराश होजाते थे ॥ ३ ॥ जो मृगसमूह उस सिंहके नखोंके अग्र भागसे लुप्त-नष्ट होते होते बच गये थे वे सब किसी बाधा रहित दूसरे वनमें चले गये। यह सदाकी रीति है कि सभी जीव उपद्रव रहित स्थानकी तरफ जाया करते हैं ॥ ४ ॥ खोटे भावोंका सम्बन्ध जिसका नहीं छूटा है ऐसा वह निर्दय सिंह अपनी आयुके पूर्ण होनेपर फिर भी नरकमें गया। जंतुको पहला अऋत-असमीचीन-दुःखमय फल रही है ॥ ५ ॥ हे मृगराज! यह विश्वास कर-निश्चय समझ कि जो सिंह नरकगतिको प्राप्त हुआ था वह तू ही है। अब, जिन दुःखोंको नरकोंमें प्राणी भोगता है उनको मैं सुनाता हूं सो तू सुन ॥६॥

कीड़ोंके समूहसे व्याप्त दुर्गंधियुक्त हुंडक संस्थानवाले विद्रूप शरीरको शीघ्र ही पाकेर[1] जहां उत्पन्न होते हैं उस जगहसे बाणकी तरह नीचेको मुख करके वह प्राणी वज्राग्निमें पड़ जाता है ॥७॥ जिनके हाथमें अति तीक्ष्ण और नाना प्रकारके हथियार लगे हुए हैं ऐसे नारकी लोग दूसरेको भयसे कांपता हुआ देखकर "जला डालो" "पका डालो या भूंज डालो" "चीर डालो" "मार

१ एक अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्तिको पूर्ण करके।

डालो" इत्यादि अनेक प्रकारके दुर्वचन कहते हैं और बिल्कुल उसी तरह करते हैं ॥ ८ ॥ "यह दुःख देनेवाली गति कौनसी है?" "मैंने पहले—पूर्वजन्ममें कौनसा उग्रपाप किया है?" "मैं भी कौन हूं?" इसतरह कुछ क्षण तक विचार करके उसके बाद वहां उत्पन्न होनेवाला जीव विभंगावधिको पाकर सब बात जान लेता है ॥ ९ ॥ वहांके नारकी दूसरे नारकियोंको अग्निमें पटक देते हैं, मुख फाड़कर धूंआ पिला देते हैं, टूटती हुई तथा उछलती हुई हड्डियोंका जिसमें घोर शब्द हो रहा है इसतरहसे यंत्रोंके द्वारा अनेक तरहसे पेल डालते हैं, ॥ १० ॥ जिसके नखोंमें तीक्ष्ण वज्रमयसुइयां चुभोदी गई हैं ऐसा नरकमें उत्पन्न हुआ जीव आर्तनाद कर दीन विलाप करने लगता है। नारकियोंका समूह उसके शरीरको नष्ट कर देता है। इसीलिये वह अनेकवार विचेतनताको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ किनारेके वज्र समान नुकीले कंकड़ोंसे जिसके पैर फट गये हैं, स्वाभाविक प्यासके मारे जिसके कंठ और तालु सूख गया है, हाथी और मकर तथा तलवारके द्वारा खंडित होनेपर भी विषमय जल पीनेके लिये वैतरणी नदीमें प्रवेश करता है ॥ १२ ॥ दोनों किनारोंपर खड़े हुए नारकियोंके समूहोंने रोककर जिसको उस वैतरणी नदीमें वारवार अवगाहन कराया है ऐसा वह जीव दुःखी होकर किसी तरह छेद—जगह पाकर वज्रसमान अग्निसे दहकते हुए पर्वतपर चढ़ जाता है ॥ १३ ॥ सिंह, हाथी, अजगर, व्याघ्र तथा कंकपक्षी आदिकोंने आकर जिसके शरीरको नष्ट कर दिया है ऐसा वह नारकी जीव वहांपर अत्यंत असह्य दुःखको पाकर वि-

श्राम लेनेके लिये सघन वृक्षोंकी तरफ जाता है ॥ १४ ॥ पर अ-नेक प्रकारके तीक्ष्ण हथियारोंके समान पत्तोंको छोड़कर वे वृक्ष स-मूह उसके शरीरको विदीर्ण कर डालते हैं तब सैकड़ों घावोंसे व्याप्त उस शरीरको भ्रमरसमूहोंके साथ साथ हुए प्रचंड कीड़े काटने लगते हैं ॥ १५ ॥ अत्यंत कठोर शब्दोंके द्वारा कानोंको व्यथित करनेवाले काले कौए उसके दोनों नेत्रोंको अपनी वज्रमय चोंचोंसे चोंथते हैं पर अग्निकी शिखाओंसे उनके भी पंख जल जाते हैं ॥ १६ ॥ कोई २ नारकी जिसका मुख फट गया है ऐसे किसी नारकीको विषमय जलसमूहसे भरी हुई वैतरणी नदीमें डाल-कर कठोर या भारी और तीक्ष्ण मुखवाले मुद्गरोंके प्रहारोंसे चूर्ण करते-कूटते हुए प्रचंड अग्निके द्वारा पकाते हैं । १७ ॥ घुमाना फिराना उछालना आदि अनेक प्रकारकी क्रियाओंके द्वारा ओंचा-नीची (ऊंची नीची) शिलाओंपर पटककर पीस डालते हैं । कोई २ बड़े भारी यंत्रमें (कोलू आदिकमें) डालकर शरीरको आरेसे चीर डालते हैं ॥ १८ ॥ प्रचंड अग्निसे व्याप्त वज्रमय मूषा (घरिया—धातुओंके गलानेका पात्र) में पड़े हुए लोहेके संतप्त रसको पीकर—पीनेसे जिसकी जीभ गिर गई है और तालु नष्ट हो गया है ऐसा वह जीव वहांपर मांसप्रेमके—मांसभक्षणके फलोंको याद करता है । अर्थात् जब नारकोंमें लोहेके गरम २ रसको पीता है तब जीवको याद आती है कि पूर्वभवमें मैंने जो मांस खानेसे प्रेम किया था उसका यह फल है ॥१९॥ जलती हुई अंगनाओं—पुतलियोंके साथ शीघ्रतासे आलिंगन करनेसे और वक्षःस्थलमें स्त-नोंकी जगह वज्रमय मुद्गरोंके प्रहारसे भग्न हुआ जीव नरकमें नि-

यमसे कामके दोषोंको समझ लेता है। अर्थात् उसको यह मालूम हो जाता है कि मैंने जो पूर्वभवमें पर स्त्री या वेश्या आदिकसे गमन किया था उसका यह फल है ॥ २० ॥ मेष महिष (भैंसा) मत्तहस्ती तथा कुक्कुट (मुर्गा) असुरोंके शरीरको उनके आगे जल्दी २ ढोता हुआ श्रमसे विवश हो जानेपर भी क्रोधसे लाल नेत्र करके दूसरोंके साथ खूब युद्ध करने लगता है ॥ २१ ॥ अम्बरीष जातिके असुरोंके मायामय हाथोंकी तर्जनियोंके अग्रभागके तर्जनमय दिखानेसे जिनका हृदय फट गया है ऐसे वे नारकी डरके मारे दोनों हाथों और दोनों पैरोंसे रहित होनेपर भी शीघ्र ही शाल्मली वृक्ष पर चढ़ जाते हैं ॥ २२ ॥ अपनी बुद्धिसे 'यह सुख है' या 'इससे सुख होगा' ऐसा निश्चित समझकर जिस जिस कामको करते हैं वे सब काम नियमसे उनको शीघ्र अत्यंत दुःख ही देते हैं। नारकियोंको सुखकी तो एक कणिका भी नहीं मिलती ॥ २३ ॥ इसप्रकारके विचित्र दुःखोंसे युक्त नारक पर्यायसे निकलकर तू यहां पर फिर सिंह हुआ। पूर्वबद्ध तीव्र दर्शनमोहनीय कर्मके निमित्तसे यह प्राणी चिरकालसे कुगतियोंमें निवास कर रहा है ॥ २४ ॥ जो तुझे मालूम हो गया है—अर्थात् जिसको सुनकर तुझे जातिस्मरण हो गया है। इस प्रकारके तेरे भवोंका हे मृगेन्द्र! खूब अच्छी तरह वर्णन किया। अब आत्माका हित क्या है उसका मैं वर्णन करता हूं सो तू निर्मल बुद्धि—चित्तसे सुन ॥ २५ ॥

मिथ्यादर्शन अविरति प्रमादजनित दोष कषाय और योगोंके साथ २ इनरूप आत्मा निरन्तर परिणत होता है। इन परिणामोंसे ही इसके बन्ध—कर्मबन्ध होता है ॥ २६ ॥ इस कर्मबन्धके दोषसे

गतियोंमें जन्म धारण करता है। उस जन्मसे शरीर और इन्द्रियों-को पाता है। इनसे—शरीर और इन्द्रियोंसे सदा ही विषयोंमें रति होती है। विषयोंमें रति करनेसे फिर वे ही सब दोष (मिथ्या-दर्शन आदिक) प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ जीवकी संसार—समुद्रमें बारबार भ्रमण करनेकी यह परिपाटी होती है। इसको जिनेन्द्र-देवने अनादि और अनन्त बताया है। जीवका बन्ध—कर्मबन्ध सादि और सांत भी है ॥ २८ ॥ हे मृगराज ! तू हृदयमेंसे क-षायके दोषोंको निकाल—दूरकर, सर्वथा शांतिमें तत्पर हो, जिनेन्द्र-देवके बताये हुए मतमें प्रणय—प्रेम—रुचि—श्रद्धा कर और कुमार्गके प्रेमको दूर कर ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने समान समझकर तीनों गुप्तियों—मन वचन कायके निरोधोंसे युक्त होता हुआ उनके वध करनेके भावको छोड़। जो नियमसे आत्माके क-ल्याणको समझता है वह दूसरोंको दुःख किस तरह दे सकता है ॥३०॥ हे सिंहराज ! जो सुख इन्द्रियोंसे प्राप्त होता है वह सदा बाधासहित विषम अपनी और परकी अपेक्षासे उत्पन्न होनेवाला अर्थात् कर्मोंके परवश अनिश्चित और बंधका कारण है। इसको उग्र दुःखरूप समझ ॥ ३१ ॥ यह शरीर, नव द्वारोंसे युक्त, रज वीर्यके उत्पन्न होनेसे स्वभावसे सदा अशुचि, अनेक प्रकारके मलोंसे पूर्ण, विनश्वर, दोषरूप, विविध प्रकारकी शिराओंके जालसे बंधा हुआ, बहुतसी तरहके हजारों रोगोंके रहनेका घर; अपने शरीरके चामके कवचसे ढका हुआ, कृमिजालसे भरा हुआ, दुर्गंधियुक्त और स्थिर तथा विकट हड्डियोंके बने हुए एक यंत्रके समान है। इस शरीरको ऐसा समझकर कि यही अनेक तरहके दुःखोंका कारण

है तू उससे ममत्वबुद्धिको बिल्कुल हटा ले। जो समझदार है वह अपनेसे भिन्न चीजमें जो चीज अपनी नहीं है उसमें मति-ममत्व बुद्धिको किस तरह धारण कर सकता है?॥ ३२-३४ ॥ हे मृगराज! जहां पहुंचकर फिर भव धारण नहीं करना पड़ता ऐसे तथा जिसमें इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं ऐसे और बाधा रहित निरुपम आत्ममात्रसे उत्पन्न होनेवाले मोक्षके सुखको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो निश्चयसे बाह्य और अंतरंग परिग्रहका त्याग कर ॥३५॥ घर धन शरीर आदिक सब बाह्य परिग्रह हैं। अनेक प्रकारके जो राग, लोभ, कोप आदिक भाव होते हैं उनको अंतरंग परिग्रह समझ। यह परिग्रह दुरंत है—इसका परिपाक खोटा है ॥ ३६ ॥ तू अपने मनमें ऐसा समझ कि मेरा जो आत्मा है वही मैं हूं। वह अक्षय श्रीवाला और ज्ञान दर्शन लक्षणवाला है। दूसरे समस्त भाव मुझसे भिन्न हैं अज्ञानरूप हैं और समागम लक्षणवाले हैं—उनसे मेरा केवल संयोग मात्र है ॥ ३७ ॥ निर्मल सम्यग्दर्शनरूप गुहाके भीतर उपशमरूप नखोंके द्वारा कषायरूप हाथियोंका वध करता हुआ तू यदि संयमरूप उन्नत पर्वतपर निवास करे तो हे सिंह! तू नियमसे भव्यसिंह—भव्योंमें उत्तम है ॥ ३८ ॥ तू यह निश्चय समझ कि जिनवचनसे अधिक संसारमें दूसरा कुछ भी हितकर नहीं है। क्योंकि इसीके द्वारा अनेक प्रकारके प्रबल कर्मोंके पाशसे जीवकी सर्वथा मोक्ष होती है ॥३९॥ दोनों कर्णरूप अंजलीके द्वारा पीया गया यह दुष्प्राप्य जिन वचनरूप रसायन विषयरूप विषकी तृषा-पीनेकी इच्छाको दूर कर किस भव्यको अजर और अमर नहीं बना देता है ॥ ४० ॥ हे सिंहोंमें श्रेष्ठ! तू निश्चयसे मार्दवके द्वारा

मायाका मथन कर शौचरूप जलसे लोभरूप अग्निको शांत कर-बुझा
॥४१॥ हृदयको शम-शांति (कषायोंका न होना)में सं-प्रवृत्त करने-
वाला तू यदि दुःखोंके द्वारा या दुःखोंसे उत्पन्न परीषहोंके संबंधसे नहीं
डरेगा तो तेरा शौर्य यशोमहिमाके द्वारा तीनों लोकोंको एकसाथ प-
वित्र करेगा ॥ ४२ ॥ सदा पांचों गुरुओंको (अर्हंत सिद्ध आचार्य
उपाध्याय एवं साधुओंको) प्रणाम किया करो यही अनुपम मुक्तिकी
सिद्धिका हेतु है। विवेकी पुरुष इन पंच नमस्कारोंको ऐसा मानते
हैं कि यह अत्यंत दुस्तर संसार समुद्रसे तारनेवाला है ॥ ४३ ॥
तीन शल्योंको (माया, मिथ्या, निदान)को बिलकुल दूर कर पांच
व्रतोंकी निर्मलतासे रक्षा कर, शरीरमें जो बड़ी भारी ममत्वबुद्धि
लगी हुई है उसको छोड़ अपने हृदयको निरंतर कल्याणमें लगा कर
॥ ४४ ॥ ज्ञान—सम्यग्ज्ञान अविद्याको दूर करता है, तपश्चरण कर्मोंका-
पूर्वबद्ध कर्मोंका क्षय—निर्जरा करता है और रोकता है—नवीन कर्मों-
को आनेसे रोकता है—संवर करता है। दर्शन—सम्यग्दर्शनके मिल-
नेसे ये तीन (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) हो जाते हैं।
निश्चय समझ कि इन तीनोंका समूह ही मोक्षका हेतु—कारण—
मार्ग है ॥४५॥ तू निरंतर ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे तेरे हृदयमें
उत्कृष्ट विशुद्धि उत्पन्न हो। अपने हितके जाननेवाले! यह
निश्चय समझ कि अब तेरी आयुकी स्थिति सिर्फ एक महीनेकी
बाकी रही है ॥४६॥ तीनों करणों (मन, वचन, काय) की विशुद्धिसे
अपने समस्त पापयोगको दूर कर बोधि—रत्नत्रयके लाभको प्राप्त
करनेवाला तू निर्मल समाधिको—सल्लेखनामरणको पूर्ण करनेके लिये
जब तक आयु है तब तकके लिये अनशन धारण कर ॥ ४७ ॥ हे

निर्भय ! इस भवसे दशमें भवमें तू भारतवर्षमें जिनेन्द्र होगा। यह सब बात हमसे कमलाधर (लक्ष्मीधर) नामके जिनेश-मुनिराजने कही है ॥४८॥ हे शमरत ! उनके ही उपदेशसे हम तुमको प्रतिबोध देनेके लिये आये हैं। मुनियोंका हृदय अत्यंत निस्पृह होता है तो भी भव्य जीवोंको बोध देनेकी उसको स्पृहा रहती ही है ॥४९॥ जिसने तत्त्वार्थका निश्चय कर लिया है और जिसने अपने चरणोंको प्रणाम किया है ऐसे सिंहको पूर्वोक्त प्रकारसे चिरकाल-बहुत देर तक तत्त्वमार्ग-मोक्ष मार्गकी शिक्षा देकर वे मुनि आदरसे उस सिंहके शिरका हाथोंके अग्रभागसे बार बार स्पर्श करते हुए जानेके लिये उठे ॥ ५० ॥ चारणऋद्धिके धारक दोनों मुनियोंने अपने मार्गपर जानेके लिये मेघमार्गका आश्रय लिया। अर्थात् दोनों मुनि आकाशमार्गसे चले गये। और इधर प्रेमसे उत्पन्न होनेवाले आंसुओंके कणोंसे जिसके नेत्र भींज रहे हैं ऐसा वह सिंह उनको बहुत देर तक देखता रहा ॥५१॥ जब वह मुनियुगल वायुवेगसे अपने (सिंहके) दृष्टिमार्गको छोड़कर चला गया-दृष्टिके बाहर हो गया तब वह सिंहराज अत्यंत खेदको प्राप्त हुआ। सत्पुरुषोंका विरह किसके हृदयमें व्यथा नहीं उत्पन्न करदेता है ?।५२। मृगराजने अपने हृदयसे मुनिवियोगसे उत्पन्न हुए शोकके साथ साथ समस्त परिग्रहका दूर कर उनके निर्मल चरणोंके चिन्हसे पवित्र हुई शिलापर अनशन-भोजनादि त्याग सल्लेखनामरण धारण किया ॥ ५३ ॥ एक पसवाड़ेसे पड़कर जिसने पत्थर शिलाके ऊपर अपने शरीरको रख रक्खा है ऐसा वह मृगेन्द्र दंडकी तरह बिल्कुल चलायमान न हुआ। मुनियोंके गुणगणोंकी भावनाओंमें आशक्त हुआ। उसकी लेश्यायें प्रतिसमय-उत्तरोत्तर

अधिक अधिक शुद्ध होने लगीं ॥ ५४ ॥ अत्यंत गरम हवाके लगनेसे जो सूख गया था तथा सूर्यकी किरणोंकी ज्वालाओंके संतापसे जो सब तरफसे जलने लगा था उस शरीरने भी सिंहके मनमें कोई व्यथा उत्पन्न न की। ठीक ही है—जो धीर होते हैं वे ऐसे ही होते हैं ॥ ५५ ॥ अग्नि समान मुखवाले डांस और मक्खियोंके झुंडोंके द्वारा तथा मच्छरोंके द्वारा मर्म स्थानोंमें काटे जानेपर भी कंप—हलना चलना आदि क्रियाओंसे रहित सिंहने मनसे प्रशम और संवरमें दूना दूना अनुराग धारण किया ॥ ५६ ॥ यह मरा हुआ सिंह है इस शंकासे मदसे अंधे हुए गजराजोंने जिसकी सटाओंको नष्ट कर दिया है ऐसे उस मृगेन्द्रने हृदयमें अत्यंत तितिक्षा—सहनशीलता धारण करली। मुमुक्षु—मोक्ष होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको ज्ञान प्राप्त करनेका श्रेष्ठ फल यही है ॥ ५७ ॥ छोड़ा है शरीरको जिसने ऐसा वह हरिणोंका शत्रु क्षणके लिये भी भूख या प्यासे विवश न हुआ। धैर्यके कवचसे युक्त धीर मनुष्यकी एक प्रशम रति ही क्या सुखरूप नहीं होती है ? ॥ ५८ ॥ अंतरंगमें रहनेवाले कषायोंके साथ साथ बाहरके शरीरके अंगोंसे भी वह प्रतिदिन कृश होने लगा। मानों हृदयमें विराजमान जिनेन्द्र देवकी भक्तिके भारसे ही उसने प्रमादको बिल्कुल शिथिल कर दिया ॥ ५९ ॥ प्रशम शांतिकी गुहाके भीतर रहनेवाले उस सिंहको रात्रियोंमें प्रचण्ड शीतल पवन बाधा न देसका। सो ठीक ही है—निरलस और अति कठोर संचारवाले जीवको शीत थोड़ीसी भी बाधा नहीं देसकता ॥ ६० ॥ मरा हुआ समझकर रात्रिके समय उसको लोमड़ी और शृगाल तीक्ष्ण नखोंके द्वारा नोंच नोंच कर खाने लगे तो भी उसने

अपनी उस परम समाधिको नहीं छोड़ा। जो क्षमावान् है वह विपत्तिग्रस्त होने पर भी मोहित नहीं हुआ करता ॥ ६१ ॥ चंद्रमाकी किरण समान धवल वह पूज्य या प्रशस्त मृगराज प्रशममें हृदयको लगाकर सूर्यके किरणजालके तापके योगसे प्रतिदिन दिन पर दिन बर्फके गोलेकी तरह विलीन हो गया ॥ ६२ ॥ जिन शासनमें लगी हुई है बुद्धि जिसकी तथा संसारके भयोंसे व्याकुल हुए उस सिंहने पूर्वोक्त रीतिसे एक महिना तक अचल क्रियाके द्वारा—निश्चल रहकर अनशन धारण कर पापों और प्राणोंसे शरीरको छोड़ा ॥ ६३ ॥ उसी समय धर्मके फलसे सौधर्मस्वर्गमें जाकर व मनोहर विमानमें मनोहर शरीरको धारण करनेवाला हरिध्वज नामका प्रसिद्ध देव हुआ। सो ठीक ही है—सम्यक्त्वकी शुद्धि किनको सुख देनेवाली नहीं होती ॥ ६४ ॥ खूब जोरसे 'जय जय' ऐसा शब्द करनेवाले और आनंदसूचक बाजोंमें कुशल—आनंदवाद्योंके बजानेवाले परिवारोंके देवोंके द्वारा तथा मंगलवस्तुओंको जिनने धारण कर रक्खा है ऐसी देवाङ्गनाओंके द्वारा उठाया हुआ वह धीर इस तरह विचार करने लगा कि मैं कौन हूं और यह क्या है ॥ ६५ ॥ उसी समय अवधिज्ञानके द्वारा अपने समस्त वृत्तांतको जानकर हर्षसे पूर्ण है चित्तवृत्ति जिसकी ऐसा वह देव स्वर्गसे परिवारके देव और देवियोंके साथ साथ उस मुनि-युगलके निकट आकर और उनकी सुवर्ण कमलोंसे पूजा करके वार वार प्रणाम कर इस तरह बोला ॥ ६६ ॥

हितोपदेशरूपी बड़ी भारी वर्त (मोटी रस्सी) के द्वारा अच्छी तरह बांध कर पापरूप कूआमेंसे आपने जिसका उद्धार किया था

वह सिंह मैं ही हूं। मैं इन्द्रसमान सुखकर हूं। संसारमें साधुओंके वाक्य किसकी उन्नति नहीं करते हैं ॥ ६७ ॥ जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था उसी इस सम्यक्त्वको आपके प्रसादसे यथावत् पाकर मैं तीन लोकके चूड़ामणिके मुकुटपनेको प्राप्त होगया हूं। अतएव मैं निवृत्त—मुक्त—कृतकृत्य होचुका हूं ॥ ६८ ॥ वृद्धावस्था ही जिसकी लहरें हैं, जन्म ही जिसका जल है, मृत्यु ही जिसमें मकर है, महामोह ही जिसमें आवर्त-भ्रमर है, रोग समूहके फनोंसे जो चितकबरा बन गया है। उस संसारसमुद्रको आपके निर्मल वाक्यरूप जहाजको प्राप्त करनेवाला मैं शीघ्र ही तर गया हूं। अब इसमें कुछ भवोंका तट—किनारा बाकी रह गया है ॥ ६९ ॥ वह देव इस तरह कह कर, और बार बार उन दोनों मुनियोंकी पूजा कर, संसृति—संसार—दुनियांरूपी पिशाची—चुड़ेलसे रक्षा करनेवाली मानो भस्म ही हो ऐसी उन मुनियोंके चरणोंकी धूलिको मस्तकपर अच्छी तरह लगाकर अपने स्थानको गया ॥ ७० ॥ हारयष्टिके द्वारा शरद् ऋतुके नक्षत्रपति—चन्द्रमाकी किरणोंकी श्री—शोभा जिसके मुख पर पाई जाती है, जिसके हृदयके भीतर सम्यक्त्वरूप संपत्ति रक्खी हुई है ऐसा वह देव देवोंके अभीष्ट सुखको भोगता हुआ, प्रमादरहित होकर जिनपतिके चरणोंकी पूजा करता हुआ वहां रहता हुआ ॥ ७१ ॥

इस प्रकार अशग कविकृत वर्धमान चरित्रमें 'सिंह प्रायोपगमन' नामक ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

बारहवां सर्ग ।

दूसरे द्वीप-धातकी खंडमें पूर्व मेरुकी पूर्व दिशामें सीता नदीके उत्तर तटके एक भागमें बसा हुआ कुरुभूमि कुरुक्षेत्रके समान प्रसिद्ध कच्छ नामका एक देश है ॥ १ ॥ इस देशमें विद्याधरोंका निवास-स्थान और अपने तेजसे दूसरे पर्वतोंको जीतनेवाला रौप्य—विजयार्ध पर्वत है। यह बड़े योजनोंसे पच्चीस योजन ऊंचा और सौ योजन तिरछा—चौड़ा है ॥ २ ॥ कहनेमें नहीं आसके ऐसी सुंदर रूप-संपत्तिको धारण करनेवाले विद्याधरोंका मैं निवासस्थान हूं इस मदसे अवलिप्त जो पर्वत अपने अग्रभागोंसे मेघोंका स्पर्श करनेवाले काश समान शुभ्र महान् शिखरोंके द्वारा मानों स्वर्गकी हंसी कर रहा है ॥ ३ ॥ धुली हुई—जिनका पानी उतर गया है ऐसी तलवारकी किरणोंकी रेखाओंके समान जिनका समस्त शरीर काला पड़ गया है ऐसी अभिसारिकायें जहां पर दिनमें इधर उधर आकाशमें घूमती हैं। उस समय वे ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों मूर्तिमती रात्रि ही हों ॥ ४ ॥ उसके शिखरका भाग बहुत रमणीय है तो भी देवाङ्ग-नायें वहां बिल्कुल विहार नहीं करती। क्योंकि विद्याधरियोंकी अनन्यसाम्य—कोई भी जिसकी समानताको धारण नहीं कर सकता ऐसी कांतिको देखकर वे वहां अत्यंत लज्जित हो जाती हैं ॥५॥ जहां पर रमणियां विद्याओंके महान् प्रतापसे अपने अपने शरीरोंको छिपा लेती हैं—अदृश्य हो जाती हैं। परंतु उनके श्वासकी वायुकी गंधसे आई हुई—वहां उड़ती हुई भ्रमरपंक्ति अतिगूढ़—धोखेमें पड़े हुए उनके पतियोंको जाहिर कर देती है—यह सूचित कर देती है.

कि यहां पर तुम्हारी स्त्रियां हैं ॥ ६ ॥ किनारोंपर लगे हुए मुक्ता-पाषाणोंकी स्निग्ध दीप्तिरूप ज्योत्स्नासे कमल-समूह हास रहता है। अतएव दिनमें भी सदा ही कमलोंकी विकाशसंपत्ति कभी कम नहीं होती। भावार्थ—वे कमल यद्यपि चंद्रविकाशी हैं तो भी उनकी शोभा दिनमें भी नष्ट नहीं होतो। क्योंकि सरोवरोंके किनारोंपर जो पाषाण लगे हैं उनकी कांति उनपर पड़ा करती है जिससे वे दिनमें भी खिले हुए ही मालूम पड़ते हैं। अतएव उनकी शोभा कभी नष्ट नहीं होती ॥ ७ ॥ कुंदपुष्पके समान धवल अपनी किरणोंसे अंधियारी रात्रिको चारो तरफसे हठाता हुआ ऐसा मालूम पड़ता है मानों कृष्णपक्षकी रात्रियोंके ऊपर अपूर्व ज्योत्स्ना-चांदनीको ही फैला रहा है अर्थात् मानों कृष्णपक्षकी रात्रियोंको शुक्लपक्षकी रात्रि बना रहा है। ८॥ उस पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें हेमपुर नामका एक नगर है। वह दूसरे सब नगरोंमें प्रधान और मन्दिरोंसे भूषित है। नगरका "हेमपुर" यह नाम अन्वर्थ है—जैसा नाम है वैसा ही उसमें गुण पाया जाता है। क्योंकि नगरके कोट महल और अट्टालिकायें आदि सब सुवर्णके बने हुए थे ॥ ९ ॥ इस नगरमें स्वाभाविक निर्मलता गुणके धारणकरनेवालोंमें रत्न पाषाण ही ऐसे थे कि जिनमें अत्यंत खरत्व (कठोरता) पाया जाता था। कलावानों (गाने बजाने आदिकी कला, दूसरे पक्षमें चंद्रमाकी कल—अंश) में या पक्षवलों (जाति, कुल, समाज, देश आदिका पक्ष; दूसरे पक्षमें शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष) में केवल चंद्रमा ही ऐसा था जोकि अंतरङ्गमें मलीनता धारण करता था ॥ १० ॥ वहां पर त्याग (दान) करनेवाले सदा विरूप (कुरूप श्लेषसे; दूसरा अर्थ

प्रसन्नचित्त) रहते थे। बुधों—विद्वानोंका कुल अत्यंत अप्रमाण (अ-विश्वस्त, श्लेषसे दूसरा अर्थ अगणित) था। अनिष्ट (दूसरा अर्थ-इच्छा—लोभ—रागद्वेषसे रहित) कोई थे तो यति ही थे। परलोक—भीरु (दूसरे लोकोंसे या परराष्ट्रसे डरनेवाला; दूसरा अर्थ परभवों—नरकादि पर्यायोंसे डरनेवाला) कोई था तो वह योगक्रियाओंमें दक्ष कुशल था॥ ११॥ इस नगरकी रमणियोंके मुखकमलोंपर भ्रमरोंकी पंक्ति उनके श्वासके—श्वासमें जो सुगंधि है उसके लोभसे पड़ने लगती है। जब स्त्रियां उनको—भ्रमरोंको अपने हाथोंसे उड़ाने लगती हैं तब वे अपने मनमें "ये तो लाल कमल हैं" ऐसी शंका करके हर्षित होकर उनके हाथोंकी तरफ भी झपटने लगते हैं॥ १२॥

इस नगरका रक्षक जिसने प्रजाका पालन करनेमें कीर्ति प्राप्त की है ऐसा धीर विनीत (विनयस्वभाववाला) और नीतिवेत्ताओं तथा सत्पुरुषोंका अग्रणीय कनकाभ नामका राजा था॥ १३॥ "अत्यंत चंचला मुझको भी इसकी तीक्ष्णधार कहीं काट न डाले" इसी भयसे मानों विजय—लक्ष्मी उस राजके शरदृतुके आकाशके समान श्याम रुचि—कान्तिवाले खड्गमें निश्चल हो कर रहने लगी॥ १४॥ शूरताकी निधि यह राजा युद्धमें भयसे म्लान हुए पुरुषोंके मुखोंको नहीं देखता है यह समझकर ही मानों उसके प्रतापने शत्रुओंको सामनेसे हटा दिया था॥ १५॥ नित्य उदय-वाला, भूमिभृतों (राजाओं; दूसरे पक्षमें पर्वतोंके) शिरपर जिसने अपने पाद (चरण; दूसरे पक्षमें किरण) रख रक्खे हैं, कमला-लक्ष्मीका अद्वितीय स्वामी, इस प्रकार यह राजा तिग्मरश्मि

सूर्यके समान था तो भी पृथ्वीको अतिग्म जो प्रखर—कठोर न हों ऐसे करोंसे आल्हादित करता था ॥ १६ ॥ अनल्प—महान् शीलके आभरण ही जिसके अद्वितीय भूषण हैं, जो रमणीयताके विश्राम करनेकी भूमि है, जिसने प्रसिद्ध वंशमें जन्म लिया है ऐसी कनकमाला नामकी उस राजाकी रानी थी ॥१७॥

अनल्प—महान् कांति—द्युति तथा सत्त्व गुणसे युक्त वह हरिध्वज देव सौधर्म स्वर्गसे उतर कर उन दोनों पिता माताको हर्ष उत्पन्न करता हुआ कनकध्वज नामका पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ जिस समय वह गर्भमें था उसी समय उसने माताके दौहृद—दोहलाके आयास—पूर्ण करनेके ब्याजसे जिनेन्द्र देवकी पूजाओंको निरंतर कराया। इससे ऐसा मालूम पड़ता था मानों वह बालक अपनी सम्यक्त्व शुद्धिको ही प्रकट कर रहा है ॥ १९ ॥ जिसके उत्पन्न होते ही प्रतिदिन—दिनपर दिन कुलश्री इस तरह बढ़ने लगी जिस तरह चंद्रमाका उदय होते ही समुद्रकी वेला या वसंतऋतुके निकटवर्ती होनेपर आम्रवृक्षोंकी पुष्पसंपत्ति ॥ २० ॥ मनोहर मूर्तिके धारक कनकध्वजकी स्वाभाविक विशुद्ध बुद्धिके द्वारा एक साथ जिनका अवगाहन अभ्यास किया गया है ऐसी चारो राजविद्यायें और कीर्तिके द्वारा दिशायें सहसा विशिष्ट शोभाको प्राप्त हुईं ॥ २१ ॥ कनकध्वज यौवन—लक्ष्मीके निवास करनेका अद्वितीय कमल और महान् धैर्यका धारक था। इसका प्रभाव प्रसिद्ध था। अतएव इसने दूसरा कोई जिनको सिद्ध नहीं कर सके ऐसे शत्रुओंके षड्वर्गको और विद्वानोंके गण—समूहको अपने वशमें कर लिया था ॥ २२ ॥ इच्छानुसार—बिना किसी तरहकी बनावटके—स्वाभाविक

रीतिसे गमन करते हुए इस राजकुमारको देखकर नगरनिवासियोंके नेत्र अत्यंत निश्चल होजाते थे। वे उसके विषयमें ऐसी तर्कणा करने लगते थे कि 'क्या यह मूर्तिमान् कामदेव है?' या तीन लोकके रूप सौंदर्यकी अवधि है? ॥ २३ ॥ जिस तरह खंजनमें (!) फसकर अत्यंत दुर्बल गौ वहांसे चल नहीं सकती उसी तरह नगर निवासिनी सुंदरियोंकी नीलकमलकी श्री–शोभाके समान रुचिर–मनोज्ञ और सतृष्ण कटाक्ष संपत्ति उस कुमारके ऊपर पड़कर फिर हट नहीं सकती थी ॥ २४ ॥ जिस तरह चुम्बक लोहेकी चीजोंको खींच लेता है, ठीक ऐसा ही इस कुमारके विषयमें भी हुआ। विद्याधरोंकी कन्याओंके विषयमें यह निरादर था–यह उनको नहीं चाहता था। तो भी अपने विशिष्ट शरीरके द्वारा दीप्तियुक्त इसने उनके हृदयोंको अपनी तरफ खींच लिया ॥ २५ ॥ जिस तरह एक चोर छिद्रको पाकर भी जागते हुए धनिकसे दूर ही रहता है उसी तरह चढ़ा हुआ है धनुष जिसका ऐसा कामदेव अप्रमाण गंभीरता गुणके धारक इस कुमारके रन्ध्र का प्रतिपालन कर दूर ही रहता था। २६॥ पिताकी आज्ञानुसार स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसी कनकप्रभाके योग–सम्बन्धको पाकर–उससे विवाह करके प्रजाके संतापको दूर करनेवाला यह राजकुमार ऐसा मालूम पड़ता था मानों बिजली सहित नवीन मेघ हो ॥ २७ ॥ दोनों वर वधुओंने अपनी मनोज्ञताके द्वारा परस्परको बिलकुल अपने अपने वशमें कर लिया था। प्रिय वस्तुओंमें जो प्रेमरस उत्पन्न होता है वह चारुता–रमणीयताका प्रधान फल है ॥ २८ ॥ अनल्प–महान् खारीपनकी विशेष लक्ष्मी–शोभा या खारीपन और विशेष लक्ष्मीको धारण करनेवाली समु-

द्रकी दोनों वेलायें (तट) एक दूसरेको छोड़कर क्षण भर भी नहीं रह सकतीं। इसी तरह अनल्प लावण्य विशेष लक्ष्मी (सौंदर्यकी विशेष लक्ष्मी या सौंदर्य और विशेष लक्ष्मी) को धारण करनेवाले वे प्रसिद्ध वर वधू एक दूसरेको छोड़कर आधे निमेष तक भी नहीं ठहर सकते थे॥ २९॥ वह कुमार नन्दन वनके भीतर लतामण्डपमें नवीन पल्लवोंकी शय्या पर सुला कर कुपित हुई कान्ताको प्रसन्न करता था। जब उसके नीचेका ओष्ठ कुछ कंपने लगता—अर्थात् जब उसके मुखपर प्रसन्नताकी झलक आजाती या दीखजाती तब उसको रमाता था॥ ३०॥ अहा!—भक्ति युक्त है आत्मा जिसकी ऐसा कनकध्वज प्रियाके साथ वेगसे उत्पन्न हुई वायुके द्वारा अपनी तरफ खींच लिया है मेघको जिसने ऐसे विमानके द्वारा जाकर मंदर—मेरुकी शिखरों पर जो जिनमंदिर हैं उनकी माला आदिके द्वारा पूजा करता था॥ ३१॥

इस तरह कुछ दिन वीत जानेपर एक दिन संसारके निवाससे भयभीत और जीता है इन्द्रियोंका व्यापार जिसने ऐसे राजा कनकाभने उस कनकध्वज कुमारको राज्य देकर सुमति मुनिके निकट दीक्षा ग्रहण करली॥ ३२॥ दूसरोंके लिये अप्राप्य राज्य लक्ष्मीको पाकर भी उस धीर कनकध्वजने उद्धतता धारण न की। ऐसा ही लोकमें देखनेमें आता है कि जो महापुरुष हैं उनको बड़ी भारी भी विभूति विकृत नहीं कर सकती॥ ३३॥ बड़ी हुई है श्री जिसकी ऐसा यह राजा चंद्रमाकी किरण समान निर्मल अपने गुणोंके द्वारा प्रजाओं—प्रजाजनोंमें सदा अविनश्वर या निर्दोष अनुराग—प्रेमको उत्पन्न करता था। महापुरुषोंकी वृत्तिका रूप—स्वरूप अचिंत्य हुआ

करता है ॥३४॥ जो इसके अनुकूल थे उनके लिये तो प्रीतिसे वह चंदनके लेप समान सुखका कारण हुआ। और जो शत्रु थे उनको प्रतापयुक्त इसने दूर रहकर ही जिस तरह सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है, उसी तरह जला दिया—नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥

जिस तरह निर्मल कीर्ति प्रजामें अनुराग उत्पन्न करती है, अच्छी तरह प्रयुक्त निति अभीष्ट अर्थको उत्पन्न करती है, अथवा बुद्धि पदार्थ—ज्ञानको उत्पन्न करती है, इसी तरह उसकी इस प्रियाने हेमरथ नामके पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ प्रिय अंगनाओंके अत्युन्नत कुचोंके अग्रभागों—चुचुकोंके द्वारा छूट गई है वक्षःस्थलपर लगी हुई चंदन—श्री जिसकी ऐसा यह राजा पृथ्वीपर पांचो इन्द्रियोंके लिये इष्ट संसारके सारभूतसुखोंको पूर्वोक्त रीतिसे भोगता रहा ॥ ३७ ॥

इसी तरह कुछ दिनोंके बाद एक दिन विद्याधर राजाओंमें सिंहसमान यह राजा अपने हाथसे दिये हैं सुंदर भूषण जिसको ऐसी, मत्त चकोरके समान नेत्रवाली अथवा मत्त और चकोरके समान नेत्रवाली कांताको लेकर सुदर्शन नामक वनमें रमण करनेके लिये गया ॥ ३८ ॥ इसी वनके एक भागमें बाल अशोक वृक्षके नीचे खूब बड़ी पत्थरकी शिलापर मानों बालसूर्यकी शोभाको चुराने वाले रागरूपी मल्लको पटककर उसके ऊपर बैठे हों, इस तरहसे बैठे हुए अपने अंगोंसे कृश किंतु तपोंसे अकृश, प्रशमके स्थान, क्षमाके अद्वितीय पति, परिग्रहोंके वशमें न होनेवाले, इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले, उत्कृष्ट चारित्ररूप लक्ष्मीके निवास करनेके कमल, मानों आगमका सारभूत मूर्तिमान् अर्थ ही है, स्वयं दयाका साधुवाद

ही हो ऐसे शोभन व्रतोंके धारक सुव्रत नामक मुनिको भक्तियुक्त है आत्मा जिसकी ऐसे कनकध्वजने दूरसे देखा ॥ ३९-४१ ॥ खजानेको पाकर दरिद्रकी तरह अथवा दोनों नेत्रोंको पाकर जन्मान्धकी तरह मुनिको देखकर राजा भी शरीरमें नहीं समा सकनेवाले हर्षसे विवश हो गया ॥ ४२ ॥ सब तरफसे सम्पूर्ण शरीरके हर्षित हुए रोमों-रोमांचोंके द्वारा जिसने अपने अंतःकरणके अनुरागको सूचित कर दिया है ऐसे राजाने अपने हाथोंको मुकुलित कमलके समान बनाकर धरतीपर लग गया है चूड़ामणि रत्न जिसका ऐसे शिरके द्वारा-शिरको नवाकर मुनिकी वंदना की ॥ ४३ ॥ मुनिने उस राजाका पापोंका छेदन करनेवाली शांत दृष्टिके द्वारा तथा कर्मोंका क्षय करनेवाले आशीर्वचनके द्वारा अत्यंत अनुग्रह किया । जो मुमुक्षु हैं-जिनकी मोक्ष होनेकी इच्छा रहती है उनकी भी बुद्धि भव्योंके विषयमें निःस्पृह नहीं रहती ॥ ४४ ॥

उन मुनिके निकटमें सम्मुख खड़े होकर निर्दोष है स्वभाव जिसका ऐसे विद्याधरोंके स्वामी-कनकध्वजने भक्तिसे विनयपूर्वक उदार धर्मके धारक मुनिसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥ ४५ ॥ राजाके पूछने पर वे मुनि दर्शनमोहनीय कर्मके वश हुए मिथ्या दृष्टियोंको भी हठात् आल्हादित करते हुए इस तरहके विकार रहित कल्याणकारी वचन बोले ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञानके धारक जिनेन्द्र देवने जो उत्कृष्ट धर्म बताया है उसका मूल एक जीवदया है । यह प्रसिद्ध धर्म स्वर्ग और मोक्षके महान् सुखका कारण है । इसके दो भेद हैं-सागारिक और अनागारिक । सागारिकको अणुव्रत कहते हैं और अनागारिक

महाव्रत नामसे प्रसिद्ध है । पहला भेद गृहस्थोंके लिये पालनीय है और दूसरा भेद सर्वथा त्यागी मुनियोंके द्वारा पालनीय है ॥ ४७—४८ ॥ हे भद्र ! समस्त वस्तुओंके जाननेवाले जिनेन्द्र देव सम्यग्दर्शनको इन दोनों भेदोंका मूल बताते हैं । अर्थात् सम्यग्दर्शनके बिना वास्तवमें धर्म नहीं हो सकता । सातो तत्वोंमें निश्चय करके जो एक—अद्वितीय दृढ़ श्रद्धान करना इसको सम्यग्दर्शन समझ ॥ ४९ ॥ हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापोंके सर्वात्मना त्यागको यतियोंका व्रत—महाव्रत कहते हैं, और इन्ही पापोंकी स्थूल निवृत्तिको गृहस्थोंका व्रत कहा है ॥ ५० ॥ अनादि सांसारिक विचित्र दुःखोंके महान् दावानलको नष्ट करने लिये इसके सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है । अत एव पुरुषको इस विषयमें प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५१ ॥ मिथ्यात्व (अतत्त्वश्रद्धान), योग (मन, वचन, कायके द्वारा आत्माका सकंप होना), अविरति (असंयम), प्रमाद (असावधानता) तथा अनेक प्रकारके कषाय-दोषोंसे यह आत्मा सदा आठ प्रकारके कर्मोंका बंध करता है । यह कर्म ही संसारमें निवास करनेका हेतु है ॥ ५२ ॥ यह कर्मवन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप इनके द्वारा मूलमेंसे उखाड़ दिया जाता है । जो पुरुष इन पर स्थित रहता है—इनको धारण करता है अत्यंत उत्सुक हुई स्त्रीके समान मुक्ति उसके पास आकर प्राप्त होती है ॥ ५३ ॥ अपनेको और परको उपताप देनेवाले इन्द्रियोंके विषयोंको सुख समझ कर अज्ञान-मिथ्या ज्ञानसे मूढ़ हुआ जीव सेवन करता है । किंतु जो अपनी आत्माके स्वरूपको जाननेवाला है वह अत्यंत पाप और दृष्टिविष

(जिसके देखनेसे जहर चढ़ जाय) सर्पोंके समान इनसे संबंध करनेसे डरता है ॥ ५४ ॥ शरीरधारियोंको जन्मके सिवाय दूसरा कोई बड़ा दुःख नहीं, मृत्युके समान कोई भय नहीं, वृद्धावस्थाके समान कोई बड़ा भारी कष्ट नहीं, यह समझ कर जो सत्पुरुष हैं वे आत्माके हितमें ही लगते हैं ॥ ५५ ॥ अनादि कालसे संसार-समुद्रमें भ्रमण करते हुए जीवको समस्त जीव और पुद्गल प्रिय और अप्रिय भावको प्राप्त हो चुके हैं। क्योंकि कर्म और नोकर्मरूपसे ग्रहणकरनेके उपयोगमें वे आचुके हैं ॥ ५६ ॥ इन समस्त तीन लोकमें कोई ऐसा प्रदेश नहीं है जहां पर यह जीव अनेकबार न मरा हो न जन्मा हो। इस जीवने सभी भावोंका बहुतसी बार अनुभव किया है और समस्त कर्म-प्रकृतियोंका भी अनुभव किया है ॥ ५७ ॥ ज्ञानके द्वारा विशुद्ध है दृष्टि-दर्शन जिनका ऐसा जीव इस बातको अच्छी तरह जानता हुआ किसी भी प्रकारके परिग्रहमें आशक्त नहीं होता। और उन सम्पूर्ण परिग्रहोंको छोड़ कर तपके द्वारा कर्मोंको मूलमेंसे उन्मूलित कर सिद्धि-मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ कनकध्वजके हितके लिये ऐसे वचन कह कर वे वचस्वी-वचन बोलनेमें कुशल साधु चुप होगये। राजाने भी उनके बचनोंको वैसा ही माना-वचनोंपर यथार्थ श्रद्धा की। जो भव्य होता है वह मुमुक्षुओंके वाक्योंपर श्रद्धान कर लेता है ॥ ५९ ॥

संसारकी वृत्तिको कष्ट-दुःखरूप समझकर और विषयोंकी अभिलाषाओंसे चित्तको हटाकर राजाने विधिपूर्वक तप करनेकी इच्छा की। पुरुषके शास्त्राभ्यास करनेका सार यही है ॥ ६० ॥ राज-लक्ष्मीके साथ नेत्रजल-आंसुओंसे भीग कर जिसका दुपट्टा गीला हो

गया है ऐसी अपनी कांताको छोड़कर उसी समय उन मुनिके निकट तपोधन—साधु होगया। जो महापुरुष हैं वे हितकर कामके सिद्ध करनेमें समय नहीं गमाते हैं ॥ ६१ ॥ प्रमादको दूर छोड़कर आवश्यक क्रियाओंमें प्रकट रूपसे प्रवृत्त हुआ। और गुरुकी आज्ञाको पाकर साधुओंके समस्त उत्तर गुणोंको सदा पालने लगा ॥ ६२ ॥ ग्रीष्मऋतुमें जहां पर तीव्र गरमीसे समस्त प्राणी व्याकुल हो उठते हैं पर्वतके उस शिखरके ऊपर प्रखर किरणवाले सूर्यके सम्मुख मुख करके प्रशमरूप छत्रके द्वारा दूर की गई है उष्णता जिसकी ऐसा वह साधु महान् प्रतिमायोगको धारण कर सदा खड़ा रहता था ॥ ६३ ॥ वर्षाऋतुमें वे मुनि जो कि वज्रकणोंका उद्गिरण करनेवाले तथा उग्रनाद करनेवाले और जलधाराको छोड़कर उसके द्वारा आठो दिशाओंको स्थगित करनेवाले सघन मेघोंके कारण बिजलीके चमक जानेसे देखनेमें आते थे, वृक्षोंके मूलमें निवास करते थे ॥ ६४ ॥ माघके महीनेमें—शीतऋतुमें जब कि बर्फके पड़नेसे पद्मखंड क्षत हो जाते हैं बाहर—जंगलमें रात्रियोंको जब कि हवा चल रही है वे धीर मुनि धैर्यरूप कंबलके बलसे एक करवटसे पड़कर श्रमको दूर करते थे ॥ ६५ ॥ आगमोक्त विधिके अनुसार विचित्र विचित्र प्रकारके समस्त महा उपवासोंको करनेवाले उस मुनिका शरीर ही कृष हुआ किंतु उदारताके धारक उसका धैर्य बिल्कुल भी कृष नहीं हुआ ॥ ६६ ॥ इस संसाररूप दलदलमें फसे हुए आत्माका उद्धार किस तरह करूंगा यह विचार करता हुआ वह इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला योगी दुष्ट योगों—मन, वचन, कायकी प्रवृत्तियोंके द्वारा प्रमादको प्राप्त न हुआ ॥ ६७ ॥ दूर होगई है शंका जिसकी—निःशंकित अंगका पालक,

तथा जिसने कांक्षाओंको दूर कर दिया है—निकांक्षित अंगका पालक, जिसने अपनी आत्माको विचिकित्साओंसे हटा दिया है—निर्विचिकित्सा अंगका पालक, तथा निर्दोष हैं परिणाम जिसके ऐसा यह मुनि आगमोक्त मार्गोके द्वारा सम्यक्त्वशुद्धिकी भावना करता था ॥६८॥ भक्तियुक्त है आत्मा जिसकी ऐसा वह योगी प्रतिदिन यथोक्त क्रियाओंके द्वारा उत्कृष्ट ज्ञानका और अपने बल-शक्तिके अनुरूप चारित्रका तथा बारह प्रकारके तपका पालन करता था ॥ ६९ ॥ इस प्रकार चिरकाल तक विधुररहित चित्तवृत्तिके द्वारा प्रशमयुक्त मुनियोंके अग्रपदको धारण कर अपनी आयुके अंतमें विधिपूर्वक सल्लेखना व्रतको धारण कर मरण किया। यहांसे कापिष्ठ—आठवें स्वर्गमें जाकर शुभविमानमें वह विभूतिके द्वारा शोभाको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ अपने शरीरकी कांतिकी संपत्तिसे देवोंको आनंद बढ़ाता हुआ तथा इसी प्रकार 'देवानंद' इस अनुपम नामको अन्वर्थ—सार्थक बनाता हुआ बारह सागरकी है आयु जिसकी ऐसा वह सुभग वहां पर दिव्य अंगनाओंको राग—प्रेम उत्पन्न करता था। और स्वयं हृदयमें वीतराग जिन भगवानको धारण करता था ॥७१॥

इस प्रकार असग कविकृत वर्धमान चरित्रमें 'कनकध्वज कापिष्ठ गमन' नामक बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

तेरहवां सर्ग ।

श्रीमान् और सत्पुरुष जहां निवास करते हैं ऐसा इसी भरतक्षेत्रमें अवंती नामका विस्तृत देश है। जो ऐसा मालूम पड़ता है मानों मनुष्योंके पुण्यसे स्वयं स्वर्गलोक पृथ्वीपर उतर आया है

॥ १ ॥ इस देशमें ऐसी कोई जगह नहीं थी जहां धान्य न हो, ऐसा कोई धान्य न था जो पाककी कांति—शोभासे रहित हो, ऐसी कोई पाकसंपत्ति न थी जिसपर पुलाक न हो—जिसके ऊपरकी भुसी तुच्छ—पतली न हो। क्योंकि यह देश सदा ही रमणीयतासे युक्त रहता था ॥ २ ॥ यहां पर ऐसा कोई मनुष्य न था जो विपुल और सारभूत धनधान्यसे रहित हो। ऐसा कोई द्रव्य भी नहीं था कि जो प्रणयी पुरुषोंके द्वारा अपनी इच्छानुसार अच्छी तरह अनुपभुक्त न होता हो भावार्थ, उपभोग करके भी जो बाकी न बचता हो ऐसा कोई द्रव्य न था ॥३॥ ऐसी कोई पुरन्ध्री—रमणी न थी जो रमणीयतासे रहित हो। ऐसी कोई रमणीयता-सुंदरता न थी कि जिसमें सुभगता न पाई जाय। ऐसी कोई सुभगता न थी जो शीलरहित हो, ऐसा कोई शील भी नहीं था कि जो पृथ्वीपर प्रसिद्ध न हो ॥४॥ ऐसी कोई नदी नहीं थी जो जलरहित हो। ऐसा कोई जल न था जो स्वादुरहित और शीतल न हो, तथा जहांके पिये हुए जलकी प्रशंसा पथिकोंके समूहसे नियमसे न सुनी हो ॥ ५ ॥ ऐसा कोई वृक्ष न था कि जो पुष्पोंकी शोभासे रहित हो। ऐसा कोई पुष्प न था जो अतुल सुगंधिसे खाली हो। ऐसी कोई सुगंधि न थी जो भ्रमरोंकी पंक्तिको ठहरानेमें बिल्कुल अक्षम—असमर्थ न हो ॥ ६ ॥

इसी देशमें अपनी कांतिके द्वारा जिसने दूसरे नगरोंकी आ-

---

१ शरीरकी वास्तवमें सुडौलता। २ ऐसा शरीर कि जो दूसरेको देखनेमें अच्छा लगे। क्योंकि कोई २ शरीर वास्तवमें सुडौल सुंदर होनेपर भी देखनेवालेको प्रिय नहीं मालूम होता।

श्चर्य उत्पन्न करनेवाली संपत्तिको जीत लिया है ऐसी प्रसिद्ध उज्जयनी नामकी नगरी है । जो ऐसी मालूम पड़ती है मानों समस्त उज्ज्वल वर्णोकी श्रीसे युक्त आकृति ही है ॥ ७ ॥ उज्ज्वल भूषणोंको धारण करनेवाली रमणियां जिनके ऊपर खड़ी हुई हैं ऐसे सुधा—चूना—कलईसे धवल हुए उत्कृष्ट महलोंसे यह नगरी ऐसी मालूम पड़ती मानों जिसमें बिजली चमक रही हो ऐसे शरद ऋतुके धवल मेघोंसे व्याप्त मेघ—पदवी ही हो ॥८॥ ध्वजाओंके वस्त्रोंसे अत्यंत विरल हो गई है आतपलक्ष्मी जिसकी ऐसा स्थगित हुआ सूर्य वहांपर ऐसा दीखता है मानों सुवर्णमय कोटमें लगे हुए निर्मल रत्नोंकी प्रभाओं—किरणोंके पटलसे जीत लिया गया हो ॥ ९ ॥ जहांपर किया है अपराध जिसने ऐसा प्रियतम और श्वासकी सुगंधके वश हुआ भ्रमर बार बार हाथोंके अग्रभागोंसे ताड़ित होनेपर प्रमदाओंके सामनेसे हटता नहीं है ॥ १० ॥ इस नगरीमें रहनेवाले धनिक पुरुष चारो तरफसे आकर उत्कृष्ट रत्नोंके समूहको स्वयं प्राप्त करते हुए अर्थियों—याचकोंके द्वारा कुबेरके आपदों—नागोंकी संपत्तिको भी लज्जित कर देते हैं ॥ ११ ॥ इस नगरीकी श्री या नगरी भुजंगोंसे वेष्टित थी इसलिये ऐसी मालूम पड़ती थी मानों बाल चंदनवृक्षकी लता हो । इसपर भी वह अत्यन्त रमणीय और सदा विबुधों (पंडितों, दूसरे पक्षमें देवों) के समूहसे भरी रहती थी इसलिये ऐसी मालूम पड़ती थी मानों स्वर्गपुरी ही है ॥ १२ ॥

सब नगरोंमें सिद्ध—प्रसिद्ध इस नगरीमें ' **वज्रसेन** ' यह प्रसिद्ध है नाम जिसका ऐसा राजा निवास करता था । इसका शा-

शरीर वज्रका सारभूत—उत्कृष्ट संहननका धारक था। वज्रायुध—इन्द्र-के समान इसका हाथ भी वज्रसे भूषित रहता था ॥ १३ ॥ जिसके हृदयमें निरंतर निवास करनेवाली लक्ष्मीको देखकर और निरंतर ही जिनके मुखमें रही हुई श्रुतदेवीको देखकर मानों कोप करके ही उस राजाकी कुंद पुष्पके समान धवल कीर्ति दिशाओंमें ऐसी गई जो फिर लौटी ही नहीं ॥ १४ ॥ जिसका हृदय युद्धकी अभि-लाषाओंके वश हो रहा था ऐसा यह राजा कभी भी युद्धको न देखकर अपने उग्र प्रतापके प्रसारकी बड़ी निंदा करता था जिसने कि दूरसे ही समस्त शत्रुओंको नम्र बना दिया ॥ १५ ॥

निर्भर—निर्दोष है कर (टेक्स; दूसरे पक्षमें किरण समूह) जिसका ऐसे इस राजाकी कमनीय और अभिन्न सुशीला नामकी महिषी थी। जो ऐसी मालूम पड़ती थी मानों कमलवनके बंधु—चंद्रमाकी चांदनी हो ॥ १६ ॥ पृथ्वीमें दूसरा कोई भी जिनके समान नहीं ऐसे वे दम्पति—स्त्री पुरुष परस्परको—एक दूसरेको पाकर रहने लगे। वे दोनों ही ऐसे मालूम पड़ते थे मानों सर्व लोकके नेत्रको आनंदित करनेवाले मूर्तिमान् कांति और यौवन ये दो गुण हैं ॥ १७ ॥ वह—पूर्वोक्त देव स्वर्गके सुख भोग कर अंतमें पृथ्वीपर इन दोनों श्रीमानोंके यहां सत्पुरुषोंका अधिपति अग्रणीय धीरबुद्धि और अत्यंत मनोज्ञ हरिषेण नामका पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ अपनी देवी—रानीके साथ साथ अत्यंत स्पृहा करता हुआ राजा नवीन उठे हुए—(उत्पन्न हुए; दूसरे पक्षमें उदय हुए) कलाधर—चंद्रमाकी तरह किसको प्रीतिका कारण नहीं होता है ? ॥ १९ ॥ लोक—जीव-पुर स्थितिसे युक्त तथा अनंदितसत्व

(जिसका सत्त्व-पराक्रम अनंदित है; दूसरे पक्षमें अनंदित है सत्त्व-प्राणी जिसमें अथवा सारभूत रत्नादिक जिसमें) बहुतसे सारभूत गुणोंके एक-अद्वितीय समुद्रके समान इस पुत्रको राजविद्याएं नदियोंकी तरह स्वयं आ आकर प्राप्त हुईं ॥ २० ॥

इसी तरह कुछ दिन बीत जानेपर एक दिन पुत्र सहित राजा वज्रसेनने श्रुतसागर नामके मुख्य मुनि—आचार्यसे धर्मका स्वरूप सुना। जिससे वह विषयोंमें बिलकुल निःस्पृह हो गया ॥ २१ ॥ पृथ्वीतलका जो भार था उसके ऊपर आंसुओंकी कणिकाओंसे व्याप्त हो गये हैं नेत्र जिसके ऐसे पुत्रको नियुक्त कर राजा उन मुनि महाराजके निकटमें मुनि हो गया। जगत्‌में जो भव्य होता है वह संसारसे डरा करता है ॥ २२ ॥ पूर्वजन्ममें जिसका अभ्यास किया था उस सम्यग्दर्शनके द्वारा निमग्न हो गया है चित्त जिसका ऐसे हरिषेणने श्रावकोंके सम्पूर्ण व्रतों—बारह व्रतोंको धारण किया। श्रीमानोंका अविनय बहुत दूर रहता है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार सरोवरमें रहते हुए भी कमल कीचके लेशसे भी लिप्त नहीं होता है उसी तरह पापके निमित्तभूत राज्यपर स्थित रहते हुए भी उससे पापने स्पर्श न किया। क्योंकि उसकी प्रकृति शुचि—पवित्र और संग (मूर्छा-ममत्वपरिणाम; दूसरे पक्षमें जलका संसर्ग) से रहित थी ॥२४॥ चारों समुद्रोंका तट जिसकी मेखला है ऐसी वसुमती—पृथ्वीका शासन करते हुए भी इस राजाकी बुद्धि यह आश्चर्य है कि प्रतिदिन समस्त विषयोंमें निस्पृह रहती थी ॥ २५ ॥ यौवन—लक्ष्मीके धारण करते हुए भी उसने नियमसे शांत वृत्तिको नहीं छोड़ा जगत्‌में जिसकी बुद्धि कल्याणकी तरफ

लगी हुई है वह तरुण भी क्या प्रशांत नहीं हो जाता है ? ॥२६॥ योगस्थान—साम दान आदिके जाननेवाले मंत्रियोंसे वेष्टित रहते हुए भी वह उग्र नहीं हुआ। सर्पके मुखमें जो विष रहता है उसकी अग्निसे युक्त रहते हुए भी चन्दन क्या अपनी शीतलताको छोड़ देता है ? ॥ २७ ॥ उसने कुलस्त्रीका ग्रहण कर रक्खा था तो भी नीतिमार्गका समुद्र वह राजा कामदेवके वश नहीं हुआ था। कामदेवस्वरूप स्त्रीके रहते हुए भी जिसके मनमें राग नहीं आता है वही धीर है ॥ २८ ॥ यह राजा तीनोंकाल (प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल) गंध, माला, बलि—नैवेद्य, धूप, वितान—चंदोवा या समस्त वस्तुओंके विस्तारमें भक्तिसे शुद्ध हुए हृदयसे जिनेन्द्रदेवकी पूजन करके वंदना करता था। गृहवासमें रत रहनेवालोंका फल यही है ॥ २९ ॥ आकाशमें लगी हुई हैं पताका जिसकी और सुंदर वर्णवाली सुध—कलईसे अच्छी तरह पुती हुई ऐसी इसकी बनवाई हुई जिनमंदिरोंकी पंक्ति ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों उसकी मूर्तिमती पुण्य—संपत्ति हो ॥ ३० ॥ जिसका हृदय प्रशमके द्वारा सदा भूषित रहता था ऐसे इस नीतिके जानने वाले राजा हरिषेणने मित्रोंके साथ साथ अपने गुणोंके समूहोंसे शत्रुओंका अच्छी तरह नियमन करके पूर्वोक्त रीतिसे चिरकाल तक राज्य किया ॥ ३१ ॥

एक दिन इस हरिषेणके शांत कर दिया है भूतलका ताप जिसने ऐसे अत्यंत तीक्ष्ण प्रतापको देखकर मानों लज्जासे ही सूर्यने अपने दुर्नयवृत्तोंसे आतप—लक्ष्मीको संकोच लिया ॥ ३२ ॥ विस्तृत दावानलके समान किरणोंसे इस जगत्को मैंने तपाया यह

कष्ट—खेदकी बात है। मानों इस पश्चातापके कारणसे ही सूर्य उसी समय नीचेको मुख कर गया ॥ ३३ ॥ बिल्कुल कुंकुमकी द्युतिको धारण करनेवाला सूर्यका मंडल दिनके अंतमें—सायंकालमें ऐसा मालूम पड़ता था मानों सूयने जो अपनी किरणें संकोचीं, उनके द्वारा जो कमलिनियोंका राग जाकर प्राप्त हुआ वही सब इकट्ठा होगया है या उसीका ऐसा आकार बन गया है ॥ ३४ ॥ सूर्यको वारुणी (पश्चिम दिशा; दूसरे पक्षमें मदिरा) में रत—आशक्त देख कर मानों निषेध करता हुआ—उसको ऐसा करनेसे रोकता हुआ दिन भी उसीके पास चला गया। ठीक ही है—जगतमें किसको उन्मार्गमें जाते हुए मित्रको नहीं रोकना चाहिये ? ॥ ३५ ॥ कहीं जानेकी इच्छा रखनेवाला कोई पुरुष जिस तरह अपने महान् धनको फिर ग्रहण करनेके लिये अपने प्रिय पुरुषोंके पास रख देता है, उसी तरह सूर्यने भी चकवाक युगलके निकट परितापको रक्खा। भावार्थ—पश्चिम दिशाको जानेवाला सूर्य अपने प्रिय चकवाक युगलके पास अपना महान् धन—गाढ़तापकी धरोहर इस अभिप्रायसे रख गया कि सबेरे आकर मैं तुमसे अपना यह धन लौटा लूंगा ॥ ३६ ॥ अस्त हुए सूयको छोड़कर झरोखोंके मार्गसे पड़ी हुई दीप्तियोंने मानों जिसका कभी नाश नहीं हो सकता ऐसे सदा प्रकाशमान रत्नदीपको पानेके लिये ही क्या घरके भीतर स्थिति की ॥ ३७ ॥ नम्र, जिसके कर (किरण, तथा हाथ) के आगेकी श्री मुकुलित हो गई है, अत्यंत राग (लाल, तथा प्रेम) मय है आत्मा जिसकी ऐसे विदा होते हुए सूयको रमणियोंने ठीक प्रियकी तरह आदर सहित देखा ॥ ३८ ॥ इस जगतमें पूर्वकी (पूर्व दिशाकी

या पूर्व कालकी) विभूतिसे रहितका सन्मान कैसे होता है या हो सकता है इस बातको जान करके ही मानों सूर्यने अपने शरीरको अस्ताचलके भीतर छिपा लिया ॥ ३९ ॥ नम्र हो गई हैं शाखायें जिनकी ऐसे वृक्ष शीघ्र ही आकर प्राप्त हुए—आकर बैठे हुए पक्षियोंके कलकल शब्दोंके द्वारा 'यह सूर्य या स्वामी हमको छोड़कर जा रहा है' ऐसा समझकर मानों स्वयं अनुताप करने लगे। ठीक ही है—मित्र (स्नेही; दूसरे पक्षमें सूर्य) का वियोग किसको संतापित नहीं करता है ॥ ४० ॥ चक्रवाक युगलको नियमसे परस्परमें दुरंत पीड़ा सहते हुए देखनेके लिये असमर्थ ऐसे विचारसे ही कमलिनीने कमलरूप चक्षुको बिल्कुल मींच लिया ॥४१॥ चबे हुए समस्त बिश—कमलतंतुके खंडको छोड़कर सायंकालके समयमें आक्रंदन करता हुआ मुखको मोड़कर अत्यंत मूर्छित होता हुआ चक्रवाकका जोड़ा वियुक्त हो गया ॥४२॥ वरुण दिशा—पश्चिम दिशामें जपा कुसुमके समान अरुण है कांति जिसकी ऐसी होती हुई संध्या ऐसी मालूम पड़ी मानों सूर्यके पीछे गमन करती हुई दीप्तिरूप वधुओंके चरणोंपर लगे हुए महावरसे रंगा हुआ मार्ग ही हो ॥४३॥ मधु—पुष्परससे चंचल हुए भ्रमर मुकुलित हुए कमलोंको बिल्कुल छोड़ना नहीं चाहते थे। जो कृतज्ञ है—किये हुए उपकारको भूलनेवाला नहीं है वह ऐसा कौन होगा जो अपने उपकारीको आपत्तिमें फंसा हुआ देखकर छोड़ दे ॥४४॥ अपूर्व—पश्चिम दिशाके मध्यको उसी समय छोड़कर संध्या भी सूर्यके पीछे२ चली गई। जो अत्यंत रक्त (आसक्त; दूसरे पक्षमें लाल) होती है वह अपने वल्लभको छोड़कर दूसरेमें बिल्कुल आसक्ति नहीं रखती ॥४५॥

गौओंके खुरोंसे उठी हुई गधेके वालोंके समान धूम्रवर्णवाली धूलि-से आकाश रुंध गया—व्याप्त हो गया। मानों वह सबका सब आ-काश चक्रवाक युगलको दाह उत्पन्न करनेवाली कामदेवरूप अग्निसे उठते हुए सांद्र निविड़—घने धूमके पटलोंसे ही आछन्न हो गया हो ॥ ४६ ॥ इसी समय सांद्र विनिन्द्र चेलाकी अधखिली कलियों-की शीतल गन्धसे युक्त सायंकालकी वायु भ्रमरोंके साथ साथ मानिनियोंको भी अंधा बनाती हुई मंदमंद बहने लगी ॥ ४७ ॥ क्रीड़ाके द्वारा शीघ्र ही कोकिलके सराग वचन कानके निकट आ कर प्राप्त हुए। आम्रपल्लवकी तरह उसने भी मानिनियोंके मुखकी शोभा विचित्र ही बढ़ाई ॥ ४८ ॥ जो अंधकार दिनमें दिननाथ—सूर्यके भयसे पर्वतोंकी बड़ी बड़ी गुफाओंमें छिप गया था वही अन्धकार सूर्यके जाते ही बढ़ने लगा। जो मलिन होता है वह रन्ध्रको पाकर बलवान् हो ही जाता है ॥ ४९ ॥ अंधकारके सघन पटलोंसे व्याप्त हुआ जगत् भी बिल्कुल काला पड़ गया। विदलित की है अंजनकी प्रभाको जिसने ऐसे अंधकारके साथ हुआ योग—सम्बन्ध—श्री—शोभाके लिये थोड़े ही हो सकता है ॥ ५० ॥ जो प्रकाशयुक्त हैं उनका अविषय, जिसकी गति कष्टसे भी नहीं मा-लूम हो सकती है, जिसने सीमा—मर्यादाको छोड़ दिया है ऐसे तथा सबको अपने समान बनानेवाले मलिनात्मा अंधकार—समूहने दुर्जनकी वृत्तिको धारण किया ॥ ५१ ॥ रत्न दीपकोंके समूहने गाढ़ अन्धकारको महलोंसे दूर भगा दिया। मालूम हुआ मानों सूर्यके अंधकारको नष्ट करनेके लिये अपने करांकुरका दंड ही भेजा है ॥ ५२ ॥ छिपालिया है रूपको जिन्होंने तथा रक्त (आसक्त

पुरुष दूसरे; पक्षमें खून) के रागसे विवश हो गया है चित्त जिनका ऐसी कुलटायें चारों तरफ हर्षसे अभिप्रेत स्थानोंको गईं जो ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों पिशाचिनी हों ॥ ९३ ॥ पूर्व दिशा ऐसी मालूम पड़ने लगी मानों दीनभावोंको धारण करनेवाली विधवा स्त्री हो । क्योंकि निकलते हुए चंद्रमाके किरणांकुरोंके अंशोंसे उसका मुख पीला पड़ गया था, और फैले हुए अंधकारने केशोंका रूप धारण कर लिया था ॥ ९४ ॥ चंद्रमाके कोमल पादों (-किरणों; दूसरे पक्षमें चरणों)को धरण करता हुआ उन्नत उदयगिरि भी शोभाको प्राप्त हुआ । अत्यंत निर्मल व्यक्तिमें किया हुआ प्रेम उन्नत व्यक्तिकी शोभा ही बढ़ाता है ॥९५॥ उदयाचलके भीतर छिपे हुए चंद्रमाके किरणजालने अंधकारको पहलेसे शीघ्र ही नष्ट कर दिया। अपने समयमें उद्यत हुआ व्यक्ति जो प्रतिपक्षको जीतनेकी इच्छा रखता है उससे आगे जानेवाला बलवान् होता है ॥ ९६ ॥ पहले तो उदयाचलसे चंद्रमाकी एक विद्रुम—मूंगाके समान कांतिकी धारक कलाका उदय हुआ। इसके बाद आधे चंद्रमाका और उसके बाद पूर्ण बिम्बका उदय हुआ। ठीक ही है—जगत्में वृद्धि क्रमसे नहीं होती है ? ॥ ९७ ॥ नवीन उठा हुआ हिमकर—चंद्र अपनी प्रिया यामिनी—रात्रिको अंधकार रूप भीलने पकड़ी हुई देखकर मानों कोपपूर्ण बुद्धिसे ही एकदम लाल पड़ गया ॥ ९८ ॥ जो रागी पुरुष होता है उससे यह नियम है कि कोई भी अभिमत कार्य सिद्ध नहीं होता है। मालूम पड़ता है मानों यह समझ करके ही चन्द्रमाने निविड़ अंधकारको नष्ट करनेके लिये रागको छोड़ दिया ॥ ९९ ॥ अत्यंत सांद्र चंदनके समान

द्युतिको धारण करनेवाला है बिंब जिसका ऐसे श्वेत किरणोंके धारक चंद्रने इकट्ठे हुए अंधकारको भी शीघ्र ही नष्ट कर दिया। जिसका मंडल शुद्ध है वह किस कामको सिद्ध नहीं कर सकता है? ॥६०॥ कमलिनी, प्रखर नहीं हैं किरण जिसकी ऐसे चंद्रमाकी पादों (किरणों; दूसरे पक्षमें चरणों) की ताड़नाको पाकर भी हंसने लगी। सम्मुख रहे हुए प्रियतमकी चेष्टा क्या वंधुओंको सुखके लिये नहीं होती है॥ ६१ ॥ सरस चंदनकी पंकके समान है छाया जिसकी ऐसी ज्योत्स्ना—चांदनीके द्वारा भरा हुआ समस्त जगत ऐसा मालूम पड़ा मानों चलायमान होते हुए क्षीर समुद्रकी नष्ट नहीं हुई है जलस्थितिकी शोभा जिसकी ऐसी वेलाके द्वारा ही व्याप्त होगया है॥ ६२॥ तुहिनांशु—चंद्रमाकी शीतल किरणोंके द्वारा भी कमलिनी तो हिलने चलने लगी या प्रसन्न हो उठी, पर कोक—चकवाक ज्योंका त्यों ही बना रहा। अभीष्ट वस्तुका वियोग होजानेपर और कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राणियोंको हर्ष उत्पन्न कर सके॥ ६३॥ अगाध त्राससे भीतर बढ़ती हुई हैं कामादिकी वासनायें जहां पर ऐसे मानिनी जनोंके मनको चंद्रमाकी किरणोंने समुद्रके जलकी तरह दूरसे ही यथेष्ट उल्बण—बड़े भारी क्षोभको प्राप्त करदिया॥ ६४॥ अपने मित्र पूर्ण चंद्रको पाकर अनंगने भी झटसे सब लोगोंपर विजय प्राप्त करली। ठीक ही है—मौके पर अच्छी सहायताको पाकर तुच्छ व्यक्ति भी विजय—लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है॥ ६५॥ कुमुद—कमलके केसरकी रेणुओंको बखेरता हुआ वायु सांद्रचंदनके समान शीतल था तो भी प्रियोंसे वियुक्त हुई वधुओंको वह दुःसह होगया। उनको मालूम पड़ा मानों यह कामदेवरूप अग्निके

स्फुलिंगोको बखेर रहा है ॥ ६५ ॥ अभिमत—प्रियका स्थान दूर था तो भी वहांपर मदिराक्षीको मार्ग बतानेमें अत्यंत दक्ष और मनोज्ञ चंद्रिकाने प्रिय रसकी तरहसे विना किसी तरह खेदके पहुंचा दिया ॥ ६७ ॥ युवाको दृष्टिमार्गमें आकर नम्र होते ही न कुछ देरमें प्रयत्न पूर्वक सम्हाली हुई भी रमणियोंकी मानसंपत्ति भृकुटीकी तरह वस्त्रके साथ साथ ढीली पड़ गई ॥ ६८ ॥ सखियोंमें विना कुछ कहे ही या इस हेतुसे कि कहीं सखियोंमें निंदा न हो जिसने दोष—अपराध किया था ऐसे प्रियके पास भी मदिरा—मदसे उत्पन्न हुए मोह—नशेके छलसे शीघ्र ही चली गई। प्रेम किसके मायाको उत्पन्न नहीं कर देता है ? ॥ ६९ ॥ वल्लभको सदोष—सापराध देखकर पहलेसे ही कुपित हुई भी किसी कामिनीने संभ्रम नहीं छोड़ा। स्त्रियोंका हृदय नियमसे अत्यंत गूढ़ होता है ॥७०॥ वेश्या हृदयमें बिल्कुल दूसरे पर आशक्त थी तो भी धनिक कामुके इस तरह वशमें होगई मानों इसीपर आशक्त है। धन किसको वशमें नहीं कर लेता है ? ॥ ७१ ॥

इस प्रकार कामदेवके वश हुए कामयुगलों—धर्म, अर्थ, पुरुषार्थों-के साथ साथ खिले हुए कमल समूहके समान है श्री—शोभा जिसकी ऐसे राजाने प्रियाके साथ चंद्रमाकी किरणोंसे निर्मल और रम्य महलमें रात्रिको एक क्षणकी तरह बिता दिया॥ ७२ ॥ धीरे धीरे जाकर विस्तीर्ण करोंसे (फैली हुई किरणोंसे; दूसरा अर्थ हाथोंको फैलाकर) लोल—चंचल हैं तारा (नक्षत्र; दूसरा अर्थ आंखकी पुतली) जिसके ऐसी प्रतीची—पश्चिम दिशाका चंद्रमाके आलिंगन करते ही यामिनी—रात्रिने मानों कुपित हो करके ही झटसे कुमुद—

नेत्रोंको कुछ मींचकर दूरसे ही विपरीतता (विनाश; दूसरा अर्थ विरुद्धता) धारण करली ॥ ७३ ॥

रात्रिके अंत समयमें महलके कुंजोंको जिन्होंने प्रतिध्वनित करदिया है ऐसे पूर्ण अंगवाले अत्युज्ज्वल वैबोधिक-बंदीगण नमा दिया है शत्रुओंको जिसने ऐसे उस राजाको जगानेके लिये उसके निवास महलके आंगनमें आकर ऐसे स्वरसे पाठ करने लगे जिसको सुनते ही आनन्द आजाय ॥ ७४ ॥

कामदेवसे संतप्त हुए मनवालोंकी तरह दंपतियोंकी धैर्य और लज्जासे चेष्टाओंको देखकर मानों लज्जित हो करके ही रजनी-रात्रि चन्द्र-मुखको नीचा करके हे सुमुख ! विमुख होकर कहीं जा रही है ॥७५॥ नवीन मोतियोंके समान है आभा जिनकी ऐसी ओसकी बूंदोंसे व्याप्त हुए वृक्ष ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों शीतल है कांति जिसकी तथा कोमल है कर-किरण जिसकी ऐसे चंद्रमाके रससे भींजे हुए तारागणोंके स्वेद-जलकी आकाशसे पड़ी हुई बड़ी बड़ी बूंदोंसे ही व्याप्त हो रहे हैं ॥७६॥ विकाशलक्ष्मीने जिनको छोड़ दिया है ऐसे कुमुदोंको-चंद्रविकाशी कमलोंको मधुपानसे लोल हुए भ्रमर हे नाथ ! खिलते हुए कमलोंकी सुगंधिसे सुगंधित कर दिया है दिशाओंको जिसने ऐसे कमलाकर-कमलवनकी तरफ जा रहे हैं। उत्तम सुगंधिवालेके पास सभी लोग आते हैं ॥ ७७ ॥ थके हुए कोक-चकवाकने जबतक दोनों पंखोंको फड़फड़ाया भी नहीं है तबतक रात्रिके विरह-जागरणसे खिन्न हुई भी चकई गाने लगी । अधिकतर युवतियां ही पुरुषोंसे स्नेह किया करती हैं ॥ ७८ ॥ तत्काल खिले हुए कमल ही हैं नेत्र जिसके ऐसी यह

दिवसलक्ष्मी अति रक्त (लाल रंगवाला; दूसरे पक्षमें आशक्त) धीरे धीरे प्रकट होकर पूर्व प्रकाशित कर (पूर्व दिशामें फैलाया है किरणोंको जिसने; दूसरे पक्षमें पहलेसे फैलाये हैं हाथ जिसने) ऐसे इस सूर्यका इस तरहसे आलिंगन करती है जैसे कोई मानिनी युवाका आलिंगन करे ॥ ७९ ॥ इस प्रकार मागधों—वंदीगणोंके वचनोंसे—वचनोंको सुनकर उसी समय निद्राका परित्याग कर वह राजा कामदेवकी फांसकी तरह गलेमें पड़ी हुई प्रियाकी दोनों बाहु लताओंको मुश्किलसे अलहदा करता हुआ सोनेके स्थानसे उठा ॥८०॥

इस प्रकार, स्फटिक समान निमल, अखंड—निरतीचार श्रावक व्रतोंको तथा राज्यलक्ष्मीको धारण करनेवाले उस नगनाथपति—राजराजेश्वरके अनेक संवत्सरयुक्त वर्ष सुखपूर्वक वीत गये ॥ ८१ ॥ तब एक दिन यह राजा प्रमद वनमें विराजमान सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराजको देखकर तपोवन होगया । और प्रशममें रत रहता हुआ चिरकाल तक तपस्या करने लगा ॥ ८२ ॥ विधिके जाननेवाले इस प्रसिद्ध मुनिने आयुके अंतमें विधिपूर्वक सल्लेखनाको धारण करके अपनी कीर्तिसे पृथ्वीको और मूर्तिसे—शरीरसे या आत्मासे महाशुक्र स्वर्गको अलंकृत किया ॥ ८३ ॥ अनल्प हैं मान—प्रमाण जिसका ऐसे प्रीतिवर्धन विमानमें पहुंचकर सोलह सागरकी आयुका धारक देव हुआ । इसकी रूप—संपत्ति दिव्य अंगनाजनोंके मनका हरण करनेवाली थी । वहांपर विचित्र —अनेकप्रकारके सुखोंको भोगता हुआ रहने लगा ॥ ८४ ॥

इस प्रकार असग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें 'हरिषेण महाशुक्र गमनो' नाम तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

चौदहवाँ सर्ग।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सदा मनोहर ऐसा कच्छ नामका एक देश है। जो कि सुरसरित सीताके परिचय-तटको अपनी कांतिके द्वारा प्रकाशित कर प्रकट रूपसे अवस्थित है ॥१॥ पृथ्वी तलको भेदकर उठ खड़ा हुआ लोक है क्या? अथवा, क्या देवताओंका निवास स्थान—स्वर्ग पृथ्वीको देखनेको आया है? इस प्रकार इस नगरीकी महती शोभाको देखते हुए स्वयं देवगण भी क्षणभरके लिये विस्मय—आश्चर्य करने लगते हैं ॥२॥ इस देशमें क्षेमद्युति नामको धारण करनेवाला नगर है जो ऐसा मालूम पड़ता है मानों तीनों लोक इकट्ठे हो गये हों। यह नगर सुवृत्त—बिल्कुल गोल या सदाचार प्रकृतिसे युक्त विभिन्न वर्णोंसे व्याप्त, और पृथ्वीके तिलकके समान था ॥ ३ ॥ नीतिको जाननेवाला जिसने शत्रुओंको नमा दिया है ऐसा धनंजय नामका राजा उस नगरका स्वामी था। जिसने अति चपल लक्ष्मीको भी वशमें कर लिया था। महा पुरुषोंको दुःष्कर कुछ भी नहीं है ॥ ४ ॥ इस राजाकी ईषत् हासयुक्त है मुख जिसका तथा सकल कलाओंमें दक्ष है बुद्धि जिसकी ऐसी कल्याणी—कल्याण करनेवाली प्रभावती नामकी प्रसिद्ध रानी थी। जो ऐसी मालूम पड़ती थी मानों लज्जाका हृदय हो, अथवा कामदेवकी अ-द्वितीय विजयपताका हो ॥ ५ ॥ श्रेष्ठ स्वप्नोंके द्वारा पहलेसे ही सूचित कर दी है चक्रवर्तीकी लक्ष्मी जिसने ऐसा वह देव उस स्वर्गसे—महाशुक्र नामके दशवें स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरकर इन दोनोंके

यहां मूर्तिमान् प्रशस्त यज्ञके समान प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ बुद्धिवैभवके लोभमें पड़ी हुई समस्त विद्यायें उसकी पहले-से ही प्रत्यक्ष उपासना करने लगीं। मालूम हुआ मानों उसको शीघ्र पानेके लिये अत्यंत उत्सुक हुई साम्राज्य-लक्ष्मीकी प्रधान दूतिकायें ही हों ॥ ७ ॥ जिस तरह निर्मल रत्नोंका आधार समुद्र होता है उसी तरह वह कुमार भी अत्यंत निर्मल समस्त गुणोंका भाजन बन गया। पर यह बड़ी विचित्र हुई जो लावण्य (सौंदर्य; समुद्र पक्षमें खारापन) को धारण करते हुए भी समस्त दिशाओंमें ही नहीं किंतु लोकभरमें मधुरता फैल गई ॥ ८ ॥ चंद्रमाकी तरह सद्वृत्त (सदाचारी; दूसरे पक्षमें बिल्कुल गोल) समस्त कलाओंको धारण करनेवाला, अनेक मृदु पादों (चरणों; दूसरे पक्षमें किरणों) की सेवा करनेवालोंको आनंद बढ़ानेवाला, तथा सम्पूर्ण कुमारने नवीन यौवनके द्वारा बड़ी भारी रूपशोभाकी सामग्रीको प्राप्त किया ॥ ९ ॥ वसंत समयमें नवीन पुष्प लक्ष्मीको जिसने धारण कर रक्खा है ऐसा कुमार दूसरोंको छोड़कर हर्षको प्राप्तकर पड़ते हुए मत्त वधुओंके चंचल नेत्रोंसे ऐसा मालूम पड़ता था मानों भ्रमर समूहोंसे ही एकत्रित हो रहा हो ॥ १० ॥

एक दिन वह राजा धनंजय क्षेमंकर मुनिराजके निकट जाकर तथा उनके उपदिष्ट धर्मको एकाग्र चित्तसे भले प्रकार सुनकर अत्यंत-उत्कृष्ट विरक्त बुद्धि-मुनि हो गया ॥ ११ ॥ अपने मुख्य उस मुख्य पुत्रके ऊपर लक्ष्मी-राज्यलक्ष्मीको छोड़कर शीघ्र ही दीक्षित हुआ राजा बहुत ही शोभाको प्राप्त हुआ। संसारके व्यसनको नष्ट कर देनेवाली तपस्या किस मुमुक्षुकी शोभाके लिये नहीं

होती है ॥ १२ ॥ वह राजा स्वभावमद—आत्मस्वरूप और उज्ज्वल सम्यक्त्वको तथा समस्त अणुव्रतोंको यथावत् धारण करता हुआ जैसा हर्षित हुआ तैसा दुःसाध्य राजाधिराजलक्ष्मीको पाकर भी हर्षित न हुआ ॥ १३ ॥ सच्चरित्रोंके द्वारा शत्रुगणने स्वयं खिंचे हुए आकर उसकी किंकरता धारण की । चन्द्रमाकी किरणोंके समान शुभ्र सत्पुरुषोंके गुणोंके समूह किसको विश्वास नहीं करा देते हैं ॥ १४ ॥

एक दिन सभागृहमें बैठे हुए नरपतिके पास समाचार सुनानेवाला घबड़ाता हुआ कोई सेवक आकर विना नमस्कार किये ही हर्षसे इस तरह बोला। अत्यंत हर्ष होनेपर कौन सचेतन—सावधान रहता है ॥ १५ ॥ हे विनत नरेन्द्रचक्र! (नम्र बना दिया है राजाओंका समूह जिनसे) निर्मल कांतिवाले उत्कृष्ट आयुधोंकी शालामें चक्र उत्पन्न हुआ है। वह कोटि सूर्योंकी बिम्बोंके समान दुःप्रेक्ष्य है। और उसकी यक्षोंके स्वामीगण रक्षा कर रहे हैं ॥ १६ ॥ वहीं पर निकलती हुई मणियोंकी प्रभासे वेष्टित दंड रत्न और शरद ऋतुके आकाश समान आभाका धारक खड्ग रत्न उत्पन्न हुआ है तथा पूर्ण चंद्रमाकी द्युतिके समान रुचिर श्वेत छत्र उत्पन्न हुआ है जो ऐसा मालूम पड़ता है मानों साक्षात् आपका मनोहर यश ही हो ॥१७॥ कोषगृह—खजानेमें फैलती हुई किरणोंके समूहसे जिसने दिशाओंको व्याप्त कर दिया है ऐसी चूड़ नामक मणि उत्पन्न हुई है। इसीके साथ साथ तत्क्षण किरण पंक्तिसे प्रकाशित होनेवाला काकीणी रत्न हुआ है और हे भूपेन्द्र! द्युति—कांतिसे विस्तृत चर्मरत्न उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ पुण्यके फलसे आकृष्ट हुए मंत्री गृहपति

और स्थपति हैं मुख्य जिनमें ऐसे द्वारपर खड़े हुए रत्नभूत—रत्न-स्वरूप सेनापति हस्ती और घोड़ा हे भूपाल ! कन्यारत्नके ऊपर आपके कटाक्षपातकी अपेक्षा कर रहे हैं ॥ १९ ॥ कुबेरकी लक्ष्मीसे नव निधि उत्पन्न हुई हैं जो कि अपने वैभवोंसे सदा विभूतियोंको उत्पन्न किया करती हैं। पूर्वजन्मके संचित महापुण्यकी शक्ति किसको किस चीजके उत्पन्न करनेवाली नहीं हो सकती है ॥ २० ॥ इस प्रकार सेवकने जिसका वर्णन किया है ऐसी मनुष्यजन्मकी सार-भूत उत्पन्न हुई चक्रवर्त्तिकी विभूतिको भी सुनकर महाराज साधारण मनुष्योंकी तरह आश्चर्यको प्राप्त न हुए। प्राज्ञ पुरुषोंको इसमें कौतूहलका क्या कारण है? ॥२१॥ समस्त राज परिवारके साथ साथ भक्तिसे जिनेन्द्र भगवानके समक्ष जाकर सबसे पहले आनंदके साथ उनकी पूजा की। पूजा करनेके बाद मार्ग—विधिके जानने वाले इस राजाने यथोक्त विधिके अनुसार चक्रकी विस्तारसे पूजा की ॥ २२ ॥ अनेकों बड़े बड़े राजाओं विद्याधरों और देवोंसे व्याप्त इस समस्त षट्खंड पृथ्वीको उसने चक्रके द्वारा कुछ ही दिनोंमें अपने वशमें करलिया। महापुण्यशालियोंको जगत्में दुःसाध्य कुछ भी नहीं है ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह सम्राट प्रसिद्ध२ बत्तीस हजार राजाधिराजाओंसे और सोलह हजार देवोंसे तथा छयानवे हजार रमणीय स्त्रियोंसे वेष्टित होकर रहने लगा ॥ २४ ॥ कुबेरकी दिशा—उत्तर दिशामें नैसर्प, पांडु, पिंगल, काल, भूरिकाल या महाकाल, शंख, पद्म, माणव, और सर्वरत्न इन नव निधियोंने निवास किया ॥२५॥ नैसर्प निधि मनुष्योंको सदा महल, शयन—सोनेके वस्त्र, उपधान (तकिया), आसंदी आदिक श्रेष्ठ आसनके भेद, पलंग, तथा अनेक जातिके

गौओंके खुरोंसे उठी हुई गधेके बालोंके समान धूम्रवर्णवाली धूलिसे आकाश रुंध गया—व्याप्त हो गया। मानों वह सबका सब आकाश चक्रवाक युगलको दाह उत्पन्न करनेवाली कामदेवरूप अग्निसे उठते हुए सांद्र निविड़—घने धूमके पटलोंसे ही आछन्न हो गया हो ॥ ४६ ॥ इसी समय सांद्र विनिन्द्र बेलाकी अधखिली कलियोंकी शीतल गन्धसे युक्त सायंकालकी वायु भ्रमरोंके साथ साथ मानिनियोंको भी अंधा बनाती हुई मंदमंद बहने लगी ॥ ४७ ॥ क्रीड़ाके द्वारा शीघ्र ही कोकिलके सराग वचन कानके निकट आकर प्राप्त हुए। आम्रपल्लवकी तरह उसने भी मानिनियोंके मुखकी शोभा विचित्र ही बढ़ाई ॥ ४८ ॥ जो अंधकार दिनमें दिननाथ—सूर्यके भयसे पर्वतोंकी बड़ी बड़ी गुफाओंमें छिप गया था वही अन्धकार सूर्यके जाते ही बढ़ने लगा। जो मलिन होता है वह रन्ध्रको पाकर बलवान् हो ही जाता है ॥ ४९ ॥ अंधकारके सघन पटलोंसे व्याप्त हुआ जगत् भी बिल्कुल काला पड़ गया। विदलित की है अंजनकी प्रभाको जिसने ऐसे अंधकारके साथ हुआ योग—सम्बन्ध—श्री—शोभाके लिये थोड़े ही हो सकता है ॥ ५० ॥ जो प्रकाशयुक्त हैं उनका अविषय, जिसकी गति कष्टसे भी नहीं मालूम हो सकती है, जिसने सीमा—मर्यादाको छोड़ दिया है ऐसे तथा सबको अपने समान बनानेवाले मलिनात्मा अंधकार—समूहने दुर्जनकी वृत्तिको धारण किया ॥ ५१ ॥ रत्न दीपकोंके समूहने गाढ़ अन्धकारको महलोंसे दूर भगा दिया। मालूम हुआ मानों सूर्यके अंधकारको नष्ट करनेके लिये अपने करांकुरका दंड ही भेजा है ॥ ५२ ॥ छिपालिया है रूपको जिन्होंने तथा रक्त (आशक्त

तथा रजाई आदिके साथ रत्न कम्बलादिको देती है ॥ ३२ ॥ माणव निधि, अनुगत है लक्षण और स्थिति जिनकी ऐसे दिव्य हथियारोंके दुर्भेद्य कवच शिरोवर्म (शिरपर लगनेका कवच) आदिक प्रसिद्ध अनेक भेदोंको मनुष्योंके लिये देता है ॥ ३३ ॥ सर्व रत्न निधि, रत्नोंकी आपसमें मिली हुई किरणोंके जाल—समूहसे आकाशमें इन्द्रधनुषको बनानेवाली संपदाओंकी समग्र सामग्रीको समग्र लोगोंके लिये उत्पन्न कर देती है ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार वर्षाऋतु चारोंतरफ नवीन जलकी वर्षा करनेवाले मेघोंके द्वारा मयूरोंके मनोरथोंको पूर्ण करती है उसी तरह यह राजाधिराज नवीन नवनिधियोंके द्वारा लोगोंके समस्त मनोरथोंको अच्छी तरह पूर्ण करता था ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार नद—नदियोंके द्वारा बड़े भारी जलसमूहको भी प्राप्त करके समुद्र निर्विकार रहता है उसी तरह उसने भी नवनिधियोंके द्वारा दिये गये अपरिमित द्रव्यसे उद्धतता धारण न की। जो धीर हैं उनके लिये वैभव विकारका कारण नहीं होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार दशांगभोगोंको भोगते हुए भी तथा अत्यंत नम्र हुए देवों तथा राजाओंसे वेष्टित रहते हुए भी उसने अपने हृदयसे धर्मकी आस्थाको शिथिल न किया। जो महानुभाव हैं वे वैभवसे मोहित नहीं होते ॥३७॥ राजलक्ष्मीसे अत्यंत आश्लिष्ट रहते हुए भी वह राजेन्द्र प्रशमरतिको ही सुखकर मानता हुआ। जिन्होंने सम्यग्दर्शनके प्रभावसे महान् संपत्तिको पाया है उनकी निर्मल बुद्धि कल्याणकारी विषयोंको नहीं छोड़ती ॥३८॥ विषय सुखके अमृतसे भरे हुए विस्तीर्ण समुद्रमें निमग्न है चित्त जिसका ऐसे उस चक्रवर्तीने

समस्त लोगोंको आनंद बढ़ाते हुए तिरासी लाख पूर्व वर्ष बिता-दिये ॥३७॥

एक दिन चक्रवर्ती अत्यंत निर्मल दर्पणमें अपनी छवि देख रहा था। उसने कानके मूलमें लगा हुआ पलिताकुर-श्वेत केश देखा। मालूम हुआ मानों भविष्यत्—आगे होनेवाली वृद्धावस्थाकी सुचना देनेके लिये दूत ही आया हो ॥४०॥ केशको देखकर मणिदर्पणको छोड़कर राजा उसी समय विचारने लगा। वह बहुत देर तक सोचता रहा कि जगत्में मेरे समान दूसरा कौन ऐसा विचार-शील होगा कि जिसकी आत्माको संसारमें विषयविषोंने वश कर लिया हो ॥४१॥ साम्राज्यमें चक्रवर्तीकी विभूतिको पाकर देवताओं राजाओं और विद्याधरोंके द्वारा प्राप्त हुए आतुरम्य—कदाचित् रम-णीय भोगोपभोगोंसे भी मेरी बिल्कुल तृप्ति नहीं होती। फिर साधारण पुरुषोंकी तो बात ही क्या है। यद्यपि ऐसा है तो भी लोभका गड्ढा पूरा करना—भरना दुःसाध्य है ॥४२॥ जो पण्डित हैं संसारके स्वरूपको जाननेवाले हैं वे भी विरस सुखोंसे खिंचे हुए महान् दुःखयुक्त संसारमें डरते नहीं हैं—अपनी आत्माको खोटे परिणामोंसे दुःखी बनाते हैं, अहो! यह समस्त जीवलोक मोहसे अंधा हो रहा है ॥ ४३ ॥ जगत्में विद्वानोंमें वे ही मुख्य और धन्य हैं और उन्होंने महान् पुण्यफलको प्राप्त किया जिन्होंने शीघ्र ही तृष्णारूपी विष वेलको जड़ समेत उखाड़कर दिशाओंमें दूर फेंक दिया ॥ ४४ ॥ नाश या पतन अथवा दुःखोंकी तरफ पड़ते हुए जीवकी रक्षा करनेमें न भार्या समर्थ है, न पुत्र समर्थ है, न बन्धुवर्ग समर्थ है, कोई समर्थ नहीं है। फिर भी यदी यह शरीरधारी उनमें

अपनी आस्थाको शिथिल नहीं करना चाहता है तो उसकी इस मूढ़ प्रकृतिको धिक्कार है॥ ४५॥ सेवन किये हुए इन्द्रियोंके विषयोंसे तृप्ति नहीं होती, उनसे तो और भी घोर तृषा ही होती है। तृषासे दुःखी हुआ जीव हित और अहितको कुछ नहीं जानता। इसीलिये यह संसार दुःखरूप और आत्माका अहितकर है॥ ४६॥ यह जीव संसारको कुशलतासे रहित तथा जन्म जरा-वृद्धावस्था और मृत्यु स्वभाववाला स्वयं जानता है प्रत्यक्ष देखता है और सुनता है तो भी यह आत्मा भ्रांतिसे प्रशममें कभी रत नहीं है॥ ४७॥ लेशमात्र सुखके पानेकी इच्छासे इन्द्रियोंके वशमें पड़कर पापकार्यमें फंस जाता है किंतु परलोकमें होनेवाले विचित्र दुःखोंको बिल्कुल नहीं देखता है। जीवोंका अहितमें रति करना स्वभाव हो गया है॥ ४८॥ समस्त सम्पदायें बिजलीकी तरह चंचल हैं। तारुण्य-यौवन तृणोंमें लगी हुई अग्निकी दीप्तिके समान है। जिस तरह फूटे घड़ेमेंसे सारा जल निकल जाता है उसी तरह क्या मनुष्योंकी समस्त आयु नहीं गल जाती है? ॥ ४९॥ बीभत्स, स्वभावसे ही विनश्वर, अत्यंत दुःपूर, अनेक प्रकारके रोगोंके निवास करनेका घर, विष्ट, मूत्र, राद वगैरहसे पूर्ण जीर्ण वर्तनके समान शरीरमें कौन विद्वान् बन्धुताकी बुद्धि करेगा॥ ५०॥ इस प्रकार हृदयसे संसार परिस्थितिकी निंदा करके मोक्ष मार्गको जाननेकी है इच्छा जिसकी तथा प्रस्थानकी भेरी बजवाकर बुला लिया है भव्योंको जिसने ऐसे भूपालने उसी समय जिनभगवान्‌की वंदना करनेके लिये स्वयं प्रस्थान किया॥ ५१॥ और सुरपदवीके समान तारता (?) मदरूप पूर्णचन्द्र लक्ष्मीवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के चारो

तरफ प्रसन्न हुए भव्योंकी श्रेणियोंसे वेष्टित समवशरणको उसने प्राप्त किया। अर्थात् वह प्रियमित्र चक्रवर्ती अनेक भव्योंके साथ २ समवशरणमें पहुंचा ॥ ५१ ॥ द्विगुणित हो गई है प्रशम संपत्ति जिसमें ऐसी भक्तिके द्वारा नम्र हो गया है उत्तमांग शिर जिसका ऐसे उस चक्रवर्तीने चार निकायवाले देवोंसे सेवित और केवलज्ञान ही है नेत्र जिनका, स्तुति करने योग्य ऐसे अजर, अमर उन जिनेन्द्र भगवानकी हाथ जोड़कर वंदना की ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अशग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें 'प्रियमित्र चक्रवर्ति-सम्भवो नाम चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।

पन्द्रहवां सर्ग।

संसारकी अवमें—अनंत दुरवस्थाको जानकर भक्तिसे नम्र हुए पृथ्वीपालने हाथ जोड़कर जिनेन्द्र भगवान्से मोक्षमार्गके विषयमें प्रश्न किया। ऐसा कौनसा भव्य है जो सिद्धिके लिये उत्साहित न हो! ॥ १ ॥ निश्चित हैं समस्त तत्त्व जिनको ऐसे हितोपदेशी भगवान भिन्न भिन्न जातियोंवाले समस्त भव्य प्राणियोंको मोक्ष-मार्गका बोध देते हुए अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा स्थानको व्याप्त कर इस तरहके वचन बोले ॥ २ ॥

सम्यग्दर्शन निर्मल—सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हे चक्र-पाणे! ये तीन मोक्षमार्ग हैं। मुमुक्षु प्राणियोंको इनके सिवाय और कोई या इनमेंसे एक दो मोक्षके मार्ग नहीं हो सकते। अर्थात् येतीनों मिले हुओंकी एक अवस्था मोक्षका मार्ग है ॥ ३ ॥

तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यक्त्व बताया है, और इन्हीका—तत्त्वार्थोंका जो निश्चय करके—संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहितपनेसे जो अवबोध होता है उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं, समस्त परिग्रहोंसे सम्बन्धके छूटनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥ ४ ॥ लोकमें समस्त प्राणियोंके हितका उपदेश देनेवाले इन्द्रादिकके द्वारा पूज्य जिनेन्द्र भगवान्‌ने ये नव पदार्थ बताये हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ॥ ५ ॥ इनमेंसे जीव दो प्रकारके हैं—एक संसारी दूसरे मुक्त। इनका सामान्य—दोनोंमें व्यापनेवाला लक्षण उपयोग—चेतनाकी परिणति—ज्ञानदर्शन है। इसके भी दो भेद हैं (ज्ञानदर्शन) जिनमेंसे एकके—ज्ञानके आठ भेद हैं, दूसरे—दर्शनके चार भेद हैं ॥ ६ ॥ जो संसारी जीव हैं वे योनिस्थान तथा गति आदिक नाना प्रकारके भेदोंसे अनेक प्रकारके बताये हैं। जो कि नाना प्रकारके दुःखोंकी दावानलसे युक्त जन्म मरणरूपी दुरंत—खराब है अंत जिसका ऐसे अरण्यमें अनादिकालसे भ्रमण कर रहे हैं ॥ ७ ॥ वीतराग जिनेन्द्र भगवान्‌ने ऐसा स्पष्ट कहा है कि यह आत्मा समस्त तीनों लोकमें गति इन्द्रिय और स्थानके भेदसे तथा इन (जिनका आगे आगे वर्णन करते हैं) भावोंसे शेष सुख और दुःखको पाता है ॥ ८ ॥ भाव पांच प्रकारके हैं—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक। सर्वज्ञदेवने इनको जीवका तत्त्व—स्वतत्त्व बताया है। इनके क्रमसे दो नव अठारह इक्कीस और तीन उत्तरभेद होते हैं ॥ ९ ॥ पहला भेद औपशमिक है। इसके दो भेद हैं—सम्यक्त्व और चारित्र। ये दोनों—सम्यक्त्व और चारित्र तथा इनके साथ साथ

ज्ञान दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये सात इनको मिलाकर क्षायिकके नव भेद होते हैं ॥ १० ॥ तीन अज्ञान—मिथ्याज्ञान (कुमति, कुश्रुत, विभंग), चार सम्यग्ज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, और संयमासंयम, सबको मिलकर क्षायोपशमिकके अठारह भेद होते हैं ॥ ११ ॥ एक अज्ञान—ज्ञानका अभाव, तीन वेद (स्त्री, पुरुष, नपुंसक), छह लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल), एक मिथ्यादर्शन, एक असंयत, चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) और एक असिद्धत्व और चार गति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, और देव) इस प्रकार ये इक्कीस भेद औदयिक भावके हैं ॥ १२ ॥ पांचमें—पारणामिक भावके तीन भेद हैं—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व। इन पांच भावोंके सिवाय एक छट्ठा सांनिपातिक भाव भी है। इसके आचार्योंने छत्तीस भेद बताये हैं ॥ १३ ॥ मुक्त जीव सब समान हैं। वे अक्षय—कभी नष्ट न होनेवाले सम्यक्त्व आदिक श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं—इन गुणोंके साथ उनका तादात्म्य सम्बन्ध है। और वे इस दुस्तर संसार—समुद्रसे तिरकर त्रिलोकीके अग्रभागमें विराजमान हो चुके हैं ॥१४॥ धर्म अधर्म पुद्गल आकाश और काल ये अजीव द्रव्य बताये हैं। इनमेंसे पुद्गल द्रव्यरूपी है इन द्रव्योंमेंसे कालको छोड़कर बाकीके चार द्रव्य और जीव इस प्रकार पांच द्रव्योंको अस्तिकाय कहते हैं ॥१५॥ छहों द्रव्योंमेंसे एक जीव द्रव्य ही कर्त्ता है, और द्रव्य कर्त्ता नहीं है। असंख्यात प्रदेशोंकी अपेक्षा धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य एक जीव द्रव्यके समान हैं—जितने असंख्यात प्रदेश एक जीव द्रव्यके हैं उतने ही असंख्यात धर्म द्रव्यके और उतने ही अधर्म द्रव्यके हैं। आकाश द्रव्य अनंत

प्रदेशी है, वह लोक और अलोकमें व्याप्त होकर रहा है ॥१६॥ धर्म और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलोंको गमन और स्थितिमें उपकारी है धर्म द्रव्य गमनमें उपकारी है और अधर्म द्रव्य स्थितिमें उपकारी है। ये दोनों ही द्रव्य लोकमें व्याप्त होकर रह रहे हैं। कालका लक्षण वर्तना है। इसके दो भेद हैं—एक मुख्य काल दूसरा व्यवहार काल। आकाश द्रव्य जगह देनेमें उपकार करता है ॥ १७ ॥ रूप, स्पर्श, वर्ण (?), गंध, रस, स्थूलता, भेद, सूक्ष्मता, संस्थान, शब्द, छाया, उद्योत, आतप अंधकार और बंध ये पुद्गल द्रव्यके गुण—उपकार हैं ॥१८॥ पुद्गल दो प्रकारके हैं—एक स्कन्ध दूसरे अणु। स्कन्धोंको दो आदिक अनंत प्रदेशोंसे संयुक्त बताया है। अणु अप्रदेशी—एक प्रदेशी होता है। सभी स्कन्ध भेद और संघातसे उत्पन्न होते हैं। अणु भेदसे ही उत्पन्न होता है ॥१९॥ जन्म मरणरूपी समुद्रमें निमग्न होते हुए जंतुको ये स्कंध कर्मोंको या उसके कारणभूत शरीर मन, वचनकी क्रिया श्वासोच्छ्वास जीवन मरण सुख दुःख उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥ शरीर, वचन और मनके द्वारा जो कर्म—क्रिया—आत्मप्रदेश परिस्पंद होता है उसीको योग कहते हैं और उसीको सर्वज्ञ देवने आस्रव बताया है। वह पुण्य और पाप दोनोंमें कारण होता है। इसलिये उसके दो भेद हैं—एक शुभ दूसरा अशुभ अर्थात् जो पुण्यका कारण है उसको शुभ योग कहते हैं और जो पापका कारण है उसको अशुभ योग कहते हैं ॥ २१ ॥ आचार्योंने उस योगके दो स्वामी बताये हैं—एक कषाय सहित दूसरा कषाय रहित। पहले स्वामीके सांपरायिक आस्रव होता है और दूसरेके ईर्यापथ

आस्रव होता है ॥ २२ ॥ विद्वानोंको चारों कषायोंके साथ साथ पांच इन्द्रिय पांच व्रत और पच्चीस क्रिया ये पहले—सांपरायिक-आस्रवके भेद समझने चाहिये ॥ २३ ॥ तीव्र मंद अज्ञात और ज्ञात भावोंसे तथा द्रव्यके उद्रेक—वीर्यसे आस्रवमें विशेषता होती है। उसका साधन—अधिकरणभूत द्रव्य दो प्रकारका है। और वे दो प्रकार जीव अजीव हैं ऐसा आगमके ज्ञाता कहते हैं ॥२४॥ संरम्भादिक और कषायादिकका परस्परमें गुणा करनेसे जीवाधि-करणके एकसौ आठ भेद होते हैं। दूसरे—अजीवाधिकरणके निर्वर्तना आदिक भेद होते हैं ॥ २५ ॥ शरीरधारियोंके ज्ञानावरण और दर्शनावरणके कारण आत्माके जाननेवाले—सर्वज्ञ देवादिकने मात्सर्य, अंतराय, प्रदोष, निह्नव आसादना और उपघात बताये हैं ।२६। प्राणियों-के असाता वेदनीय कर्मका जो आस्रव होता है उसके कारण निज पर या दोनोमें उत्पन्न हुए दुःख, शोक, आक्रंदन, ताप और हिंसा—वध ये हैं ॥ २७ ॥ साता वेदनीय कर्मसे आस्रवके भेद ये हैं—समस्त प्राणियोंपर अनुकंपा—दया करना, व्रतियोंको दान देना और राग सहित अनुकंपा भी करना, योग—मन, वचन, कायकी समीचीन प्रवृत्ति, क्षमा, शौच—लोभ न करना इत्यादि ॥ २८ ॥ संघ—मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका, धर्म, केवली, और सर्वज्ञोक्त श्रुत आगम, इनके अवर्णवादको—जो दोष नहीं हैं उन दोषोंके लगानेको सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी यतिवरोंने जंतुके दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवका कारण बताया है ॥ २९ ॥ कषायके उदयसे जीवके जो तीव्र-परि-णाम भेद होते हैं उनको ही जीवादि पदार्थोंके जाननेवाले सर्वज्ञ देवने चारित्र मोहनीय कर्मके आस्रवका कारण बताया है ॥ ३० ॥

अपनेको या परको पीड़ा उत्पन्न करना, कषायोंका उत्पन्न होना, यतियोंकी निन्दा, क्लेश सहित लिंग या व्रतका धारण करना इत्यादिक कषाय वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण होते हैं॥ ३१॥ दीनोंकी अति हसी करना, बहुतसा विलाप करना, हसनेका स्वभाव, नित्य धर्मका उपहासादिक करना इनको उदार—सर्वज्ञदेव हास्यवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण बताते हैं ॥३२॥ अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंमें तत्परता रखना, व्रतोंमें तथा शीलोंमें अरुचि आदिक रखना, इनको सत्पुरुषोंने शरीरधारियोंके रतिवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण बताया है॥ ३३॥ पाप प्रवृत्ति करनेवालोंके साथ संगति करना, रति—प्रेमका विनाश, दूसरे मनुष्योंसे अरति प्रकट करना इत्यादिको प्रशस्त पुरुषोंने अरतिवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण बताया है ॥ ३४॥ अपने शोकसे चुर रहना या दूसरेके शोककी स्तुति निंदा आदि करना शोकवेदनीय कर्मके आश्रवका कारण होता है ऐसा समस्त पदार्थोंके जाननेवाले आर्य—आचार्य या सर्वज्ञ कहते हैं ॥ ३५॥ नित्य अपने भयरूप परिणाम रखना या दूसरेको भय उत्पन्न करना या किसीका बध करना इससे भयवेदनीय कर्मका आस्रव होता है। आर्य पुरुष इस बातको जगत्में देखते हैं कि कारणके अनुरूप ही कार्य हुआ करता है॥ ३६॥ साधुओंकी क्रिया या आचारविधिमें जुगुप्सा—ग्लानि रखना, दूसरेकी निंदा करनेमें उद्यत रहना या उस तरहका स्वभाव रखना इत्यादिक जुगुप्सावेदनीय कर्मके आस्रवके निमित्त हैं ऐसा आस्रवके दोषोंसे रहित यति कहते हैं ॥३७॥ असत्य भाषण, नित्य रति, दूसरेका अतिसंधान, रागादिककी वृद्धि इन बातोंको आर्य स्त्री वेदनीय कर्मके

आस्रवका कारण बताते हैं ॥ ३८ ॥ गर्व न करना, मन्दकषायता, स्वदारसंतोष आदि गुणोंका होना, इन बातोंको समस्त तत्वोंके ज्ञाता भगवानने सत्पुरुषोंको पुरुष वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण बताया है ॥ ३९ ॥ सदा कषायोंकी अधिकता रखना, दूसरोंकी गुह्येन्द्रियोंका छेदन करना, परस्त्रीसे गमन—व्यभिचार करना इत्यादिकको आर्य तीसरे—नपुंसक वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण बताते हैं ॥ ४० ॥ बहुत आरम्भ और परिग्रह रखना, अतुल्य हिंसा क्रियाओंका उत्पन्न करना, रौद्रध्यानसे मरना, दूसरेके धनका हरण करना, अत्यंत कृष्ण लेश्या, विषयोंमें तीव्र गृद्धि, ये सम्पूर्ण ज्ञानरूप नेत्रके धारक और सब जीवोंके हितैषी भगवानने नरक आयुके आस्रवके कारण बताये हैं ॥ ४१ ॥ विद्वानोंमें श्रेष्ठ आचार्योंने प्राणियोंको तिर्यग्गति सम्बन्धी आयुके आस्रवका कारण माया बताई है । दूसरेको ठगनेके लिये दक्षता केवल निःशीलता, मिथ्यात्वयुक्त धर्मके उपदेशमें रति—प्रेम, तथा मृत्यु समयमें आर्तध्यान और नील कापोत ये दो लेश्यायें, ये उस मायाके ही भेद हैं ॥ ४२ ॥ अल्प आरम्भ और परिग्रह मनुष्य आयुके आस्रवका कारण बताया है । मन्द कषायता, मरणमें संक्लेश आदिका न होना, अत्यंत भद्रता, प्रगुण क्रियाओंका व्यवहार, स्वाभाविक प्रश्रय, तथा शील और व्रतोंसे उन्नत स्वभावकी कोमलता, ये सब उस कारणके विशेष भेद हैं ॥ ४३ ॥ सरागसंयम संयमासंयम अकामनिर्जरा बाल तप इनको ज्ञानी पुरुष देवायुके आस्रवका कारण बताते हैं और उदार कारण सम्यक्त्व भी है ॥ ४४ ॥ योगोंकी अत्यंत वक्रता और विवाद—झगड़ा आदिक करना, अशुभ नाम कर्मके आस्रवका

कारण है और इससे विपरीत प्रवृत्तिको आगमके वेत्ता शुभ नाम कर्मोंके आस्रवका कारण बताते हैं ॥ ४५ ॥ सम्यक्त्वकी शुद्धि, विनयकी अधिकता, शील और व्रतोंमें दोष न लगाकर चर्या करना, उनका पालन करना, निरंतर ज्ञानोपयोग शक्तिके अनुसार उत्कृष्ट त्याग और तप, संसारसे भीरुता, साधुओंकी समाधि—कष्ट आदिक दूर करना, भक्तिपूर्वक वैयावृत्य करना, जिनागम आचार्य बहुश्रुत और श्रुतमें भक्ति तथा वात्सल्यका रखना, षडावश्यकको कभी न छोड़ना, मार्ग—जिनमार्गकी प्रकटरूपसे अत्यंत प्रभावना करना, इन सोलह बातोंको आर्य—आचार्य अत्यंत अद्भुत तीर्थंकर नामकर्मके आस्रवका कारण बताते हैं ॥४६-४८॥ अपनी प्रशंसा, दूसरेकी अत्यंत निंदा तथा सद्भूत गुणोंका ढकना और असद्भूत गुणोंका प्रकट करना, इनको नीचगोत्र कर्मके आस्रवके कारण बताते हैं ॥४९॥ नीचगोत्र कर्मके आस्रवके जो कारण हैं उससे विपरीत वृत्ति, जो गुणोंकी अपेक्षा अधिक हैं उनसे विनयसे नम्र रहना, मद और मानका निरास, इनको जिन भगवान्‌के उच्चगोत्र कर्मके आस्रवका कारण बताया है ॥ ५० ॥ आचार्य दानादिकमें विघ्न करनेको अंतराय कर्मके आस्रवका कारण बताते हैं।

पुण्यके कारण जिस शुभयोगको पहले सामान्यसे बता चुके हैं उसको विस्तारसे कहता हूं। सुन! ॥ ५१ ॥

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, और परिग्रह इनके त्यागको व्रत कहते हैं। एक तो एक देश दूसरा सर्व देश। हे भद्र! सत्पुरुषोंने पहलेको अणुव्रत और दूसरेको महाव्रत कहा है ॥ ५२ ॥ इन व्रतोंकी स्थिरताके लिये सर्वज्ञ भगवान्‌ने पांच पांच भावनायें बताई

हैं। जहां सिद्धोंका निवास है उस महलपर चढ़नेकी इच्छा रखने वाले भव्यको इनके सिवाय दूसरी कोई भी सीढ़ियां नहीं हैं ॥ ५३ ॥ उत्कृष्ट मनोगुप्ति, एषणा आदिक तीन समिति—एषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग, प्रयत्न पूर्वक देखी हुई वस्तुका भोजन और पान, इन पांचोंको सत्पुरुष पहले अहिंसाव्रतकी भावनायें बताते हैं ॥ ५४ ॥ क्रोध, लोभ, भीरुता और हास्यका त्याग तथा सूत्रके अनुसार भाषण, विद्वान् पुरुष इन पांचोंको सत्यव्रतकी भावना बताते हैं ॥ ५५ ॥ विमोचित या शून्य गृहमें रहना, दूसरेको नहीं रोकना, साधर्मियोंसे कभी भी विसंवाद—झगड़ा न करना, और अच्छी तरहसे भिक्षान्नकी शुद्धि रखना, ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनायें हैं ॥५६॥ शून्य मकान आदिकमें न रहना, दूसरा जिसमें रह रहा है उन स्थानमें प्रवेश करना, या दूसरेको रोकना, दूसरेकी साक्षीसे भिक्षान्नकी शुद्धि करना, सहधर्मियोंसे विसंवाद करना ये पांच अचौर्य महाव्रतके दोष हैं ॥५७॥ स्त्रियोंकी राग कथा आदिके सुननेसे विरक्त रहना, उनके सौंदर्यके देखनेका त्याग, पूर्वकालमें भोगे रतोत्सवके स्मरणका त्याग, पौष्टिक और इष्ट आदि रसोंका त्याग, अपने शरीरके संस्कार करनेका त्याग, ये पांच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनायें बताई हैं ॥ ५८ ॥ समस्त इन्द्रियोंके मनोज्ञ और अमनोज्ञ पांचों विषयोंमें क्रमसे राग और द्वेषको छोड़नेको परिग्रह त्याग व्रतकी पांच भावनायें बताई हैं ॥ ५९ ॥ संसारके निवाससे जो चकित-भयभीत है उसको इस लोक और परलोकमें हिंसादिकके विषयमें अपाय और अवद्यदर्शनको भाना चाहिये। अथवा अभेद बुद्धिके द्वारा यह भाना चाहिये कि हिंसादिक ही स्वयं

आशय और अवद्यरूप हैं। प्रशम युक्त मनुष्योंका यह अंतर्धन ही सार है ॥ ६० ॥ समस्त सत्त्वोंमें मैत्रीकी भावना भानी चाहिये—दुःखकी अनुत्पत्तिकी अभिलाषा रखना चाहिये। जो गुणोंकी अपेक्षा अधिक हैं उनको देखकर प्रमुदित होना चाहिये, पीड़ित या दुःखियोंमें करुणा बुद्धि रखनी चाहिये, जो अविनयी—मध्यस्थ हैं उनमें उपेक्षा बुद्धि रखनी चाहिये ॥ ६१ ॥ शरीरके स्वभावका और जगत्की परिस्थितिका चिंतवन इसलिये करना चाहिये कि आचार्योंने इनको संवेग और वैराग्यका कारण बताया है। अतएव इनका निरंतर यथावत् चिंतवन करना चाहिये।

अब संक्षेपसे बंधका स्वरूप बताते हैं ॥ ६२ ॥ मिथ्यात्व भाव, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंधके कारण होते हैं। इस प्रसिद्ध मिथ्यात्वभावको आचार्य सात प्रकारका बताते हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन्! यह अविरति दो प्रकारकी है। इसीको असंयम भी कहते हैं। इसके मूल दो भेद—इन्द्रियासंयम और प्राणासंयम तथा उत्तर भेद बारह हैं। पांच इन्द्रिय और छठे मनके विषयकी अपेक्षासे छह भेद, और षट्कायकी अपेक्षा छह भेद ॥ ६४ ॥ हे नरनाथ! आगमके जाननेवाले सत्पुरुषोंने आठ प्रकारकी शुद्धियों और उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंके विषयकी अपेक्षासे जैनशासनमें प्रमादके अनेक भेद बताये हैं ॥ ६५ ॥ नो कषायोंके साथ साथ—नोकषायोंके मिलानेसे सत्पुरुष कषायके पच्चीस भेद बताते हैं। योगका सामान्यसे एक भेद है। विशेषकी अपेक्षा तीन (मन वचन काय) भेद हैं। तीनोंके उत्तर भेद पन्द्रह होते हैं—चार मनोयोग

(सत्य, असत्य, उभय, अनुभय), चार बचनयोग (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय), सात काययोग (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, आहारकमिश्र, कार्माण) ॥ ६६ ॥ पांच बंधके कारणोंमेंसे मिथ्यादृष्टिके ये सबके सब रहते हैं। इसके आगेके तीन गुणस्थानोंमें—सासादन, मिश्र, और असंयतमें मिथ्यात्वको छोड़कर बाकीके चार बंधके कारण रहते हैं। पांचमें देशविरत गुणस्थानमें मिश्ररूप अविरति—कुछ विरति कुछ अविरति रह जाती है। छठे गुणस्थानमें अविरति भी सर्वथा छूट जाती है; यहां पर केवल प्रमाद कषाय और योग ये तीन ही बंधके कारण रह जाते हैं। ऐसा प्राज्ञपुरुषोंने कहा है ॥ ६७ ॥ इसके आगे सातवें आठवें नौवें दशवें इन चार गुणस्थानोंमें प्रमादको छोड़कर बाकीके दो कषाय और योग बंधके कारण रह जाते हैं। फिर उपशांत कषाय क्षीणकषाय और सयोगकेवलीमें कषाय भी छूट जाती है और केवल योग ही बंधका कारण रह जाता है। चौदहवां गुणस्थानवाले जिनपति भगवान् योगसे रहित हैं अतएव वे बंधन क्रियासे भी रहित हैं। क्योंकि बंधका कारण योग है, उसके नष्ट हो जानेपर फिर बंध किस तरह हो सकता है ?॥ ६८ ॥ हे राजन्! यह जीव कषाययुक्त हो कर कर्मरूप होनेके योग्य जिन पुद्गलोंको निरंतर अच्छी तरह ग्रहण करता है उसीको जिन भगवान्ने बंध कहा है ॥ ६९ ॥ उदार बोध वाले—सर्वज्ञने संक्षेपसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इस तरहसे चार भेद बताये हैं। इनके ही कारणसे जीव जन्म मरणके वनमें अतिशय भ्रमण करता है ॥ ७० ॥ प्राणियोंके प्रकृति और प्रदेश ये दो बंध तो योगके निमित्तसे होते

हैं। और बाकीके दो–स्थिति और अनुभाग बंध सदा कषायके कारणसे होते हैं ॥ ७१ ॥ पहले–प्रकृति बंधके ये आठ भेद होते हैं–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय ॥ ७२ ॥ मुनिवरोंने प्रकृतिबंधके उत्तर भेद इस तरह गिनाये हैं–ज्ञानावरणके छब्बीस भेद, आयुके चार भेद, नाम कर्मके सरसठ, गोत्र कर्मके दो भेद, और अंतरायके पांच भेद ॥ ७३ ॥ आदिके तीन कर्मोंकी और अंतरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है। मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी है। नाम और गोत्र कर्मकी स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है। और आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है ॥७४॥ जघन्यस्थिति, आठो कर्मोंमेंसे वेदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त, और हे राजन्! शेष कर्मोंकी एक अंतर्मुहूर्तकी होती है। ऐसा सर्वज्ञ भगवान्ने कहा है ॥ ७५ ॥ जीव, ग्रहण–कर्मग्रहण करते समय अपने अपने योग्य स्थानोंके द्वारा समस्त कर्म प्रदेशोंमें आत्म निमित्तक समस्त भावोंसे अनंतगुण रसको उत्पन्न करता है इसीको अनुभाग बंध कहते हैं ॥ ७६ ॥ हे राजन्! पूर्णज्ञान–नेत्रके धारक जिन भगवान्ने ऐसा कहा है कि प्राणियोंको चार घातिकर्मोंका यह अनुभाग बंध एक दो तीन चार स्थानोंके द्वारा होता है। और एक ही समयमें स्वप्रत्ययसे शेषका दो तीन चार स्थानोंके द्वारा होता है। वह बंध शुभ और अशुभ रूप फलकी प्राप्तिका प्रधान कारण है ॥ ७७ ॥ जिनको जिन भगवान्ने नामप्रत्ययसे–समस्त कर्म प्रकृतियोंके कारणसे संयुक्त बताया है। वे एक ही क्षेत्रमें स्थित सूक्ष्म पुद्गल युगपत् समस्त भावोंसे या

सर्व कालमें योगोंकी विशेषतासे आकर आत्माके समस्त प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप प्रवेश कर अनंतानंत घन रूप प्रदेशोंसे युक्त होकर कर्मपनेको प्राप्त होते हैं उसको प्रदेशबंध कहते हैं ॥ ७९ ॥ इन कर्मोंमेंसे सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र इनको जिनभगवान्‌ने पुण्य कर्म और बाकीके सब कर्मोंको निश्चयसे पाप कर्म बताया है । अब श्रेष्ठ संवरतत्वका अच्छी तरह वर्णन करेंगे ॥ ८० ॥ अमोघ—जिनके वचन व्यर्थ न होसकें ऐसे जिन भगवान्‌ने आश्रवके अच्छी तरह रुक जानेको ही संवर कहा है। इसके द्रव्य और भावकी अपेक्षा दो भेद होजाते हैं—अर्थात् संवरके दो भेद हैं एक द्रव्यसंवर, दूसरा भावसंवर । इन दोनों ही प्रकारके संवरोंकी मुनिलोग ही प्रशंसा करते हैं—उनको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं ॥ ८१ ॥ संसारकी कारणभूत क्रियाओंके छूट जानेको मुनीश्वरोंने भावसंवर कहा है । और उसके छूटनेपर कर्मपुद्गलोंके ग्रहणका छूट जाना इसको निश्चयसे द्रव्यसंवर माना है ॥ ८२ ॥ यह सारभूत संवर गुप्ति समिति धर्म निरंतर अनुप्रेक्षा परीषहजय और चारित्रके द्वारा होता है । विश्वके ज्ञाता जिन भगवान्‌ने कहा है कि तपसे निर्जरा भी होती है । अर्थात् तप संवर और निर्जरा दोनोंका कारण हैं ॥८३॥ समीचीन योग निग्रहको गुप्ति कहते हैं । दोषरहित इस गुप्तिको विद्वानोंने तीन प्रकारका बताया है—एक वाग्गुप्ति कायगुप्ति तथा मनोगुप्ति । समीचीन प्रवृत्तिको समिति कहते हैं । इसके पांच भेद हैं—ईर्यासमिति, भाषासमिति, आदाननिक्षेपसमिति ॥ ८४ ॥ विद्वानोंने धर्मको लोकमें दश प्रकारका बताया है—उत्तमक्षमा, सत्य, मार्दव, आर्जव, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ॥८५॥

शत्रुओंके सदा बाधक होकर प्राप्त होते हुए भी कालुष्यका उत्पन्न न होना इसको तितिक्षा—सहनशीलता—क्षमा कहते हैं। आज्ञा—आगमका उपदेश और स्थितिसे युक्त समीचीन वचनोंके बोलनेको सत्य कहते हैं ॥ ८६ ॥ जाति आदिके मदरूप अभिमानका न होना इसको मार्दव कहते हैं। मन वचन और कायकी क्रियाओंमें वक्रता—कुटिलता न रखना इसको आर्जव कहते हैं। लोभसे छूटनेको शौच कहते हैं ॥ ८७ ॥ प्राणि और इन्द्रियोंके परिहारको सत्पुरुष संयम कहते हैं। कर्मोंका क्षय करनेके लिये जो तपा जाय उसको तप कहते हैं, इसके बारह भेद हैं ॥८८॥ यह मेरा है ऐसे अभिप्रायको छोड़कर शास्त्रादिकके देनेको दान कहते हैं इसी तरह निर्ममत्वको धारणकर गुरुमूलमें निवास करनेको आकिंचन्य कहते हैं। और वनिताविरागको ब्रह्मचर्य कहते हैं॥८९॥ श्रेयः सिद्धिके लिये प्राज्ञ पुरुषोंने ये बारह परीषह बताई हैं—अनित्य, अशरण, जन्म—संसार, एकता, अन्यता, अशुचिता, और अनेक प्रकारका कर्मोंका आश्रव, संवर, सम्यक्‌निर्जरा, जगत्-लोक, धर्म समीचीन वस्तुतत्व—स्वाख्याततत्वके बोधिकी दुर्लभता ॥९०॥ समस्त विद्वानोंको इस प्रकारसे सदा अनित्यताका चिंतवन करना चाहिये कि रूप यौवन आयु इन्द्रियोंका समूह या उनका विषय भोग, उपभोग, शरीर, वीर्य—शक्ति अपनी इष्ट वस्तुओंका समागम चक्षुरति (?) सौभाग्य या भाग्यका उदय इत्यादिक—आत्माके ज्ञान और दर्शनको छोड़कर बाकीके समस्त पदार्थ प्रकट रूपसे अनित्य हैं ॥ ९१ ॥ इस संसाररूप वनमें जहां मोहरूप दावानल बढ़ रहा है या जल रहा है और जिसको व्याधियोंने व्याधका रूप रख-

कर भयंकर बना दिया है, पड़ी हुई आत्माओंको ऐसा मृगियोंका टोला-झुंड समझना चाहिये जिनको मृत्युरूप मृगराजने शीघ्र ही अपने पंजेमें फसा लिया है अब उससे उनकी रक्षा करनेके लिये जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंके सिवाय दूसरे मित्र वगैरह क्या कर सकते हैं, कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकारसे संसारका उल्लंघन करने वाले भव्योंको संसारमें अशरणताका चिंतवन करना चाहिये ॥९२॥ गति, इन्द्रिय, योनि आदिक अनेक प्रकारके विपरीत बंधुओंके-शत्रुओंके द्वारा कर्मरूप कारणके वशसे जीवको जो जन्मान्तरकी प्राप्ति होती है इसीको नियमसे संसार कहते हैं अधिक क्या कहें जिस संसारमें यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि आत्मा अपना ही पुत्र हो जाता है। अब बताइये कि सत्पुरुष इसमें किस तरहकी रति करें? ॥ ९३ ॥ जन्म मरण व्याधि जरा-वृद्धावस्था वियोग इत्यादिके महान् दुःखरूप समुद्रमें निमग्न हो। हुआ मैं अकेला ही दुःखोंको निरंतर भोगता हूं। दूसरे न कोई मेरे मित्र हैं, न कोई शत्रु हैं, और न कोई जातीय बन्धु ही है। इस लोकमें और परलोकमें यदि कोई बन्धु है तो केवल धर्म ही है। इस प्रकार उत्कृष्ट एकत्वका चिंतवन करना चाहिये ॥ ९४ ॥ यद्यपि बंधकी अपेक्षा एकत्व हो रहा है तो भी मैं इस शरीरसे सर्वथा भिन्न हूं। क्योंकि मेरे और इसके लक्षणमें भेद है। आत्मा ज्ञानमय है और विनाश रहित है; किंतु शरीर अज्ञ है और नश्वर है। तथा मैं इन्द्रियोंसे अग्राह्य हूँ क्योंकि सूक्ष्म हूं किंतु शरीर इन्द्रियग्राह्य है इस प्रकार शरीरसे भिन्नत्वका चिंतवन करना चाहिये ॥ ९५ ॥ यह शरीर स्वभावसे ही हमेशा अशुचि रहता है, क्योंकि अत्यन्त अशुचि-

अपवित्र योनिस्थानसे यह उत्पन्न हुआ है। ऊपरसे केवल चामसे ढका हुआ है किंतु भीतरसे दुर्गंधियुक्त, कुत्सित नव द्वारोंसे युक्त, तथा कृमियोंसे व्याकुल है। और विष्टा मूत्रके उत्पन्न होनेका स्थान है, त्रिदोष—वात, पित्त, कफसे युक्त है, शिराजालसे बंधा हुआ है तथा ग्लानियुक्त है। इस तरह इस शरीरकी अशुचिताका चिंतवन करना चाहिये॥ ९६ ॥ जिनेन्द्र भगवानने इन्द्रियोंके साथ साथ कषायोंको आस्रवका कारण बताया है। ये विषय ही जीवोंको इस लोकमें तथा परलोकमें दुःखोंके समुद्रमें ढकेलनेवाले हैं। आत्मा इनके वशमें पड़कर उस चतुर्गतिरूप गुहा-का आश्रय लेता है जिसमें कि मृत्युरूपी सर्प बैठा हुआ है। इस प्रकारसे विवेकियोंको आस्रवके दोषोंका निरंतर चिंतवन करना चा-हिये ॥ ९७ ॥ जिस प्रकार समुद्रमें पड़ा हुआ जहाज छेद होजाने पर जलसे भरकर शीघ्र ही डूब जाता है उसी तरह आस्रवोंके द्वारा यह पुरुष भी अनंत दुःखोंके स्थानभूत जन्ममें निमग्न हो जाता है। इसलिये तीनों करणों—मन, वचन, कायके द्वारा आस्रवका नि-रोध करना—संवर करना ही युक्त है। क्योंकि जो संवर युक्त है वह शीघ्र ही मुक्त होता है। इस प्रकार सत्पुरुषोंको उत्कृष्ट संवर-का ध्यान करना चाहिये ॥ ९८ ॥ विशेषरूपसे इकट्ठा हुआ भी दोष जिस तरह प्रयत्नके द्वारा जीर्ण—उपशांत—नष्ट हो जाता है उसी प्रकार रत्नत्रयसे अलंकृत यह धीर आत्मा ईश्वर—महान् तपके द्वारा बंधे हुए और इकट्ठे हुए गाढ़ कर्मोंको भी नष्ट कर देता है। जो कातर है वह इन कर्मोंको नष्ट नहीं कर सकता। तथा तपके सिवाय दूसरे उपायसे नष्ट हो भी नहीं सकते। इस प्रकार भव्योंको

निरंतर निर्जराका विचार करना चाहिये ॥ ९९ ॥ जिनेन्द्र भगवान्-ने लोकका नीचे तिरछा और ऊपर जितना प्रमाण बताया है उसका तथा अच्छी तरह खड़े हुए मनुष्यके समान उसके आकारका और जिसने भक्तिपूर्वक स्वप्नमें भी कभी सम्यक्त्वरूप अमृतका पान नहीं किया ऐसी आत्माके समस्त लोकमें जन्ममरणके द्वारा हुए भ्रमणका भी चिंतवन करना चाहिये ॥ १०० ॥ तत्वज्ञान ही हैं नेत्र जिनके ऐसे जिन भगवान्ने हिंसादिक दोषोंसे रहित समीचीन धर्मको ही जगज्जीवोंके हितके लिये बताया है। यह धर्म ही अपार संसार समुद्रसे पारकर मोक्षका देनेवाला है। प्रसिद्ध और अनंत सुखोंका स्थानभूत मोक्षपदको उन्होंने ही प्राप्त किया है जो कि इसमें रत रहे हैं ॥ १०१ ॥ यह बात निश्चित है कि जगत्में इन चीजोंका मिलना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। सबसे पहले तो मनुष्य जन्मका ही मिलना दुर्लभ है, इसपर भी कर्मभूमिका मिलना दुर्लभ है, कर्मभूमिमें भी उचित देशका मिलना दुर्लभ है, देशमें भी योग्य कुल, कुल मिलनेपर भी निरोगता, निरोगताके मिलनेपर भी दीर्घ आयु, आयुके मिलनेपर भी आत्महितमें रति–प्रेम, आत्महितमें रति होनेपर भी उपदेष्टा–गुरु एवं गुरुके मिलनेपर भी भक्तिपूर्वक धर्मश्रवणका मिलना अत्यंत दुर्लभ है। यदि ये सब अति दुर्लभ सामग्रियां भी जीवको मिल जांय तो भी बोधि–सम्यग्ज्ञान या रत्नत्रयका मिलना अत्यंत दुर्लभ है। इस प्रकार रत्नत्रयसे अलंकृत धर्मात्माओंको निरंतर चिंतवन करना चाहिये ॥ १०२ ॥ सन्मार्ग–मुनिमार्ग न छूटे इसलिये, और कर्मोंकी विशेष निर्जरा हो इसलिये मुनिराजोंको समस्त परीषहोंको सहना चाहिये। जिसको प्राप्त कर फिर

मत्र धारण नहीं करना पड़ता उस श्रीको जो प्राप्त करना चाहते हैं, जो अपने हितमें प्रवृत्त हो चुके हैं या रहते हैं वे पुरुष कष्टोंसे कभी व्यथित नहीं होते हैं॥ १०३॥ क्षुधावेदनीय कर्मके उदयसे बाधित होनेपर भी जो मुनि लाभसे अलाभको ही अधिक प्रशस्त मानता हुआ न्यायके द्वारा—आगमोक्त विधिके अनुसार पिंडशुद्धि-भैक्ष्यशुद्धि करके भोजन करता है उसके क्षुधा परीषहके विजयकी प्रशंसा की जाती है॥ १०४॥ जो साधु दुःसह पिपासाको नित्य ही अपने हृदय कमण्डलुमें भरे हुए निर्मल समाधिरूप जलके द्वारा शांत करता है वही वीरमति साधु तृषाके बढ़े हुए संतापको जीतता है॥ १०५॥ जो साधु माघ मासमें उस समयकी हिम समान शीतल वायुकी ताड़नाका कुछ भी विचार न करके केवल सम्यग्ज्ञान-रूप कम्बलके बलसे शीतको दूर कर प्रत्येक रात्रिमें बाहर ही सोता है वही स्वभावसे धीर और वशी साधु शीतको जीतता है॥ १०६॥ जब कि वन वन्हियोंकी ज्वालाओंके द्वारा वन दहकने लगता है उस ग्रीष्मके समयमें पर्वतके उपर सूर्यकी उग्र—मध्यान्ह समयकी किर-णोंके सामने मुख करके खड़े रहनेसे जिसका शरीर तपगया है फिर भी जो एक क्षणके लिये भी धैर्यसे चलायमान नहीं होता उस प्रसिद्ध मुनिकी ही सहिष्णुता और उष्ण परीषहकी विजय समझनी चाहिये॥ १०७॥ दंश मशक आदिकका निरंकुश समूह आकर मर्म स्थानोंमें अच्छी तरह काट खाय फिर भी जो उदार क्षणके लिये भी योगसे विचलित नहीं होता उसीके दंशमशक परीषहका विजय जानना चाहिये॥ १०८॥ निस्संगता—निष्परिग्रहपना ही जिसका लक्षण है, जो याच्ञा और प्राणिवध आदि दोषोंसे रहित

है, दूसरोंके दुष्प्राप्य मोक्षलक्ष्मीको उत्सुक बनानेमें जो समर्थ है, कातर पुरुष जिसको धारण नहीं कर सकते, उस अचल व्रतको करनेवाले योगी की ही नग्नता पर्याप्त होती है। यह नग्नता नियमसे तत्त्वज्ञानी विद्वानोंके लिये मंगलरूप है ॥ १०९ ॥ इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंमें जिस अद्वितीय विमुक्तबुद्धिका मन इतना निरुत्सुक होगया है कि पहले भोगी हुई भोगसम्पदाका भी वह कभी स्मरण नहीं करता। किंतु जो मोक्षके लिये दुश्चर तपको तपता है वही ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ साधु रतिपरीषहको जीतता है ॥ ११० ॥ कामदेवरूप अग्निको उत्पन्न होनेके लिये जो अरणी[1] के समान है ऐसी कामिनियोंके द्वारा बाधित होने पर जो साधु अपने हृदयको इस तरह संकुचित करलेता जैसे कि कछुआ किसीसे बाधित होनेपर अपने अंगोंको समेट लेता है, वही महात्मा स्त्रियोंकी बाधाको सहता है ॥ १११ ॥ एक अतिथि देशांतरमें रहे हुए चैत्य–प्रतिमा मुनि गुरु या दूसरे अपने अभिमतोंकी वंदना करनेके लिये अपने संयमके अनुकूल मार्गसे होकर और अपने उचित समयमें चला जारहा है। जाते जाते पैरमें कंकड या पत्थर वगैरह ऐसे लगे कि जिससे उसका पैर फट गया, फिर भी उसने पूर्वकालमें जिन सवारी आदिके द्वारा वह गमन किया करता था उनका स्मरण तक नहीं किया ऐसे ही साधुके सत्पुरुष चर्यापरीषहका विजय मानते हैं ॥ ११२ ॥ पर्वतकी गुहा आदिकमें पहले अच्छी तरह देखकर—जमीनको शोधकर फिर वीरासन आदिक आसनोंकी

१ एक प्रकारकी लकड़ी होती है जिसको घिसते ही आग पैदा हो जाती है।

जो विधि है उस विधिके अनुसार वहां निवास करनेवाले समस्त उपसर्गोंको सहनेवाले, दुष्कर्मरूप शत्रुओंका भेदन करनेवाले मुनिके निषद्या परीषहका विजय मानना चाहिये ॥ ११३ ॥ ध्यान करनेमें या आगमका अध्ययन करनेमें जो परिश्रम पड़ा उससे निद्रा आगई पर उसको दूर कहां किया और कितनी देर तक? तो ऊंची नीची जगहमें और कुछ क्षणके लिये। फिर भी शरीरको चलायमान न किया, वह इस भयसे कि कहीं ऐसा करनेसे कुंथु आदिक जीवोंका मर्दन न हो जाय। ऐसा करनेवाले यमी—साधुके शय्यापरीषहका विजय माना जाता है ॥ ११४ ॥ जिनका हृदय मिथ्यात्वसे सदा लिप्त रहता है ऐसे मनुष्योंके क्रोधाग्निको उद्दीप्त करनेवाले और अत्यंत निंद्य तथा असत्य आदिक विरस वाक्योंको सुनते हुए भी जो उस तरफ हृदयका व्यासंग—उपयोग न लगाकर महती क्षमाको धारण करता है उसी सद्बुद्धि यतिके आक्रोश परीषहका विजय मानना चाहिये ॥ ११५ ॥ शत्रुगण अनेक प्रकारके हथियारोंसे मारते हैं, काटते हैं, छेदते हैं, तथा यंत्रमें डालकर पेलते हैं। इत्यादि अनेक उपायोंसे शरीरका हनन करते हैं तो भी जो वीतराग मोक्षमें उद्यत हुआ उत्कृष्ट ध्यानसे किसी भी तरह चलायमान नहीं होता वह असह्य भी वधपरीषहको सहता है ॥ ११६ ॥ नाना प्रकारके रोगोंसे बाधित रहते हुए भी जो बिलकुल स्वप्नमें भी दूसरोंसे औषध आदिककी याचना नहीं करता है किंतु जिस शांतात्माने ध्यानके द्वारा मोहको नष्ट कर दिया है स्वयं मालूम हो जाता है कि इसने याच्ञा परीषहको जीत लिया है॥ ११७॥ विनीत है चित्त जिसका ऐसा जो योगी महान् उपवासके करनेसे कृश हो जाने

पर भी भिक्षाका लाभ हो जानेकी अपेक्षा उसका लाभ न होना ही मेरे लिये महान् तप है ऐसा मानता है वह अलाभ परीषहको जीतता है ॥ ११८॥ एक साथ उठे हुए विचित्र रोगोंसे ग्रस्त होकर भी जो योगी जल्लौषधादिक अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त रहने पर भी सदा निस्पृह रहनेके कारण नियमसे शरीरमें महान् उपेक्षाको धारण करता है वही रोगपरीषहको जीतता है ॥ ११९ ॥ मार्गमें चलनेसे जिस साधुके तीक्ष्ण तृण—घास, कंटक, या कंकड़ आदिके द्वारा दोनों पैर विदीर्ण हो गये हैं फिर जो गमनादिक क्रियाओंमें प्रमाद रहित होकर प्रवृत्ति करता है, या अपनी दूसरी क्रियाओंमें विधि पूर्वक प्रवृत्ति करता है उस मुनिराजके तृण परीषहका विजय समझो ॥ १२० ॥ जिस योगीने ऐसा शरीर धारण कर रक्खा है कि जो प्रतिदिन चढ़ती हुई मलसंपत्ति—धूल मट्टी आदिके द्वारा ऐसा मालूम पड़ता है मानों वल्मीक हो, तथा जिसमें अत्यंत दुस्सह खाज प्रकट हो रही है, फिर भी जिसने मरण पर्यंतके लिये स्नान करनेका त्याग इस भयसे कर दिया है कि ऐसा करनेसे—स्नान करनेसे जलकायिक जीवोंका वध होगा। उस योगीके मलकृत परीषहके विजयका निश्चय किया जाता है ॥ १२१ ॥ जो अपने ज्ञान या तपके विषयमें कभी अभिमान नहीं करता, जो निंदा या प्रशंसादिकमें समान रहता है, वह प्रमाद रहित धीर मुनि सत्कार पुरस्कारपरीषहका जेता होता है ॥ १२२ ॥ समस्त शास्त्र समुद्रको पार कर गया है फिर भी जो साधु " पशु समान अल्पज्ञानी दूसरे मनुष्य मेरे सामने तुच्छ मालूम पड़ते हैं " इत्यादि प्रकारसे अपने ज्ञानका मद नहीं करता है। मोह वृत्तिको नष्ट कर देनेवाले उस

योगीके प्रज्ञापरीषहका विजय मानना चाहिये ॥१२३॥ 'यह कुछ नहीं समझता है' इसके खाली सींग ही नहीं है, नहीं तो निरा पशु है इस प्रकार नियमसे पद पदपर लोग जिसकी निंदा करते हैं फिर भी जो बिल्कुल भी क्षमाको नहीं छोड़ता है वह क्षमा गुणका धारक साधु अज्ञानजनित परीषह पीड़ाको सहता है ॥१२४॥ बढ़े हुए वैराग्यसे मेरा मन शुद्ध रहता है, मैं आगम समुद्रको भी पार कर गया हूं, मुनि मार्गको धारण कर चिरकालसे मैं तपस्या भी करता हूं, तो भी मेरे कोई लब्धि उत्पन्न न हुई—मुझे कोई ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई। शास्त्रोंमें जो इसका वर्णन मिलता है कि 'तप करनेसे अमुक ऋषिको अमुक ऋद्धि प्राप्त हुई थी' सो सब झूठा मालूम पड़ता है। इस प्रकारसे जो साधु प्रवचनकी निंदा नहीं करता है किंतु जिसने आत्मासे संक्लेशको दूर कर दिया है उसके कल्याणकारी अदर्शन परीषहका विजय माना जाता है ॥ १२५ ॥

चारित्र पांच प्रकारका है—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सांपराय, और यथाख्यात। इनमेंसे हे राजन्! आदिके चारित्रको-जिनेन्द्र भगवान्ने एक तो नियत कालसे युक्त, दूसरा अनियत कालसे युक्त इस प्रकारसे दो प्रकारका बताया है ऐसा निश्चय समझ ॥ १२६ ॥ व्रत या नियमोंमें जो प्रमादवश स्खलन होता है उसके सदागमके अनुसार नियमन करनेको छेदोपस्थापना कहते हैं, अथवा विकल्पसे निवृत्तिको छेदोपस्थापना कहते हैं। यह छेदोपस्थापना ही दूसरा चारित्र है जो कि निरुपम सुखका देनेवाला है, मुक्तिके लिये सोपान—सीढ़ीके समान है, पाप कर्मपर विजय प्राप्त करनेवाले मुनियोंका अमोघ अस्त्र है ॥ १२७ ॥ हे

राजन् ! तीसरे चारित्रका नाम परिहार विशुद्धि जान । समस्त प्राणियोंके वधसे अत्यंत निवृत्तिको ही परिहार विशुद्धि कहते हैं । ॥ १२८ ॥ हे नरेश ! चौथे अनुपम चारित्रका नाम सूक्ष्मसांपराय समझ । सत्पुरुष इस नामको अन्वर्थ बताते हैं। क्योंकि यह चारित्र कषायके अति सूक्ष्म होजानेपर होता है ॥१२९॥ जिन भगवान्ने पांचवें समीचीन चारित्रका नाम यथाख्यात कहा है । यह चारित्र मोहनीय कर्मके उपशम या क्षयसे होता है । और इसीके द्वारा आत्मा अपने यथार्थ स्वरूपको प्राप्त करता है ॥ १३० ॥

हे राजन् ! अब तू तपका स्वरूप समझ । यह तप सदा दो प्रकारका माना है—एक बाह्य दूसरा अभ्यंतर । इनमें भी प्रत्येकके नियमसे छह छह भेद माने हैं । उक्त दो भेदोंके जो प्रभेद हैं उनका भी मैं यहां संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ १३१ ॥ रागको शांत करनेके लिये, कर्मसमूहको नष्ट करनेके लिये दृष्ट फल मनोहर हो तो भी उस विषयमें अनपेक्षा—लालसारहितपनेके लिये, विधिपूर्वक ध्यान तथा आगमकी प्राप्तिके लिये, और संयमसंपत्तिकी सिद्धिके लिये जो धीर भक्तिपूर्वक अनशन करता है वह बुद्धिमान् इस एकके द्वारा ही दुष्ट मनको वशमें कर लेता है ॥ १३२ ॥ जागरणके लिये—निद्रा—प्रमाद न आवे इसलिये, बढ़े हुए दोषोंकी शांतिके लिये, समीचीन संयमके निर्वाहके लिये, तथा सदा स्वाध्याय और संतोषके लिये उदार बोधके धारक भगवान्ने अवमौदर्य—ऊनोदर तप बताया है ॥ १३३ ॥ एक मकान आदिकी अपेक्षासे—आज एक ही मकानमें भोजन करनेको जाऊंगा, आज इस प्रकारका भोजन मिलेगा तो भोजन करूंगा, आज ऐसा बनाव बनेगा तो भोजन क-

रूंगा, इत्यादि प्रकारसे ऐसा संकल्प करना कि जिससे चित्तका-मनका निरोध हो, इसको तीसरा-वृत्तिपरिसंख्यान तप समझ। यही तप तृष्णारूप धूलिको शांत करनेके लिये जलके समान है और यही अविनश्वर लक्ष्मीको वश करनेवाला अद्वितीय मन्त्र-वशीकरण है ॥ १३४ ॥ इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़ोंके मदका निग्रह करनेके लिये, निद्रा-प्रमादपर विजय प्राप्त करनेके लिये चौथा तप घृत प्रभृति पौष्टिक रसोंका त्याग बताया है। यह तप स्वाध्याय और योगकी सुख पूर्वक सिद्धिका निमित्त बताया है ॥१३५॥ आगमके अनुसार शून्य गृहआदिकमें एकांत शय्या आसनके रखनेको मुनिका पांचवां विविक्त शय्यासन नामका तप बताते हैं। यह तप स्वाध्याय ध्यान-ब्रह्मचर्य व्रत और योगकी सिद्धिके लिये माना है ॥१३६॥ ग्रीष्मऋतुमें आताप-धूपमें स्थित रहना-आतापन योग धारण करना, वर्षाऋतुमें वृक्षके मूलमें निवास करना, और दूसरे समयमें अनेक प्रकारका प्रतिमायोग धारण करना, हे राजन्! यही छट्ठा कायक्लेश नामका उत्कृष्ट तप है। इसीको सब तपोंमें प्रधान तप समझ ॥१३७॥ प्रमादके वश जो दोष लगते हैं उन दोषोंके सर्वज्ञकी आज्ञाके उपदेशके अनुसार जो विधान बना है उसीके अनुसार दूर करनेको प्रायश्चित्त पहला अंतरंग तप कहते हैं। इसके दश भेद हैं। दीक्षा आदिककी अपेक्षा अधिक वयवाले पुरुषोंमें जो अत्यंत आदर करना इसको विनय नामका दूसरा अंतरंग तप कहते हैं। यह चार प्रकारका है, और मुक्तिके सुखका मूल है ॥१३८॥ अपने शरीरसे, वचनोंसे या दूसरी समीचीन द्रव्योंसे आगमके अनुसार जो साधुओंकी उपासना करना इसको वैयावृत्य कहते हैं।

यह दश प्रकारका बताया है। मनःस्थितिकी शुद्धिके लिये जो निरंतर ज्ञानका अभ्यास करना इसीको शम और सुखरूप स्वाध्याय कहते हैं जो कि पांच प्रकारका माना है ॥१३९॥ 'इसका मैं स्वामी हूं' 'यह मेरी वस्तु है' इस प्रकारकी अपनी संकल्प बुद्धिके भले प्रकारसे छोड़देनेको जिनेन्द्र भगवान्ने व्युत्सर्ग बताया है। यह दो प्रकारका है। अब इसके आगे मैं प्रभेदोंके साथ ध्यानका वर्णन करूंगा ॥ १४० ॥

पूर्ण ज्ञानके धारक जिनेन्द्र भगवान्ने एकाग्र—एक विषयमें चिंता विचारके रोकनेको ध्यान कहा है। इसमें इतना और समझ कि संहननवालेके भी यह अंतर्मुहूर्त तक ही हो सकता है। इस ध्यानके चार भेद हैं ॥१४१॥ हे नरनाथ! वे चार भेद इस प्रकार बताये हैं—आर्त्त, रौद्र, धर्म्य, शुक्ल; इनमें आदिके दो ध्यान संसारके कारण हैं और अंतके दो ध्यान स्वर्ग तथा मोक्षके कारण हैं ॥१४२॥ आर्त्तध्यान भी चार प्रकारका समझो। अनिष्ट वस्तुका संयोग होनेपर उसके वियोगके लिये निरंतर चिंतवन करना यह पहला—अनिष्ट संयोग नामका आर्त्तध्यान है। इष्ट वस्तुका वियोग होजानेपर उसकी प्राप्तिके लिये चिंतवन करते रहना यह इष्ट वियोग नामका दूसरा आर्त्तध्यान है। अत्यंत बढ़ी हुई वेदनाको दूर करनेके लिये निरंतर चिंतवन करते रहना यह तीसरा वेदना नामका आर्त्तध्यान है। इस प्रकार निदान आगामी भोगोंकी प्राप्तिका संकल्प करनेके लिये निरंतर चिंतवन करते रहना यह निदान नामका चौथा आर्त्तध्यान है। इस आर्त्तध्यानकी उत्पत्ति आदिसे—प्रथम गुणस्थानसे लेकर छह गुणस्थानोंमें

बताई है॥ १४३॥ हिंसा झूंठ चोरी परिग्रहका संरक्षण इनकी अपेक्षासे जो निरंतर चिंतवन करना इसको नियमसे रौद्रध्यान कहा है। इस ध्यानका करनेवाला अविरत-पहले गुणस्थानसे लेकर चौथे गुणस्थान तकवाला जीव होता है। कदाचित् पांचवें गुणस्थान वाला भी होता है॥ १४४॥ जो भले प्रकार विचय-निरंतर चिंतवन करना यह धर्म्य ध्यान है, यह आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इन विषयोंकी अपेक्षासे उत्पन्न होता है इस लिये चार प्रकारका है। भावार्थ-धर्म्यध्यानके आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय ये चार भेद हैं। पदार्थ अति सूक्ष्म हैं और आत्मा कर्मोंके उदयसे जड़ बना हुआ है, इस लिये उन विषयोंमें आगमके अनुसार द्रव्यादिकका भले प्रकार चिंतवन करना इसको आज्ञा विचय धर्म्यध्यान कहते हैं॥ १४५॥ मिथ्यात्वके निमित्तसे अत्यंत मूढ़ होगया है मन जिनका ऐसे अज्ञानी प्राणी मोक्षको चाहते हुए भी जन्मांधकी तरह सर्वज्ञोक्त मतसे चिरकालसे विमुख रहकर सम्यग्ज्ञानरूप सन्मार्गसे दूर जा रहे हैं। इस प्रकारसे जो मार्गके अपायका चिंतवन करना इसको विद्वानोंने दूसरा-अपाय विचय धर्म्यध्यान बताया है॥ १४६॥ अथवा आत्मासे कर्मोंके दूर होनेकी विधिका निरंतर चिंतवन करना इसको भी जिन भगवान्ने अपाय विचय ध्यान कहा है। यद्वा ये शरीरी अनादि मिथ्यात्व रूप अहितसे किस तरह छूटें इस बातके निरंतर स्मरण करनेको भी अपाय विचय कहते हैं॥ १४७॥ ज्ञानावरणादिक कर्मोंके समूहका जो द्रव्यादिक निमित्तके वशसे उदय होता है जिससे कि विचित्र फलोंका अनुभव होता है; इसी अनुभवके विषयमें निरंतर भले

प्रकार चिंतवन करना इसको विपाक विचय धर्म्यध्यान कहते हैं। लोकका जो आकार है उसका अप्रमत्त होकर जो निरूपण करना या चिंतवना इसको संस्थान विचय नामका धर्म्यध्यान कहते हैं॥ १४८॥

ध्यानके द्वारा नष्ट हो गया है मोह जिनका ऐसे जिन भगवान्‌ने शुक्लध्यानके चार भेद बताये हैं। जिनमेंसे आदिके दो भेद पूर्ववित्—श्रुतकेवलीके होते हैं और अंतके दो भेद केवलीके होते हैं ॥ १४९ ॥ पूर्ण ज्ञानके धारक जिन भगवान्‌ने पहला शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क नामका बताया है जो कि त्रियोगीके होता है। और दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क नामका बताया है जो कि एक योग-वालेके ही होता है॥ १५० ॥ सूक्ष्म क्रियाओंमें प्रतिपादनके कारण तीसरे शुक्लध्यानका नाम ज्ञानके द्वारा देख लिया है समस्त जगतको जिन्होंने ऐसे सर्वज्ञ भगवान् सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति बताते हैं। यह ध्यान काययोगवालेके ही होता है ॥१५१॥ हे नरेन्द्र! समस्त दृष्टा भगवान्‌ने चौथे शुक्लध्यानका नाम व्युपरत क्रिया निःवृत्ति बताया है। दूसरोंको दुर्लभ यह ध्यान योग रहितके ही होता है ॥ १५२ ॥ हे कुशाग्रबुद्धे! आदिके दोनों शुक्लध्यान वितर्क और वीचारसे युक्त हैं, तथा दोनों ही का आश्रय एक श्रुतकेवली ही है। तीन लोकके लिये प्रदीपके समान जिन भगवान्‌ने दूसरे ध्यानको वीचार-रहित बताया है॥ १५३ ॥ प्रशान्त और अद्वितीय सुखको जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, तथा आचरण है प्रधान जिनका ऐसे ज्ञानीपुरुष वितर्क शब्दका अर्थ श्रुत बताते हैं, और वीचार शब्दका अर्थ, अर्थ, व्यंजन, और योग, इनकी संक्रांति—पलटन ऐसा बताते

हैं ॥ १५४ ॥ ध्येयरूप जो द्रव्य है उसको अथवा उस द्रव्यकी पर्यायको अर्थ ऐसा माना है। दूसरा व्यंजन है उसका अर्थ वचन ऐसा समझो। शरीर, वचन, और मनके परिस्पन्दको योग कहते हैं। विधिपूर्वक और क्रमसे इन समस्त अर्थादिकोंमेंसे किसी भी एकका आलम्बन लेकर जो परिवर्त्तन होता है उसको संक्रांति ऐसा कहा है ॥ १५५ ॥ वशमें कर लिया है इन्द्रियरूपी घोड़ोंको जिसने, तथा प्राप्त कर ली है वितर्क शक्ति जिसने ऐसा पापरहित और आदरयुक्त जो मुनि समीचीन पृथक्त्वके द्वारा द्रव्याणु या भावाणुका ध्यान करता हुआ तथा अर्थादिकोंको क्रमसे पलटते हुए मनके द्वारा ध्यान करता हुआ मोहकर्मकी प्रकृतियोंका सदा उन्मूलन करता है वही मुनि प्रथम ध्यानको विस्तृत करता है ॥१५६॥ विशेषताके क्रमसे अनंतगुणी अद्वितीय विशुद्धिसे युक्त योगको पाकर शीघ्र ही मूलमेंसे ही मोहवृक्षका छेदन करता हुआ, निरंतर ज्ञानावरण कर्मके बंधको रोकता हुआ, स्थितिके ह्रास और क्षयको करता हुआ निश्चल यति एकत्ववितर्क ध्यानको धारण करता है। और यही कर्मोंको नष्ट करनेके लिये समर्थ है ॥ १५७ ॥ अर्थ व्यंजन और योगके संक्रमणसे उसी समय निवृत्त होगया है श्रुत जिसका, साधुकृत उपयोगसे युक्त, ध्यानके योग्य आकारको धारण करनेवाला, अविचल है अंतःकरण जिसका, क्षीण हो गये हैं कषाय जिसके, ऐसा निर्लेप साधु फिर ध्यानसे निवृत्त नहीं होता। वह मणिके समान अथवा स्फटिकके समान स्वच्छ आकारको धारण करता है ॥१५८॥ एकत्ववितर्क शुक्ल ध्यानरूपी अग्निके द्वारा दग्ध कर दिया है समस्त घातिकर्मरूपी काष्ठको जिन्होंने ऐसे तीर्थंकर अथवा

दूसरे केवली ही पूर्ण और उत्कृष्ट केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं ॥ १५९ ॥ चूड़ामणिकी किरणजालसे युक्त तथा किसलय नवीन पल्लवके रूपको धारण करनेवाले हैं कर—हस्त जिनके ऐसे इन्द्र जिनकी वंदना करते हैं, जिसके भीतर तीनों जगत् निमग्न हो जाते हैं ऐसे अपने ज्ञानके द्वारा अनुपम, जिन्होंने संसार समुद्रको पार कर लिया है, जिन्होंने चंद्र समान विशद निर्मल यशोराशिके द्वारा दिशाओंको श्वेत बना दिया है, ऐसे भगवान् उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा कुछ कम एक कोटि पूर्व वर्ष पर्यंत भव्य समूहसे वेष्टित हुए विहार करते हैं॥१६०॥ जिसकी आयुकी स्थिति अंतर्मुहूर्तकी रह गई है, और इसीके समान जिसके वेदनीय नाम और गोत्र कर्मकी स्थिति रह गई है, वह जीव वचनयोग दूसरे मनोयोग तथा अपने बादर काययोग भी छोड़कर सूक्ष्मरूप किये गये काययोगका आलम्बन लेकर ध्यानके बलसे अयोगताको प्राप्त करता हुआ और कुछ काम नहीं करना केवल सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान ही करता है॥१६१—१६२॥ आयुकर्मकी स्थितिसे यदि शेष तीन कर्मोंकी—वेदनीय नाम, गोत्रकी स्थिति अधिक हो तो उन तीनोंकी स्थितिको आयुकी स्थितिके समान करनेके लिये वह योगी समुद्घात करता है॥१६३॥ अपनी आत्माको चार समयोंमें निर्दोष दंड, कपाट, प्रतर, और लोकपूर्ण, तथा इतने ही—चार ही समयोंमें आत्माको उपसंहृन—संकुचित—शरीराकार करके फिर पूर्ववत् तीसरे ध्यानको करता है ॥१६४॥ इसके बाद वह केवली उत्कृष्ट व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यानके द्वारा कर्मोंकी शक्तिको नष्ट कर पूर्ण अयोगताको प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त करता है ॥ १६५ ॥

अपने पूर्वकृत कर्मोंके छूटनेको निर्जरा कहा है। वह दो प्रकारकी है—एक पाकजा दूसरी अपाकजा। हे नरनाथ! जिस तरह लोकमें वनस्पतियोंके फल दो प्रकारसे पकते हैं, एक तो स्वयं काल पाकर और दूसरे योग्य उपाय—पालवगैरहके द्वारा। इसी तरह कर्म भी हैं। वे भी दो प्रकारसे पकते हैं—फल देकर निर्जीर्ण होते हैं, एक तो कालके अनुसार, दूसरे योग्य उपायके द्वारा ॥१६६॥ सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत—छट्ठे और सातवें गुणस्थानवाला, अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन करनेवाला, दर्शनमोहका क्षपक, चारित्रमोहका उपशमक, उपशांतमोह, चारित्रमोहका क्षपक, क्षीणमोह, और जिन-सयोगी अयोगी। इन स्थानोंमें क्रमसे असंख्यातगुणी कर्मोंकी उत्कृष्ट निर्जरा होती है ॥ १६७ ॥ इस प्रकार संवर और निर्जराके निमित्तभूत दो प्रकारके श्रेष्ठ तपका निरूपण किया। अब क्रमके अनुसार सुनने योग्य मोक्षतत्त्वका मैं वर्णन करूंगा सो तू एकाग्र चित्तसे उसको सुन ॥ १६८ ॥

बंधके हेतुओंका अत्यंत अभाव होजानेपर, और निर्जराका अच्छी तरहसे संनिधान होनेपर समस्त कर्मोंकी स्थितिका सर्वथा छूट जाना इसको जिनेन्द्र भगवान्‌ने मोक्ष बताया है ॥ १६९ ॥ समस्त मोहकर्मका पहले ही विनाशकर, क्षीण कषाय व्यपदेश-संज्ञा—नामको पाकर, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतरायको नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त करता है ॥ १७० ॥

असंयत सम्यग्दृष्टि आदिक आदिके चार गुणस्थानोंमेंसे किसी भी गुणस्थानमें विशुद्धि युक्त जीव मोहकर्मकी सात प्रकृतियोंका-मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व ये तीन और अनंतानु-

बंधी क्रोध मान माया लोभ ये चार कषायोंको नष्ट कर देता है ॥ १७१ ॥ निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यान गृद्धि, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रि। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ये चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण इन सोलह प्रकृतियोंका हे राजन्! अनिवृत्तिगुणस्थानमें स्थित हुआ शुद्धि सहित जीव क्षय करता है। और इसके बाद यतिराज उसी गुणस्थानमें आठ कषायोंको एक बारमें ही नष्ट कर देता है ॥१७२–७३–७४॥ इसके बाद प्राप्त किया है शुद्ध व्रत-चारित्रको जिसने ऐसा वह धीर उसी गुणस्थानमें नपुंसक वेदको नष्ट करता है, इसके बाद स्त्री वेदको नष्ट करता है, और उसके भी बाद समस्त छह नो कषायोंको युगपत नष्ट कर देता है ॥ १७५ ॥ इसके बाद उसी गुणस्थानमें पुंवेदका भी नाश कर देता है। इसके बाद तीन संज्वलन कषायका—क्रोध, मान, मायाका पृथक् पृथक् नाश करता है। लोभ संज्वलन सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानके अंतमें नाशको प्राप्त होता है ॥ १७६ ॥ इसके बाद क्षीण कषाय वीतराग गुण-स्थानपर स्थित हुए जीवके उपान्त्य समयमें—अंतके समयसे पूर्वके समयमें निद्रा और प्रचलाका नाश होता है ॥ १७७ ॥ और अंतके समयमें पांच ज्ञानावरण, चार प्रकारका दर्शनावरण तथा पांच प्रकारका अंतराय कर्म नाशको प्राप्त होता है ॥ १७८ ॥ इसके बाद दो वेदनीय—साता और असाता-मेंसे कोई एक वेदनीय, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी औदा-रिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पांच शरीर, आठ स्पर्श, पांच रस, पांच संघात, पांच वर्ण, अगुरु लघु, उपघात, परघात,

प्रशस्त और अप्रशस्त ऐसे दो प्रकारकी विहायोगति, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, सुस्वर, दुःस्वर, पर्याप्त, उच्छ्वास, दुर्भग, प्रत्येक काय, अयशस्कीर्त्ति, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र, पांचप्रकारके शरीर बंधन, छह संस्थान, तीन शरीरके आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो गंध इन बहत्तर प्रकृतियोंको अयोग गुणस्थानवाला जीव अंतसे पूर्वके समयमें नष्ट करता है ॥१७९–८३॥ और अंत्यके समयमें वह जिनेन्द्र दो वेदनीय कर्मोंमेंसे एक मनुष्य आयु, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्तक, त्रस, बादर, तीर्थंकर, सुभग, यशस्कीर्ति, आदेय, उच्च गोत्र, इन तेरह प्रकृतियोंको युगपत नष्ट करता है ॥ १८४–८५ ॥ दूर हो गई है लेश्या जिसकी ऐसा अयोगी शैलेशिता— ब्रह्मचर्यकी स्वामिताको पाकर अत्यंत शोभाको प्राप्त होता है सो ठीक ही है। रात्रिके प्रारम्भमें मेघोंकी रुकावटसे दूर हुआ पूर्ण शशी—चन्द्र क्या शोभाको प्राप्त नहीं होता है ? ॥ १८६ ॥ अत्यंत निरंजन निराम और उत्कृष्ट सुखको धारण करनेवाली तथा भव्य प्राणियोंको उत्कंठा बढ़ानेवाली मुक्ति केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्वको छोड़कर बाकीके औपशमिकादिक भावोंके तथा भव्यत्वके अभाव होनेसे होती है ॥१८७॥ इसके बाद सौम्य कर्मोंका क्षय हो जानेके अनंतर वह मूर्ति रहित मुक्त जीव लोकके अंत तक ऊपरको ही जाता है। और एक ही समयमें मुक्ति श्री उसका आलिंगन कर लेती है ॥ १८८ ॥ पूर्व प्रयोग, असंगता—शरीरसे अलग होना, कर्मबन्धसे छूटना तथा उसी तरहका गतिस्वभाव, इन प्रकृष्ट नियमोंसे आत्माके ऊर्ध्वगमनकी सिद्धि होती है ॥ १८९ ॥ तत्वैषी सत्पुरुषोंने ऊर्ध्व-

गतिका निश्चय करानेके लिये जो हेतु दिये हैं उन पूर्वोक्त चारों हेतुओंका दृढ़ निश्चय करानेके लिये क्रमसे चार समीचीन दृष्टांत दिये हैं, वे ये हैं—घुमाया हुआ कुंभारका चाक, लेपरहित तूंबी, अंडीका बीज, और अग्निकी शिखा। भावार्थ—संसार अवस्थामें जीव जिस प्रयोगके द्वारा गमन करता था उसी प्रयोगके द्वारा घूमता है उस प्रयोगके संसारसे छूटने पर भी गमन करता है। जैसे कुंभारका चाक प्रारम्भमें जिस प्रयोगके द्वारा निमित्तके हट जाने पर–डंडा आदिके दूरकर लेने पर भी पूर्व प्रयोगके द्वारा ही घूमा करता है। दूसरा हेतु असंगता है जिसका उदाहरण लेपरहित तूंबी है। अर्थात् जिस तरह तूंबके ऊपरसे मट्टीका लेप दूर कर दिया जाय तो वह नियमसे जलके ऊपर ही जाती है उसी तरह शरीरसे रहित होनेपर आत्मा नियमसे ऊपरको ही गमन करता है। तीसरा हेतु कर्मोंसे छूटना है जिसका उदाहरण अंडीका बीज बताया है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस तरह अंडीका बीज गवांमेंसे फूटकर जब निकलता है तब नियमसे ऊपरको ही जाता है उसी तरह कर्मोंसे छूटने पर जीव भी ऊपरको ही जाता है। चौथा हेतु ऊर्ध्वगमन करनेका स्वभाव बताया है जिसका दृष्टांत अग्निकी शिखा है। इसका भी अभिप्राय यह है कि जिस तरह बिना किसी प्रतिबंधक कारणके अग्निकी शिखा स्वभावसे ही ऊपरको गमन करती है उसी तरह जीव भी प्रतिबंधक कारणके न रहनेसे स्वभावसे ही ऊपरको गमन करता है॥ १९०॥ सिद्धिका है सुख जिनको ऐसे पूर्वोक्त सिद्ध भगवान् लोकके अंत तक ही क्यों जाते हैं उसके आगे भी क्यों नहीं जाते? इसका उत्तर यह है कि लोकके आगे धर्मास्ति-

काय नहीं है। सर्वज्ञ देव लोकके बाहरके क्षेत्रको धर्मास्तिकाय आदिसे रहित होनेके कारण अलोक कहते हैं। भावार्थ—अलोकमें गमन करनेका सहकारी कारण धर्म द्रव्य नहीं है इसलिये सिद्ध भगवान् वहां गमन नहीं कर सकते हैं ॥ १९१ ॥ वर्त्तमान और भूतसे सम्बन्ध रखनेवाली दो नयोंके बलसे नयोंक सम्यग्ज्ञाताओंने सिद्धोंमें भी क्षेत्र, काल, चारित्र, लिंग, गति, तीर्थ, अवगाह, प्रत्येक बुद्ध, बोधित, ज्ञान, अन्तर, संख्या, अल्पबहुत्व, इन कारणोंसे भेद माना है। भावार्थ—वर्त्तमानमें सिद्धोंका जो क्षेत्रादिक है वह पूर्वकालमें न था इसी अपेक्षासे उनमें परस्परमें भेद है ॥ १९२ ॥ इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्ने सभामें विधिपूर्वक उस चक्रवर्तीको नव पदार्थोंका उपदेश देकर विराम लिया। भगवान्की गो (वाणी; चंद्रमाके पक्षमें किरण) के द्वारा प्राप्त किया है समीचीन बोध (ज्ञान; दूसरे पक्षमें विकाश) को जिसने ऐसा वह राजा—चक्री इस तरह अत्यंत शोभाको प्राप्त हुआ जैसे पद्मबंधु—चंद्रके द्वारा नवीन पद्म ॥ १९३ ॥

इस प्रकार चक्रवर्तीने मोक्षमार्गको जानकर चक्रवर्तीकी दुरंत विभूतिको भी तृणकी तरह छोड़ दिया। ठीक ही है—निर्मल है जल जिसमें ऐसे सरोवरके स्थानको जानता हुआ मृग क्या फिर मृगतृष्णिका—मरीचिकामें जल पीनेका प्रयत्न करता है? ॥१९४॥ अपने बड़े पुत्र अरिंजयको प्रीतिपूर्वक समस्त राज्य देकर सोलह हजार राजाओंके साथ क्षेमंकर जिनराज—आचार्यके पास जाकर अपने कल्याणके लिये भक्तिपूर्वक दीक्षा धारण की ॥ १९५ ॥ मनमें शुद्ध प्रशमको धारण कर वह विधि पूर्वक घोर किंतु समीचीन

तप तपने लगा । लोकमें भव्यजनोंका वत्सल होनेसे प्रियमित्रने वस्तुतः प्रिय मित्रताको प्राप्त किया ॥ १९६ ॥

कुछ दिन बाद आयुके अंतमें तपके द्वारा कृषताको प्राप्त हुए शरीरको विधिसे—सल्लेखनाके द्वारा छोड़कर अपने अनल्प पुण्योंसे अर्जित और खेदों—दुखोंसे वर्जित सहस्रार कल्पको प्राप्त किया ॥ १९७ ॥ वहां पर अठारह सागरकी है आयु जिसकी और स्त्रियोंके मनको वल्लभ तथा हंसका है चिन्ह जिसका ऐसे रुचक नामके उत्कृष्ट विमानमें रहते हुए उस सूर्यप्रभ नामके देवने अपने शरीरकी मनोज्ञ कांतिके द्वारा सूर्यकी बालप्रभाको भी लज्जित करते हुए मनोज्ञ ' अष्टगुणविशिष्ट ' दैवी संपत्तिको प्राप्त किया ॥ १९८ ॥

इस प्रकार अशग कविकृत वर्धमान चरित्रमें " सूर्यप्रभ संभव " नामक पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

सोलहवां सर्ग ।

स्वर्ग—दुःखोंके सम्बन्धसे रहित, तथा अचिंत्य है वैभव जिनका ऐसे नाना प्रकारके स्वर्गीय सुखोंको भोगकर, वहांसे उतर—स्वर्गसे आकर यहां (पूर्व देशकी श्वेतातपत्रा नगरीमें) तू स्वभावसे ही सौम्य नन्दन नामका राजा हुआ है ॥ १ ॥ जिस प्रकार मेघ वायुके वशसे आकाशमें इधरसे उधर घूमा करता है उसी तरह यह जीव कर्मके उदयसे नाना प्रकारके शरीरोंको धारण करता तथा छोड़ता हुआ संसार समुद्रमें इधर उधर भटकता फिरता है ॥ २ ॥ क्योंकि जो मोक्षका मार्ग है और जिससे युक्त आत्माको मुक्ति शीघ्र ही प्राप्त

होता है, इसी लिये उस अविनश्वर सम्यग्दर्शनको उत्कृष्ट समझ। मनुष्य इसको बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर सकता है ॥ ३ ॥ जिस जीवके संसारको नष्ट करने लिये गुप्तियोंके द्वारा रोक दिया है पापकर्मोंका आस्रव जिसने ऐसा चारित्र होता है वही जीव निश्चयसे जगत्में विद्वानोंका अग्रणीय है और उसीका जन्म भी सफल है ॥ ४ ॥ अत्यंत मजबूत जमी हुई है जड़ जिसकी ऐसे वृक्षको जिस तरह महान् मतंगज—हस्ती शीघ्र ही उखाड़ डालता है उसी तरह अत्यंत कठोर जमा हुआ है मूल जिसका ऐसे मोहको वह जीव शीघ्र ही नष्ट कर देता है जो कि प्रशमरूप सम्पत्तिसे युक्त है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार सरोवरके मध्यमें बैठे हुए मनुष्यको अग्नि नहीं जला सकती उसी प्रकार शान्ति करनेवाला और पवित्र ज्ञानरूप जल जिसके हृदयमें मौजूद है उसको, समस्त जगत्पर कर लिया है आक्रमण जिसने ऐसी भी कामदेवकी अग्नि जला नहीं सकती है ॥ ६ ॥ संयमरूप गज पर चढ़े हुए, निर्मल प्रशमरूप हथियारको लिये हुए, क्षमारूपी अत्यंत दृढ़ बख्तरको पहरे हुए व्रत और शीलरूप योद्धाओं—अङ्गरक्षकोंके द्वारा सुरक्षित मुनिराजके सामने समीचीन तपश्चरणरूप रणमें पापकर्मरूप शत्रु उद्धत है तो भी ठहर नहीं सकता है। जो श्रेष्ठ तपका अवलम्बन लेनेवाले हैं उनको दुर्जय कुछ नहीं है ॥ ७-८ ॥ इन्द्रिय और मनको जिसने अच्छीतरह वशमें कर लिया है, जिसने प्रशमके द्वारा मोहकी सम्पत्तिको नष्ट कर दिया है, जिसका चारित्र हीनतासे रहित है, ऐसे सत्पुरुषको इसी लोकमें क्या दूसरी मुक्ति मौजूद नहीं है? ॥ ९ ॥ जो योद्धा युद्धके मौके पर भयसे विह्वल हो जाता है

उसका तीक्ष्ण हथियार भी केवल निष्फल ही है। उसी तरह जो मनुष्य अपनी चर्यामें विषयोंमें–निरत–तल्लीन रहता है उसका बढ़ा हुआ भी श्रुत व्यर्थ ही है ॥ १० ॥ विबुधों–विद्वानों या देवोंके द्वारा पूजित, अंधकारको दूर करनेवाली, तथा जिससे अमृत टपक रहा है ऐसी मुनिराजकी वाणीके द्वारा निकट भव्य इस तरह प्रबुद्ध हो जाता है जैसे लोकमें शशि रश्मि–चन्द्रमाकी किरणसे पद्म प्रबुद्ध–विकशित हो जाता है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके गुणोंसे युक्त, अचिंत्य, अद्भुत, और अत्यंत दुर्लभ, रत्नके समान मुनि-वाक्योंको दोनों कर्णोंमें धारण कर भव्य जीव जगत्में कृतार्थ हो जाता है ॥ १२ ॥ अवधिज्ञान ही हैं नेत्र जिनके ऐसे वे मुनिराज तत्वज्ञानी राजा नंदनको पूर्वोक्त प्रकारसे उसके पूर्व भवोंको–सिंहसे लेकर यहां तकके भवोंको तथा पुरुषार्थ तत्वको भी अच्छी तरह बताकर विरत हो गये ॥ १३ ॥ झरते हुए हैं जल बिन्दु जिसमें तथा चन्द्रमाकी किरणजालसे सम्बन्ध हुई चन्द्रकांत मणि जिस प्रकार शोभाको प्राप्त होती है उसी प्रकार मुनिराजके वचनोंको धारण कर पवित्र हर्षके अश्रुओंको बहाता हुआ नन्दन राजा भी शोभाको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ भक्तिके प्रसारसे गद्गद हो गया है शरीर जिसका ऐसा वह राजा मुकुटके ऊपर किनारे पर मुकुलित करपल्लवोंको लगाकर नमस्कार कर इस तरहके वचन बोला ॥ १५ ॥

जिस प्रकार रत्न जनताके हितके लिये विचित्र मणिगणोंको छोड़नेवाले समुद्र जगत्में विरल हैं, उसी तरह भक्त जनताके हितके लिये प्रयत्न करनेवाले मुनि भी विरल–दुर्लभ हैं ॥ १६ ॥ इसमें भी प्रकाशमान हैं अवधिज्ञान रूप नेत्र जिनके ऐसे मुनि तो

कितने दुर्लभ हैं—अर्थात् बहुत ही दुर्लभ हैं। रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त कर दिया है जल या स्थल संपत्तिको जिन्होंने ऐसे जलाशय अत्यंत दुर्लभ ही होते हैं ॥ १७ ॥ हे देव! आपके समक्ष अप्रिय शब्दोंके व्यर्थ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? हे ईश! इतना भी कहना बश है कि आपके बचन आज मेरे जीवनको सफल करेंगे यह निश्चय है ॥ १८ ॥ इस तरहके बचनोंको धीरताके साथ कहकर भूपालने समुद्रवसना पृथ्वीको उसका शासन करनेके लिये अत्यंत नम्र उस पुत्र वर्मइरको देदी ॥ १९ ॥ इस प्रकार राज्यलक्ष्मीको छोड़कर राजा नंदनने दश हजार राजाओंके साथ जगत्प्रसिद्ध प्रोष्ठिल मुनिके निकट उनको प्रणामकर तपश्चर्या—दीक्षा धारण की ॥ २० ॥ द्वादशांगरूप निर्मल वीचियां जिसमें विलास करती हैं तथा जो अनेक प्रकारके अंग बाह्यरूप भंवरोंसे व्याकुल—व्याप्त है ऐसे श्रुतसागरको वह योगी अपने महान् बुद्धिरूपी भुजाके बलसे शीघ्र ही पार कर गया ॥ २१ ॥ विषयोंसे पराङ्मुख मनके द्वारा अनेकबार श्रुतार्थका विचार—मनन करते हुए वह योगी अंतरंग और बाह्य इस तरह दो प्रकारके दोनोंके भी छह छह भेदोंकी अपेक्षा बारह प्रकारके अद्वितीय और घोर तपको तपनेका उपक्रम करने लगा ॥ २२ ॥ वह निश्चित मुनि अनभिलषित रागकी शांतिके लिये आत्मदेहके फलमें लोलुपताको छोड़ता हुआ अप्रमत्त होकर ध्यान और पठनकी सुखपूर्वक सिद्धि करनेवाला अनशन करने लगा ॥ २३ ॥ जागरण और वितर्क—श्रुत परिचित सामायिककी सिद्धिके लिये वह निर्मल बुद्धि मुनि निर्दोष पराक्रमका अवलम्बन लेकर विधिपूर्वक परिमित भोजन—

ऊनोदर तप करता था ॥ २४ ॥ भूखसे कृष हुए भी उन मुनिने अभिलाषाओंके प्रसारको दो तीन मकानोंमें जानेकी अपेक्षा उचित और विधियुक्त वृत्तिपरिसंख्यान तपके द्वारा अच्छीतरह रोक लिया ॥ २५ ॥ जीत लिया है अपनी इन्द्रियोंकी चपलताको जिसने ऐसे उस मुनिने रस परित्याग तपको धारण कर हृदयमेंसे नियमसे क्षोभका प्रसार करनेवाले कारणोंको रोक दिया ॥ २६ ॥ वह समर्थबुद्धि ध्यानसे परिचित श्रेष्ठ चौथे व्रतकी रक्षा करनेके लिये जहां जन्तुओंको बाधा नहीं होती ऐसे एकांत स्थानोंमें शयन आसन और स्थिति—निवास करता था ॥ २७ ॥ अचल है धैर्य जिसका ऐसा वह मुनि दुःसह ग्रीष्मऋतुमें तपोंके द्वारा—तपस्या करते हुए सूर्यके सम्मुख रहता—आतापन योग धारण करता था । जिसने अपने शरीरसे रुचिको छोड़ दिया है ऐसे महापुरुषको यहांपर संतापका कारण क्या हो सकता है ॥ २८ ॥ वर्षाऋतुमें अति सघन मेघ समूहसे वर्षते हुए जलसे भींज गया है शरीर जिसका ऐसा भी वह मुनि वृक्षोंके मूलमें निवास करता था । अहो ! निश्चल और प्रशांत पुरुषोंका चरित्र अद्भुतताका ठिकाना है ॥ २९ ॥ हिम पड़नेसे भयप्रद शिशिर ऋतुमें बाहर—जंगलमें रात्रिके समय निर्भय सदाचारका पालन करनेवाला वह योगी शयन—निवास करता था । क्या महापुरुष दुष्कर कार्य करनेमें भी मोहित होते हैं ? ॥ ३० ॥ ध्यान, विनय, अध्ययन, तीनों गुप्तियां, इत्यादिके द्वारा धारण किया है महान् संवर जिसने ऐसा वह अप्रमत्त योगी उत्कृष्ट तथा अनुपम अंतरंग तपको भी करता था ॥ ३१ ॥ उत्कृष्ट ज्ञानके द्वारा अत्यंत निर्मल है बुद्धि जिसकी ऐसा वह साधु तीर्थंकर इस नामकर्मकी

जो कारण मानी हैं उन सोलह प्रकारकी भावनाओंको भाता था ॥ ३२ ॥ बढ़ा हुआ है ज्ञान जिसका तथा महान् धैर्यका धारक वह निश्चल मुनि जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदिष्ट मार्गमें मोक्षके लिये चिरकाल तक दर्शन विशुद्धिकी भावना करता था ॥ ३३ ॥ मोक्षके कारणभूत पदार्थोंसे घटित भक्तिसे भूषित वह मुनि गुरुओंकी नित्य ही भक्तिपूर्वक अप्रतिम विनय करता था ॥ ३४ ॥ निर्मल है विधि जिसकी ऐसी समाधिके द्वारा शीलकी वृत्ति—बाड़से वेष्टित व्रतोंमें सदा निरतीचारताका अच्छी तरह आचरण करता हुआ गुप्तियोंका पालन करता था ॥ ३५ ॥ नव पदार्थोंकी विधि—स्वरूपका है निरूपण जिसमें ऐसे वाङ्मयका निरंतर अभ्यास करता हुआ समस्त जगत्‌के पूर्ण तत्त्वोंको निःशंक होकर इस तरह देखता था मानों ये सब उसके सामने ही रक्खे हों ॥ ३६ ॥ इस दुरंत संसार वनसे मैं अपनेको किस तरह दूर करूं इस तरह नित्य ही विचार करनेवाले इस साधुकी निर्मल बुद्धि समादिके बराबर विराजमान हुई ॥ ३७ ॥ जान लिया है मोक्षका मार्ग जिसने ऐसे दिनरात चंचलता रहित बुद्धिके धारक साधुने जब अपनेसे "मैं" और "मेरा" यह भाव छोड़ दिया है—इस वस्तुका मैं स्वामी हूं, यह मेरी वस्तु है जब ऐसा भाव ही छोड़ दिया तब वह अपने हृदयमें लोभके अंशको भी किस तरह रख सकता है ॥ ३८ ॥ वह तपोधन अपनी अद्वितीय शक्तिको न छिपाकर तप करता था। भला कौन ऐसा मतिमान् होगा जो कि अनुपम भविष्यत् सुखकी अभिलाषासे शक्ति भर प्रयत्न न करता हो ॥ ३९ ॥ भेदक कारणके उपस्थित होनेपर वह अपना समाधान करता था। अथवा ठीक ही है—ज्ञान

लिया है पदार्थोंकी गति—स्वभावको जिसने ऐसा मनुष्य क्या कष्टोंमें पड़ने पर भी उत्कृष्ट धैर्यको छोड़ देता है? ॥४०॥ छोड़ दिया है सब प्रकारके ममत्वको जिसने तथा निपुण है बुद्धि जिसकी ऐसा वह साधु यदि गुणियोंमें कोई रोगी होते तो उनका प्रतीकार करता था। ठीक ही है। जो सज्जन हैं वे सदा परोपकारमें ही प्रयत्न करते हैं ॥ ४१ ॥ निर्दोष है चेष्टा—चारित्र जिसका ऐसा वह साधु भावपूर्ण विशद हृदयसे बहु श्रुतोंकी, अर्हतोंकी, गुरुओं-आचर्योंकी, तथा समीचीन आगमकी भक्ति करता था ॥ ४२ ॥ वह कालको न गमाकर छह प्रकारकी समीचीन नियम विधियों—षडावश्यकोंमें उद्यत रहता था। जो अपना हित करनेमें उद्यत हैं, सकल विमल अवगम—आगमके ज्ञाता हैं वे प्रमादका कभी अवलम्बन नहीं लेते ॥ ४३ ॥ श्रेष्ठ वाङ्मय, तप, और जिनपतिकी पूजाके द्वारा निरंतर धर्मको प्रकाशित करता हुआ वह साधु सदा जिन शासनकी प्रभावना करता था ॥ ४४ ॥ खड्गकी धारके समान तीक्ष्ण और अत्यंत दुष्कर तपको आगमके अनुसार तपता हुआ वह ज्ञाननिधि अपने साधर्मियोंमें स्वभावसे ही वात्सल्य रखता था ॥ ४५ ॥ विधि पूर्वक कनकावली और रत्नमालिकाको समाप्त कर उसके बाद मुक्तिके लिये मुक्तावली तथा महान् सिंह विलसित उपवास करता था ॥ ४६ ॥ भव्यरूप चातक समूहके हर्षको निरंतर बढ़ाता हुआ ज्ञानरूप जलके द्वारा शांत कर दिया है पाप-रजको जिसने ऐसा साधु मुनियोंमें आकाशमें मेघकी तरह शोभाको प्राप्त होता था ॥ ४७ ॥ निर्भय होकर गुप्ति और समितियोंमें प्रवृत्ति करनेवाला वह महाबुद्धि जितेन्द्रिय निर्मल शरीरका धारक

होकर भी क्षीण शरीर था और परिग्रह रहित होकर भी महर्द्धि—महान् ऋद्धियोंका धारक था ॥ ४८ ॥ हृदयमें महान् क्रोधाग्निको अप्रमाण क्षमारूप अमृत जलसे बुझा दिया। अहो! समस्त तत्ववेत्ताओंकी कुशलता नियमसे अचिन्त्य होती है ॥ ४९ ॥ उसने उचित मार्दवके द्वारा मनमेंसे मानरूप विषका निराकरण किया। जो कृतबुद्धि हैं वे यमियोंके ज्ञानका यही उत्कृष्ट फल बताते हैं ॥५०॥ स्वभावसे ही सौम्य और विशद है हृदय जिसका ऐसे उस मुनिको माया कदाचित् भी न पा सकी। निर्मल किरणसमूहके धारक चन्द्रमाको अंधकारपूर्ण रात्रि किस तरह पा सकती है? ॥ ५१ ॥ जिसको हृदयमें अपने शरीरके विषयमें भी रंचमात्र भी स्पृहा नहीं है उसने लोभ शत्रुको जीत लिया तो इसमें मनीषियोंको आश्चर्यका स्थान क्या हो सकता है? ॥ ५२ ॥ अंधकारको दूर करनेवाले अत्यंत निर्मल मुनियोंके गुणगण अत्यंत निर्मल उस मुनिराजको पाकर इस तरह अधिक शोभाको प्राप्त हुए जैसे स्फटिकके उन्नत पर्वतको पाकर चन्द्रकिरण शोभाको प्राप्त हों ॥ ५३ ॥ अल्प है मूल जिसका ऐसे जीर्ण वृक्षको जैसे वायु मूलमेंसे उखाड़ डालती है उसी तरह संगरहित है समीचीन आचरण जिसका ऐसे उस उदारमतिने मदको बिलकुल मूलमेंसे उखाड़ डाला ॥ ५४ ॥ अहो! और तो कुछ नहीं यह एक बड़ा आश्चर्य था कि आत्मामें स्थित—पूर्व-बद्ध समस्त कर्मोंको तपके द्वारा जला दिया फिर भी स्वयं बिलकुल भी नहीं तपा—जला ॥ ५५ ॥ जो भक्ति और नमस्कार करता उससे तो तुष्ट नहीं होता था, जो द्वेष करता उसपर कोप नहीं करता, अपने अनुसार चलनेवाले यतियोंपर प्रेम नहीं करता था।

ठीक ही है–सत्पुरुषोंका सब जगह समभाव ही रहता है॥ ५६॥ प्रशम संपत्तिपर विराजमान उस मुनिको पाकर तप भी शोभाको प्राप्त हुआ। मेघोंके हट जानेपर निर्मल सूर्यमंडलको पाकर क्या मेघमार्ग नहीं शोभता है? ॥ ५७ ॥ अति दुःसह परीषहोंके आने पर भी वह अपने धैर्यसे चलायमान–च्युत न हुआ। प्रचण्ड वायुसे ताड़ित होने पर भी समुद्र क्या तटका उल्लंघन कर जाता है? ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार शरद् ऋतुके समयमें अमृत रस जिनसे टपक रहा है ऐसी शीतल किरणें चन्द्रमाको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार इस प्रशमनिधिके पास जनताके हितके लिये अनेक लब्धियां आ पहुंची ॥ ५९ ॥ विरहित बुद्धि अल्पज्ञानी भी मनुष्य उस विमलाशयको पाकर अनुपम धर्मको ग्रहण कर लेते थे। दयासे आर्द्र है बुद्धि जिसकी ऐसा मनुष्य क्या मृगोंको शांत नहीं बना देता है? ॥ ६० ॥ अपने अभिमत अर्थकी सिद्धिको देखकर भव्यगण उसकी सेवा करते थे। पुष्पभारसे नम्र हुए आमके वृक्षको हर्षसे क्या भ्रमरपङ्क्ति घेर नहीं लेती है? ॥ ६१ ॥ इस प्रकार गुणगणोंके द्वारा श्री वासुपूज्य भगवान्‌के तीर्थको प्रकाशित करता हुआ वह योगिराज चिरकाल तक ऐसे समीचीन और उत्कृष्ट तपको करता रहा जो दूसरे यतियोंके लिये अत्यंत दुश्चर था ॥ ६२ ॥ इस तरह कुछ समय बीत जाने पर वह मुनिराज आयुके अंतमें जब एक महीना बाकी रहा तब विधिपूर्वक प्रायोपवेशन–सल्लेखना व्रत करके विन्ध्यगिरिके ऊपर धर्म-ध्यान पूर्वक प्राणोंका परित्याग कर प्राणत कल्पमें पहुंचा ॥ ६३ ॥ वहांपर वह पुष्पोत्तर विमानमें पुष्प समान सुगंधियुक्त है देह जिसकी ऐसा बीस सागर आयुका धारक देवोंका

स्वामी हुआ। महान् तपके फलसे क्या नहीं मिल सकता है? ॥ ६४ ॥ उसको 'यह इन्द्र उत्पन्न हुआ है' ऐसा समझकर सिंहासनपर बैठाकर समस्त देवोंने उसका अभिषेक किया, और रक्तकमलकी द्युतिके हरण करनेवाले उसके चरणयुगलको मुकुटोंपर इस तरह लगाकर मानों ये क्रीडावतंस ही हैं प्रणाम किया ॥६५॥ अविनश्वर, अवधिज्ञानके धारक इस इन्द्रकी देवगण 'यह भावी तीर्थंकर हैं ऐसा समझकर पूजा करते थे। अप्सराजनोंसे वेष्टित वह भी हर्षसे वहीं रमण करता था। उसके गलेमें जो नीहार—हिमकी द्युतिको हरनेवाले हारकी लड़ी पड़ी थी उससे ऐसा मालूम पड़ता था मानों मुक्ति लक्ष्मीको उत्सुकता दिलानेके लिये गुणसम्पत्तिने गलेमें आलिंगन कर रक्खा है ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अशग कवि कृत वर्धमान चरित्रमें 'नंदन पुष्पोत्तरविमान' नामक सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ।

सत्रहवां सर्ग।

इसी भरतक्षेत्रमें विदेह नामका लक्ष्मीसे पूर्ण देश है जो कि उन्नत—महापुरुषोंका निवासस्थान है, समस्त दिशाओंमें अत्यंत प्रसिद्ध है। जो ऐसा मालूम पड़ता है मानों स्वयं पृथ्वीका इकट्ठा किया हुआ अपनी कांतिका सारा सार है ॥१॥ जहांकी, गौओंके धवलमंडलसे सदा व्याप्त, और इच्छानुसार बैठे हुए हरिणसे अंकित है मध्य देश जिनका तथा बालकको भी चिरकाल तक दर्शनीय ऐसी समस्त अटवीं बनीं ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों चंद्रमाकी

मूर्ति ही हों ॥ २ ॥ जिस देशमें खलता (दुर्जनता; दूसरे पक्षमें खलिहान) और कहीं नहीं थी, थी तो केवल खेतोंमें ही थी। कुटिलता (मायाचार; दूसरे पक्षमें टेढ़ापन) और कहीं नहीं थी, थी तो केवल ललनाओंके केशोंमें ही थी। मधुप प्रलाप (मद्य पीनेवालों की बकवाद; दूसरे पक्षमें भ्रमरोंका झंकार) और कहीं नहीं था, था तो केवल कमलोंमें ही था। पंक स्थिति (कीचड़की तरह रहना; दूसरे पक्षमें कीचड़में रहना) और कहीं नहीं थी, थी तो केवल धानके पेड़ोंमें ही थी। एवं विचित्रता भी शिखिकुल—मयूरोंमें ही देखनेमें आती थी ॥ ३ ॥ अपने पर लगी हुई नागलताकी आभासे या आभाके समान श्याम वर्ण बना दिया है आकाशको जिन्होंने ऐसे सुपारीके वृक्षोंसे चारों तरफसे व्याप्त नगर जहां पर ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों प्रकाशमान महान् मरकत मणियों—पन्नाओंके पाषाण बने हुए अत्युन्नत परकोटाओंकी पङ्क्तिसे ही वेष्टित—घिरे हुए हों॥४॥ आश्रितजनोंकी तृष्णाको सदा दूर करनेवाले, अंतरंगमें प्रशान्ति—निर्मलताको धारण करनेवाले, अपने तप (कमलोंसे पूर्ण तथा सज्जनोंके पक्षमें लक्ष्मीसे पूर्ण), निर्मल द्विजों (पक्षियों; सज्जनोंकी पक्षमें उत्तम वर्णवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों) के द्वारा सेवनीय, ऐसे असंख्य सरोवरोंसे और सज्जनोंसे वह देश पृथ्वीपर शोभायमान है ॥ ५ ॥ उस देशमें जगत्‌में प्रसिद्ध कुंडपुर नामका एक नगर है जो अपने समान शोभाके धारक आकाशकी तरह मालूम पड़ता है। क्योंकि आकाश समस्त वस्तुओंके अवगाहसे युक्त है। नगर भी सब तरहकी वस्तुओंसे भरा हुआ है। आकाशमें भास्वत्कलाधरबुध (सूर्य चंद्र और बुध नक्षत्र) रहते हैं; नगरमें भी भास्वान्—तेजस्वी कलाधर—कलाओंको धारण

करनेवाले बुध—विद्वान् रहते हैं। आकाश सवृष—वृष नक्षत्रसे युक्त है नगर भी सवृष—धर्मसे या बैलोंसे पूर्ण है। आकाश सतार—तारागणोंसे व्याप्त है; नगर भी सतार चांदी और मोतियोंसे भरा हुआ अथवा सफाईदार है ॥ ७ ॥ जहांपर कोटके किनारोंपर लगी हुई अरुणमणियों पद्माओंकी प्रभाके छायामय पटलोंसे चारों तरफ व्याप्त जलपूर्ण खाई दिनमें भी बिल्कुल ऐसी मालूम पड़ती है मानों इसने सन्ध्याकालीन श्री—शोभाको धारण कर रक्खा है ॥ ८ ॥ धौत—धोई हुई या जिलो की हुई इन्द्रनील मणियोंकी बनी हुई भूमिपर उपाहारके लिये सजाये गये या रक्खे गये नीलकमल समान वर्णके कारण एकमें एक मिल गये हैं—पहचान नहीं सकते कि कमल कहां पर रक्खे हैं। तो भी, चारों तरफसे पड़ते हुए भ्रमरोंकी झंकारसे वे पहचानमें आजाते हैं ॥ ९ ॥ जो भले मनवाला होता है वह दूसरोंको जीतना नहीं चाहता; पर, यहांकी रमणियां भले मनवाली होकर भी कामदेवको जीतना चाहती थीं। जो निस्तेज है वह कांतियुक्त नहीं हो सकता; पर यहांकी रमणियां निस्तेजिताम्बुरुहा (निस्तेज हो गई है कमलसमान कांति जिनकी ऐसी) होकर भी चन्द्रप्रभा थीं—अर्थात् वे कमलोंकी कांतिको निस्तेज करदेनेवाली और चंद्र समान कांतिकी धारक थीं। यहां-की रमणी वर्षाऋतुरूप नहीं थीं तो भी नवीन पयोधरों (स्तनों; दूसरे पक्षमें मेघों)को धारण करनेवाली थी। और नदीरूप न हो कर भी सरस (शृङ्गारादिरससे युक्त; दूसरे पक्षमें सजल) थीं॥१०॥ इस नगरके नागरिक पुरुष और महल दोनों एक सरीखे मालूम पड़ते थे। क्योंकि दोनों ही अत्यंत उन्नत, चन्द्रमाकी किरणजालके

समान अवदात स्वच्छप्रभासे युक्त, मस्तकपर रक्खे हुए (मुकुट आदिकमें लगे हुए; महलोंके पक्षमें छत वगैरहमें जड़े हुए), रत्नोंकी कांतिसे जिन्होंने आकाशको पल्लवित करदिया है ऐसे, तथा गोदीके भीतर अच्छी तरह बैठा लिया है रमणीय–रमणियोंको जिन्होंने ऐसे थे ॥ ११ ॥ जहां पर स्त्रियोंके निःश्वासकी सुगंधिमें रत हुए भ्रमर, उनके हाथमें लगे हुए महान् क्रीड़ा कमलको और झरता हुआ है मधु जिससे ऐसे कर्णोत्पलको भी छोड़कर मुखपर पड़ते हैं। वे चाहते हैं कि ये स्त्रियां अपने कोमल करोंसे बार बार हमारी ताड़ना करें ॥ १२ ॥ उस नगरमें, मोतियोंके भूषणोंकी चारो तरफ छोड़ी हुई किरणजालसे श्वेत बना दी है समस्त दिशाओंको जिन्होंने ऐसी वाराङ्गनायें–वेश्यायें मदक्रीड़ा करती हुईं–इठलाती हुईं इधर उधर घूमती फिरती हैं। मालूम पड़ता है मानों दिनमें भी सुभग ज्योत्स्नाको दिखाती फिरती हैं ॥ १३ ॥ विमानोंमें लगे हुए निर्मल चित्र रत्नोंकी छायाके वितान–चंदोआसे चित्र विचित्र बना दिया है समस्त दिशाओंको जिसने ऐसी दिनश्री–दिनकी शोभा जहां पर प्रतिदिन ऐसी मालूम पड़ती है मानों इसने अपने शरीरको इन्द्र धनुषके दुपट्टेमें ढक रक्खा हो ॥ १४ ॥ जहां पर निवास करनेवाली जनता अ-हीन उत्तम शरीरकी धारक (श्लेषके अनुसार दूसरा अर्थ होता है कि सर्पराजके समान शरीरकी धारक) होकर भी अभुजंगशीला है–अर्थात् भुजंग–विटपुरुषकासा (श्लेषसे दूसरा अर्थ सर्पकासा) शील–स्वभाव रखनेवाली नहीं है । मित्र (श्लेषके अनुसार मित्र शब्दका अथ सूर्य भी होता

है) में अनुराग करनेवाली भी है और कलाधर (शिल्प आदिक कलाओंको धारण करनेवाले श्लेषके अनुसार; दूसरा अर्थ चंद्रमा)को भी चाहनेवाली है। अपक्षपाता (पक्षपात रहित; दूसरा अर्थ पंखोंसे रहित) है तो भी प्रतीत सुवयःस्थिति (निश्चित है पक्षियोंमें स्थिति जिसकी ऐसी; दूसरा अर्थ—निश्चित है समीचीन वय—उम्रकी स्थिति जिसकी ऐसी) है। सरस होकर भी रोग रहित है ॥१५॥ झरोखोंमें लगी हुई हरिन्मणियों—रत्नाओंकी किरणोंसे मिलकर मकानोंके भीतर पड़ी हुई सूर्यकी किरणोंमें नवीन अभ्यागत—आये हुए मनुष्यको तिरछे रक्खे हुए नवीन लम्बे बांसका धोखा हो जाता है ॥ १६ ॥ इस नगरमें यह एक दोष था कि रात्रिमें चन्द्रमाका उदय होते ही कामदेवसे पीड़ित होकर प्रियके निवासगृहको जाती हुई युवतियां बीच रास्तेमें, महलोंके ऊपर लगी हुई स्वच्छ चन्द्रकान्त मणियोंके द्वारा कल्पित दुर्दिनसे भींग जाती हैं ॥ १८ ॥ जहांकी कामिनियोंके स्वच्छ कपोलमें रात्रिके समय चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़ने लगता है। मालूम होता है कि मानों स्वयं चन्द्र अपनी कांतिकी सकलताके तिरस्कारके लिये—सकलताका तिरस्कार होता है इस लिये स्त्रियोंके मुखकी महान् शोभाको लेनेके लिये आया है ॥ १९ ॥

इस नगरमें सिद्धार्थ नामका राजा निवास करता था। जिसने आत्ममति और विक्रमके द्वारा अर्थ—प्रयोजनको सिद्ध कर लिया था। जिसके चरणकमलोंको बालसूर्यके प्रसारके समान नम्रीभूत राजाओंकी शिखाओं—मुकुटोंमें लगे हुए अरुणरत्नों—रत्नाओंकी किरणोंने स्पर्शित कर रक्खा था ॥ २० ॥ निर्मल चन्द्रमाकी किरणोंके समान अं दा[illegible]

—स्वच्छ वह श्रीमान् राजा झंडेकी तरह आयतिमान् (राजाकी पक्षमें प्रभाववान् या भाग्यवान् और झंडाके पक्षमें लम्बा) था। उसने उठा कर पृथ्वीका उद्धार कर दिया था (झंडाकी पक्षमें जो उठाकर जमीन पर गाढ़ दिया गया है) । जिसने परंपराके द्वारा प्रकाशित होनेवाले उन्नत ज्ञातिवंश (कुल; दूसरे पक्षमें बांस) को निर्व्याजरूपसे अलंकृत कर दिया था ॥ २१ ॥ अपने (क्रियाओंके) फलसे समस्त लोकको संयोजित करनेवाले उस निर्मल राजाको पाकर राजविद्यायें प्रकाशित होने लगीं थीं। ऐसे समयको जब कि मेघोंका विनाश हो चुका है पाकर समस्त दिशायें क्या प्रसादयुक्त कांतिको नहीं धारण करती हैं ? ॥ २२ ॥ पृथ्वीपर अतुल प्रतापको धारण करते इस गुणी राजामें एक ही बड़ाभारी दोष था कि वक्षसे वक्षःस्थलपर रही हुई भी उसकी प्रियतमा लक्ष्मीको इष्टजन निरंतर उसके सामने ही भोगते थे ॥ २३ ॥

इस नरपतिकी प्रियकारिणी नामकी महिषी—पट्टरानी थी जो कि लोकमें अद्वितीय रत्न थी। तथा विवाह समयमें जिसको देख-कर इन्द्र भी यह मानने लगा कि ये मेरे हजार नेत्र आज कृतार्थ हुए हैं ॥ २४ ॥ अपूर्व मनुष्य उसको देखकर अर्थ निश्चय नहीं कर सकता था—यह नहीं जान सकता था कि यह कौन है। क्योंकि वह उसको देखते ही विस्मय—आश्चर्यके वशमें पड़कर ऐसा मानने लगता था—संशयमें पड़कर विचार करने लगता था कि क्या यह मूर्त्तिमंती कौमुदी है ? पर यह ठीक नहीं मालुम पड़ता क्योंकि यह दिनमें भी रमणीय मालूम पड़ती है; किंतु कौमुदी तो ऐसी नहीं होती। तो क्या देवांगना है ? पर यह भी ठीक नहीं, क्योंकि

इसके नेत्र चंचल हैं। देवाङ्गनाओंके नेत्र निर्निमेष होते हैं ॥२५॥ एक तो यह भूपति स्वयं ही स्वाभाविक रमणीयताका धारक था परंतु दूसरा कोई जिसकी समानता नहीं कर सकता ऐसी कांतिको धारण करनेवाली उस प्रियाको पाकर और भी अधिक शोभायमान होने लगा। शरद् ऋतुका चन्द्र स्वयं ही मनोहर होता है पर पौर्णमासीको पाकर क्या वह विलक्षण शोभाको नहीं धारण कर लेता है ? ॥ २६ ॥ प्रियकारिणी भी अपने समान उस मनोज्ञ पतिको पाकर इस तरह दीप्त हुई जिस तरह रति कामदेवको पाकर प्रकटमें दीप्त हो उठती है। यही बात लोकमें भी तो देखते हैं कि दूसरा जिसकी समानता नहीं कर सकता ऐसा अत्यंत अनुरूप योग किस-की कांतिको नहीं दीप्त कर देता है ? ॥ २७ ॥ मनोहर कीर्तिके धारक इन दोनों वधूवरोंमें एक बड़ा भारी दोष था। वह यह कि अपने पैरोंको प्रकाशमें सुमनसों (देवों या विद्वानों)के ऊपर रखकर भी अर्थात् बड़े भारी यशी और विवेकी होकर भी दोनों ही काम-देवसे दररोज डरते रहते थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार धर्म और अर्थ पुरुषार्थके अविरोधी काम पुरुषार्थको भी उस रागिनीके साथ निरंतर भोगता हुआ, और यशके द्वारा धवल बना दी हैं दिशा-ओंको जिसने ऐसा वह राजा संरक्षण—शासनसे समस्त पृथ्वीको हर्षित करता हुआ कालातिपात करने लगा ॥ २९ ॥

देवपर्यायमें जिसका जीवन छह महीना बाकी रहा है, जो अनंतर भवमें ही संसार समुद्रसे पार करनेके लिये अद्वितीय तीर्थ ऐसा तीर्थंकर होनेवाला है उस देवराजको पाकर देवगण चित्त लगा-

१ देखो सोलहवां सर्ग श्लोक ६३–६४ ।

कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते थे ॥ ३० ॥ विकसित है अवधिज्ञान-रूप नेत्र जिसका ऐसे सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने आठ दिक्कन्यकाओंको यह यथोचित हुक्म दिया कि तुम जिन भगवान्‌की भाविनी जननीके पास पहलेसे ही जाओ ॥३१॥ जगतमें चूड़ामणिकी द्युतिसे विराजमान है पुष्पचूला जिसका ऐसी चूलावती और मालिनिका कांता सदा शरीरियोंकी पर्याप्त पुष्पोंसे नम्र नवमालिकाके समान दीखनेवाली नवमालिका ॥ ३२ ॥ पीन और उन्नत दो स्तनरूप घटोंके भूरि भारसे खिन्न हो रहा है शरीर और त्रिवली जिसकी ऐसी त्रिशिरा, क्रीड़ावतंस बनाया है कल्प वृक्षके सुंदर पुष्पोंको जिसने तथा पुष्पोंके प्रहास पुष्पसमान प्रहाससे सुभग पुष्पचूला ॥ ३३ ॥ चित्रांगदा अथवा चित्र हैं अंगद जिसके ऐसी कनकचित्रा, अपने तेजसे तिरस्कृत करदिया है कनक—सुवर्णको जिसने ऐसी कनकदेवी तथा सुभगा वारुणी, अपने स्त्रीभूत शिरपर रक्खे हैं अग्र हस्त जिन्होंने ऐसी ये देवियां प्रियकारिणी त्रिशलाके पास प्राप्त हुईं ॥ ३४ ॥ अत्यंत कांतियुक्त वह एक प्रियकारिणी स्वाभाविक रुचिर—मनोज्ञ आकारके धारण करनेवालीं उन देवियोंसे वेष्टित होकर और भी अधिक शोभित होने लगी। ताराबलीसे वेष्टित अकेली चन्द्रलेखा भी तो लोकोंके नेत्रोंको आनंद बढ़ाती है ॥ ३५ ॥ निधियोंके रक्षक तिर्यग्विजृंभण करनेवाले देव कुबेरकी आज्ञासे वहां पर—सिद्धार्थ और प्रियकारिणीके यहां पन्द्रह महीने तक प्रतिदिन लोगोंको हर्षित करनेके लिये साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा करते थे ॥३६॥

२ इस श्लोकमें 'विततकुंडलशैलवासाः' इस शब्दका अर्थ हमारी समझमें नहीं आया है इस लिये लिखा नहीं है।

सुधा धवलित (अमृत समान धवल अथवा कलई किया हुआ) महलमें कोमल हंसतूल शय्यापर सुखसे सोई हुई प्रियकारिणीने रात्रिके पिछले प्रहरमें जिनराजकी उत्पत्तिके सूचक जिनको कि भव्यगण नमस्कार करते हैं ये निम्नलिखित स्वप्न देखे ॥ ३७ ॥

मदजलसे गीला हो गया है कपोलमूल जिसका ऐसा ऐरावत हस्ती। अत्यंत उन्नत, चन्द्र समान धवल वृषभ, पिंगल हैं नेत्र जिसके और उज्ज्वल हैं सटा जिसकी ऐसा शब्द—गर्जना करता हुआ—उग्र मृगराज। वनगज जिसका हर्षसे अभिषेक कर रहे हैं ऐसी लक्ष्मी। घूम रहे हैं अलिकुल—भ्रमरसमूह जिनपर ऐसी आकाशमें लटकती हुई दो मालायें। नष्ट करदिया है अन्धतम जिसने ऐसा पूर्ण चन्द्र। कमलोंको प्रसन्न करता हुआ बाल—सूर्य। निर्मल जलमें मदसे क्रीड़ा करता हुआ मीनयुगल ॥ ३९ ॥ जिनके मुख फलोंसे ढके हुए हैं ऐसे कमलोंसे आवृत दो घट। कमलोंसे रमणीय और स्फटिक समान स्वच्छ है जल जिसका ऐसा सरोवर। तरंगोंसे जिसने दिग्वलयको ढक दिया है ऐसा समुद्र। मणियोंकी किरणोंसे विभूषित कर दिया है दिशाओंको जिसने ऐसा सिंहासन ॥ ४० ॥ जिस पर ध्वजायें फहरा रही हैं ऐसा बड़ा भारी लम्बा चौड़ा देवोंका विमान। मत्त नागिनियोंका है निवास जिसमें ऐसा नागभवन। जिसकी किरणजाल चारोतरफ फैल रही है ऐसी आकाशमें रत्नराशि। कपिल बनादिया है दिशाओंको जिसने ऐसी निर्धूम अग्नि ॥ ४१ ॥

प्रियकारिणीने पुत्रके मुखके देखनेका है कौतुक जिसको ऐसे भूपालसे ये स्वप्न सभामें कहे। प्रमोदभर—हर्षके अतिरेकसे विह्वल

हो गये हैं हृदय और नेत्र जिसके ऐसे भूपालने भी उस देवीको स्वप्नोंके फल क्रमसे इस प्रकार—नीचे लिखे अनुसार बताये ॥४२॥

हस्ती जो देखा है इससे तेरे तीन भुवनका स्वामी पुत्र होगा। वृष—बैलके देखनेसे वह धुर—धर्मका कर्ता होगा। सिंहके देखनेसे सिंह समान पराक्रमशाली होगा। हे मृगाक्षि ! लक्ष्मीके देखनेसे देवगण देवगिरिपर—सुमेरुपर ले जाकर उसका हर्षसे अभिषेक करेंगे ॥ ४३ ॥ दो मालाओंके देखनेसे वह यशका निधान होगा। हे चन्द्रमुखि ! चन्द्रके देखनेसे मोहतमका भेदनेवाला होगा। सूर्यके देखनेसे भव्यरूप कमलोंके प्रतिबोधका कर्ता होगा। मीनयुगल देखनेसे यह अनन्त सुख प्राप्त करेगा ॥ ४४ ॥ दो घटोंके देखनेसे मंगलमय शरीरका धारक उत्कृष्ट ध्यानी होगा। सरोवरके देखनेसे जीवोंकी तृष्णाको सदा दूर करेगा। समुद्र देखनेसे यह पूर्ण ज्ञानका धारक होगा। सिंहासन देखनेका फल यह होगा कि वह अंतमें उत्कृष्ट पदको प्राप्त करेगा ॥ ४५ ॥ विमान देखनेका अभिप्राय यह है कि वह स्वर्गसे उतर कर आवेगा। नागभवनके देखनेका फल यह है कि वह यहां पर मुख्य तीर्थको प्रवृत्त करेगा। रत्नराशिका देखना यह सूचित करता है कि वह अनंत गुणोंका धारक होगा और निर्धूम अग्निका देखना बताता है कि वह समस्त कर्मोंका क्षय करेगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार प्रियसे स्वप्नावलीका यह फल सुनकर कि वह—फल जिनपतिके अवतारको सूचित करता है प्रियकारिणी परम प्रसन्न हुई। तथा वसुधाधिपति सिद्धार्थने भी अपना जन्म सफल माना। तीन लोकके गुरुकी गुरुता किसको प्रमुदित नहीं कर देती है ? ॥ ४७ ॥ अषाढ शुक्ला षष्ठीके दिन जब कि चन्द्र

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रपर वृद्धियुक्त विराजमान था पुष्पोत्तर विमानसे उतर कर उस देवराजने रात्रिके समय स्वप्नमें धवल गजराजके रूपसे देवीके मुखमें प्रवेश किया ॥ ४८ ॥ उसी समय अपने सिंहासनके कंपित होनेसे इन्द्र और देवगण भी जानकर—भगवान्के गर्भ कल्याणकको जानकर आये और दिव्य मणिमय भूषणोंसे तथा गंधमाल्य और वस्त्रादिकसे देवीका अच्छीतरह पूजनकर अपने २ स्थानको गये ॥४९ ॥ अपनी कांतिसे प्रकाशित कर दिया है वायु मार्गको जिन्होंने ऐसी श्री, ह्री, धृति, लवणा, बला, कीर्ति, लक्ष्मी और सरस्वती ये देवियां इन्द्रकी आज्ञानुसार विकशित हर्षके साथ प्रियकारिणी—त्रिशलाके निकट आकर उपस्थित हुईं ॥ ५० ॥ इन देवियोंने प्रियकारिणीके यथोचित स्थानोंमें हर्षसे इस प्रकार निवास किया ' लक्ष्मीने मुखमें, धृतिने हृदयमें, लवणाने तेजमें, कीर्तिने गुणोंमें, बलाने बलमें, श्रीने महत्वमें, सरस्वतीने वचनमें, और लज्जाने दोनों नेत्रोंमें निवास किया ॥ ५१ ॥ जगत्के लिये—जगत्को प्रकाशित करनेके लिये अथवा जगत्में अद्वितीय चक्षुके समान तीन निर्मल ज्ञानोंने माताके उस गर्भस्थित बालकको भी बिल्कुल न छोड़ा। उदयाचलकी तटी—तलहटीरूप विशाल कुक्षिमें स्थित सूर्यको रुचिर—मनोज्ञ तेज क्या घेरे नहीं रहता है ? ॥५२॥ मलोंसे बिल्कुल अलिप्त है कोमल अंग जिसका ऐसे उस बालकने गर्भमें निवास करनेका या निवास करनेसे कुछ भी दुःख न पाया। सरोवरके जलके भीतर मग्न किंतु कीचके लेपसे रहित मुकुलित पद्मको क्या कुछ भी खेद होता है ? ॥ ५३ ॥ उसी समय उस मृगनयिनीके पीन और उन्नत तथा कनक कुम्भके समान दोनों स्तनोंके

मुख श्याम होगये। उस समय वे दोनों स्तन ऐसे ज्ञात पड़ते थे मानों गर्भस्थित बालकके निर्मल ज्ञानसे प्रणुन्न—खिन्न अथवा भागनेके लिये व्याकुल किये गये हृदयगत मोहरूप अंधकारका वमन कर रहे हैं॥ ५४॥ उस नतांगीका शरीर सबका सब पीला पड़ गया। मालुम होता था मानों निकलते हुए—फैलते हुए यशने उसको धवल बना दिया है। उस देवीका अनुल्बण—अप्रकट उदर पहले त्रिवली पड़नेसे वैसा नहीं शोभता था जैसा कि बढ़नेसे शोभने लगा। ॥ ५५॥ जिन भगवान्में लगी हुई अपनी भक्तिको प्रकाशित करता हुआ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र पटलिकामें रक्खे हुए क्षौम—अंगराग मनोज्ञ मणिमय भूषणोंको स्वयं धारण कर तीनों काल आकर प्रियकारिणीकी सेवा करता था॥ ५६॥ तृष्णा रहित उस गर्भस्थको धारण कर प्रियकारिणी गर्भपीड़ासे कभी भी बाधित न हुई। कुछ दिनके बाद भूपालने यह वंश क्रम है ऐसा समझकर विबुधों—देवों या विद्वानोंसे पूजित त्रिशलाकी पुंसवन क्रिया की॥ ५७॥ कुछ दिनके बाद उच्च स्थानपर प्राप्त समस्त ग्रहोंके लग्नको जैसा काल आपड़ा वैसे ही समयमें रानीने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सोमवारको रात्रिके अंत समयमें जब कि चन्द्रमा उत्तरा फाल्गुनिपर था जिनेन्द्रका प्रसव किया॥ ५८॥ प्राणियोंके हृदयोंके साथ साथ समस्त दिशायें प्रसन्न होगई। आकाशने विना धुले ही निर्मलता धारण कर ली। उसी समय देवोंकी की हुई मत्त भ्रमरोंसे व्याप्त पुष्पोंकी वर्षा हुई। और दुंदुभियोंने आकाशमें गम्भीर शब्द किया॥ ५९॥ संसारको छेदन करनेवाले तीन लोकके अद्वितीय स्वामी उस प्रसिद्ध महानुभाव तीर्थंकरके उत्पन्न होते ही इन्द्रोंके कभी न

कँपनेवाले सिंहासन उनके हृदयोंके साथ साथ कँपने लगे ॥ ६० ॥ सहसा उन्मीलित अवधि ज्ञानरूप नेत्रके द्वारा भगवान्‌के जन्मको जानकर भक्तिभारसे नम गया है उत्तमांग—शिर जिनका ऐसे घंटाके शब्दसे इकट्ठे हुए निकायों—स्वर्गवासियोंमें मुख्य इन्द्र (अर्थात् देव और इन्द्र सभी मिलकर) आनंदके साथ उस कुंडलपुरको गये॥६१॥ परिजन आज्ञाकी प्रतीक्षामें लगा हुआ था तो भी अनुरागके कारण किसी देवने उस भगवान्‌की पूजा करनेके लिये पुष्पमालको स्वयं दोनों हाथोंसे धारण कर लिया। ठीक ही है—जो पूज्योंमें सर्वोत्कृष्ट है उसमें किसकी भक्ति नहीं होती है ? ॥ ६२ ॥ भगवान्‌के अभिषेक समयमें यहां पर जो कुछ भी करना है उस सबको मैं स्वयं अच्छी तरहसे करूंगा उसको करनेके लिये दूसरोंको हुक्म न करूंगा यही युक्त है इसी लिये मानों भक्तिसे वह इन्द्र अकेला था तो भी उसने अपने अनेक रूप बना लिये ॥ ६३ ॥ किसी देवने कितने ही हजार हाथ बना ऊपरको कर उनमें अपनी भक्तिसे खिले हुए कमल धारण कर लिया। उस समय उसने आकाशमें कमलवनकी शोभाको विस्तृत कर दिया। अति भक्ति शक्तिसे—शक्ति पूर्वक किससे क्या नहीं करा लेती है ? ॥ ६४ ॥ अपने अपने मुकुटोंके ऊपर लगी हुई बाल सूर्यसमान परम राग मणियोंके अरुण किरण जालके छालसे कोई कोई देव ऐसे जान पड़े मानों जिनेन्द्रमें जो उनका अनुराग था वह अंतरङ्गमें भर जानेसे उसी समय बाहर फैल गया, उस फैले हुए अनुरागको ही मानों शिरसे ढोकर लेजा रहे हैं ॥६५॥ एकावली (नीलमणिकी इकहरी कंठी) के तरल नील मणियोंकी किरणरूप अंकुरोंकी श्रेणीसे काला पड़ गया है मनोज्ञ

भुजाओंका अंतराल जिसका ऐसे कोई२ देव तो तत्क्षण ऐसे होगये मानों प्रसन्न जिन भक्ति जिसको दूर कर रही है ऐसा हृदत मोहरूप अंधकार है । अर्थात् निहमणियोंकी काली प्रभा था उस प्रभासे काले पड़े हुए देव ऐसे जान पड़े मानों ये मोहरूप अंधकार ही हैं जिनको कि प्रकाशमान जिन भक्तिने हृदयमेंसे बाहर निकाल दिया है ॥ ६६ ॥ देवोंके चारोंतरफ दूर दूरसे आई हुई वेगकी–विमानके वेगकी पवनसे खिचकर आते हुए मेघोंने विमानोंमें जड़े हुए रत्नोंसे–रत्नोंकी किरणोंसे बने हुए इन्द्र धनुषकी लक्ष्मी–शोभाको प्राप्त करनेकी इच्छासे मानों आकाशमें उनका शीघ्र ही अनुसरण किया ॥ ६७ ॥ विचित्र मणिमय भूषण वेष और यान–विमानोंको धारणकर उतरकर आते हुए उन देवोंसे जब समस्त दिशायें घिर गईं तब लोग उसकी तरफ आश्चर्यसे देखने लगे । उन्होंने समझा कि आकाश विना भींतके सहारे ही किसीके बनाये हुए सजीव चित्रोंको धारण कर रहा है ॥ ६८ ॥

इसी समय चन्द्र आदिक पांच प्रकारके ज्योतिषी देव जिनका कि अनुसरण सिंह शब्दसे–सिंहका शब्द सुनकर शीघ्र ही आकर मिले हुए अपने भृत्योंके साथ चमरादिक भवनवासी देव भी आकर प्राप्त हुए ॥ ६९ ॥ पटह–भेरीके शब्दसे बुलाये हुए सेवकोंसे भर दिया है समस्त दिशाओंका मध्य जिन्होंने ऐसे व्यंतरोंके अधिपति भी उस नगरमें आकर प्राप्त हुए । आते समय जिन विमानोंमें वे सवार थे उनके वेगसे उनके (व्यंतरोंके) कुंडल हिलने लगते थे जिससे उनमें लगी हुई मणियोंकी द्युतिसे उनका गंडस्थल लिप जाता था ॥ ७० ॥ पुत्रजन्मका समाचार पाते ही सिद्धार्थने

जिसको उत्सवोंसे भर दिया है ऐसे राजमहलमें आकर इन्द्रोंने माताके आगे विराजमान अनन्यसम उस जिनेन्द्रको नतमस्तक होकर देखा ॥ ७१ ॥ जन्मकल्याणककी अभिषेक क्रिया करनेके लिये सौधर्म-स्वर्गके इन्द्रने माताके आगे मायामय बालकको रखकर अपनी कांतिसे दूसरे कार्योंको प्रकाशित करते हुए बाल जिनभगवान्को हर लिया। अहो! बुध भी अकार्य किया करते हैं? ॥ ७२ ॥ देवोंसे अनुगत इन्द्र, शचीके द्वारा दोनों हाथोंसे धारण किये गये–अर्थात् जिसको शचीने दोनों हाथोंसे दिया और स्वयं धारण कर लिया ऐसे बाल जिनभगवान्को शरद् ऋतुके मेघ समान मूर्तिके धारक–अर्थात् शुभ्र वर्ण और मदकी गंधसे आ गई हैं भ्रमर पंक्ति जहां पर ऐसे ऐरावत हस्तीके स्कंध पर विराजमान कर, कमल–नीलकमलके समान कांतिके धारक आकाश मार्गसे ले गया ॥ ७३ ॥ कानोंको सुखकर और नवीन मेघकी ध्वनिके समान मन्द्र–गम्भीर तुरईका शब्द दशो-दिशाओंको रोकता हुआ सब जगह फैल गया। भगवान्के नामका ख्यापन करनेवाले और अनुगत है त्रिवर्ग (गाना, बजाना, नाचना) जिसमें ऐसे गानका आकाशमें प्रितकिन्नरेन्द्रोंने अच्छी तरह अनुगान किया ॥ ७४ ॥ चन्द्रमाकी द्युति और कृतिके हरण करनेवाले, धवल बना दिया है दिशाओंको जिसने, ऐसे छत्रको ईशान कल्पके स्वामीने तीनलोकके स्वामीके ऊपर अच्छी तरह लगाया ॥ ७५ ॥ दोनों बाजुओंमें स्थित हस्तियोंपर बैठे हुए सनत्कुमार तथा माहेन्द्रने हाथोंमें चमर धारण किये जिनसे कि समस्त दिशाओंके व्याप्त हो जाने पर आकाश ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों उस जिनेश्वरका अभिषेक करनेके लिये स्वयं उद्धृत

न होते हुए क्षीरसमुद्रने ही घेर लिया हो ॥ ७६ ॥ भगवान्‌के आगे ध्वजायें स्फटिकका दर्पण तालवृंत–पंखा भृंगार–झारी और उन्नत कलश इत्यादिक मंगल द्रव्योंको तथा पटलिका (एक प्रकारकी टोकनी) में रक्खी हुई कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालाओंको सुरराज–इन्द्रकी वधुओंने धारण किया ॥ ७७ ॥ मार्गके खेदको दूर करते हुए तीन गुणोंसे युक्त उसके शिखर या किनारेसे उत्पन्न हुए मरुत्से उपगूढ हुए मरुत्–देवगण, अकृत्रिम चैत्यालयोंने जिसकी शोभाको महान् बना दिया है ऐसे मेरु–पर्वत पर शीघ्र ही जा पहुंचे ॥ ७८ ॥ देवता मेरुके पाण्डुक वनमें पहुंचकर शरच्चन्द्रके समान धवल पाण्डुक शिला पर पहुंचे जो कि ऐकसौ पांच योजन लम्बी और लम्बाईसे आधी अर्थात् साढ़े बावन योजन चौड़ी तथा युग–आठ योजन ऊंची है ॥ ७९ ॥ रजनीनाथ–चंद्रमाकी कलाके आकार–अष्टमीके चंद्र

१ शिलाका प्रमाण जिसमें बताया है वह मूल पाठ ऐसा है—" पंचशतयोजनमात्रदीर्घादीर्घार्धविस्तृतिरथो युगयोजनोच्चा " इसका अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि वह शिला ५०० योजन लम्बी २५० योजन चौड़ी और युग (?) योजन ऊंची है। परंतु यह अर्थ दूसरे ग्रंथोंसे बाधित होता है क्योंकि दूसरी जगह शिलाका प्रमाण १०० योजन लम्बा ५० योजन चौड़ा ८ योजन ऊंचा बताया है। इसी लिये हमने उपर्युक्त अर्थ किया है। दूसरी जगहके प्रमाणकी अपेक्षा जो यहां पर कुछ अधिक प्रमाण बताया है उसपर विद्वानोंको विचार करना चाहिये। युग शब्दका अर्थ आठ हमने यहां पर दूसरी जगहकी अपेक्षासे किया है। कोषमें इस शब्दका अर्थ चार और बारह मिला है। सम्भव है कि कहीं पर आठ अर्थ भी होता हो या युग शब्दकी जगह वसु पाठ हो।

समान आकारवाली उस शिलाके ऊपर जो पांचसौ धनुष लम्बा तथा ढाईसौ धनुष चौड़ा और ऊंचा महान् सिंहासन है उसपर श्री जिन भगवान्‌को विराजमान कर देवोंने उनके जन्माभिषेककी महिमा—कल्याणोत्सव किया ॥ ८० ॥ प्रकाश करती हुई हैं महामणियां जिनकी ऐसे एक हजार आठ घटोंसे शीघ्र ही अत्यंत हर्षके साथ लाये हुए क्षीर समुद्रके जलसे मङ्गल रूप शंख और भेरीके शब्दोंसे दिशाओंको शब्दायमान कर इन्द्रादिक देवोंने एक साथ उस जिनेन्द्रका अभिषेक किया ॥ ८१ ॥ अभिषेक विशाल था यह इसीसे मालूम पड़ सकता है कि उसका जल नाकोंमें भर गया था। उस समय निरंतर अभिषेकमें, जिसने कि मेरुको भी कँपादिया, इन्द्र जीर्ण तृणकी तरह एकदम पड़ गये या पड़े रहे—डूबे रहे। अहो! जिन भगवान्‌का नैसर्गिक पराक्रम अनंत है ॥ ८२ ॥ नम्रीभूत सुरेन्द्रने वीर यह नाम रखकर उनके आगे अप्सराओंके साथ अपने और देव तथा असुरोंके नेत्र युगलको सफल करते हुए हाव-भावके साथ ऐसा नृत्य किया जिसमें समस्त रस साक्षात् प्रकाशित हो गये ॥ ८३ ॥ विविध लक्षणोंसे लक्षित—चिन्हित हैं अंग जिनका तथा जो निर्मल तीन ज्ञानोंसे विराजमान है ऐसे अत्यद्भुत श्री वीर भगवान्‌को बाल्योचित—बाल्यावस्थाके योग्य मणिमय भूषणोंसे विभूषित कर देवगण इष्ट सिद्धिके लिये भक्तिसे उसकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ८४ ॥

हे वीर! यदि संसारमें आपके रुचिर वचन न हों तो भव्यात्माओंको निश्चयसे तत्त्वबोध किस तरह हो सकता है। पद्मा (कमलश्री या ज्ञानश्री) प्रातःकालमें सूर्यके तेजके बिना क्या अपने

आप ही विकशित हो जाती है ? ॥ ८५ ॥ स्नेह रहित दशाके धारक आप जगत्के अद्वितीय दीपक हैं। कठिनतासे रहित है अन्तरात्मा जिसकी ऐसे आप चिन्तामणि हो। व्यालवृत्तिसे सम्बन्ध न रखते हुए आप मलयगिरि हो। और हे नाथ ! उष्णतासे रहित आप तेजपुंज भी हो ॥ ८६ ॥ हे जगदीश ! क्षीरसागरके फेनपटलके पंक्तिजालके समान गौर और मनोहर आपका यश अमृतरश्मि—चन्द्रके व्याजसे आकाशमें रहकर यह विचार करता है या बताता है कि इस अप्राप्त जगतको क्षणभरमें मैंने कितना व्याप्त कर लिया ॥ ८७ ॥ इस प्रकार स्तुति करके देवगण पुष्पोंसे भूषित हैं समीचीन नमेरु वृक्ष जहांपर ऐसे उस मेरुसे भगवान्को मकानोंके आगे बंधे हुए कदली ध्वजाओंसे रुके हुए और विमानोंके अवतार समयसे व्याप्त ऐसे नगरमें शीघ्र ही फिर वापिस लौटाकर ले आये ॥ ८८ ॥ "पुत्रके हर जानेसे उत्पन्न हुई पीड़ा—खेद आप मातापिताको न हो इस लिये पुत्रकी प्रकृति बनाकर—अर्थात् माताके निकट मायामय पुत्रको छोड़ कर आपके पुत्रको मेरुपर लेजाकर और वहां उसका अभिषेक कर वापिस लाये हैं।" यह कहकर देवोंने पुत्रको माता पिताके सुपुर्द किया ॥ ८९ ॥ दिव्य वस्त्र आभरण माला विलेपन—चंदन लेप इत्यादिके द्वारा नरेश्वर—सिद्धार्थ राजा तथा प्रियकारिणी—त्रिशलाकी पूजा कर और भगवान्के वञ्च तथा नामका निवेदन कर प्रसन्न हुए देवगण वहां नृत्य करके अपने अपने स्थानको चले ॥ ९० ॥ गर्भसे—जिस दिन गर्भमें आये उसी दिनसे अपने कुलकी लक्ष्मीको चन्द्रमाकी कलाकी तरह प्रतिदिन बढ़ती हुई देखकर दशमें—जन्मसे दशमें

दिन हर्षसे देवोंके साथ साथ राजाने उस भगवान्‌का श्री वर्धमान यह नाम रक्खा ॥ ९१ ॥

इस तरह कुछ दिनोंके बीत जाने पर एक दिन भगवान्‌को देखते ही जिनका संशयार्थ दूर हो गया है ऐसे चारण लब्धिके धारक विजय संजय नामके दो यतिओंने उस भगवानका सन्मति यह नाम प्रसिद्ध किया ॥ ९२ ॥ किरणोंसे जटिल हुए अनुरूप मणिमय भूषणोंसे कुवेर इन्द्रकी आज्ञासे प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करता था। भगवान् भी महात्माओंके अनल्प प्रमोदके साथ २ शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे ॥ ९३ ॥ बाल्य शरीरस्वरूपको मैं फिर नहीं ही पाऊंगा। क्योंकि संसारके कारण ही नष्ट होचुके हैं। इस लिये अब इस दशाको सफल बनाऊं—करलूं। मानों ऐसा मानकर ही जिन भगवान् महान् देवोंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥ ९४ ॥

एक दिन बालकोंके साथ साथ महान् वट वृक्षके ऊपर चढ़कर खेलते हुए वर्द्धमान भगवानको देखकर संगम नामका एक देव उनको त्रास देनेके लिये आ पहुंचा ॥ ९५ ॥ भयंकर फणवाले नागका रूप रखकर उस देवने शीघ्र ही आसपासके दूसरे छोटे २ वृक्षोंके साथ उस वृक्षके मूलको घेर लिया। बालकोंने ज्यों ही उसको देखा त्यों ही वे गिरने लगे ॥ ९६ ॥ किंतु शंका रहित वे भगवान् लीलाके द्वारा उस नागराजके मस्तक पर दोनों चरणोंको रखकर वृक्षसे उतरे। ठीक ही है—वीर पुरुषको जगत्‌में भयका कारण कुछ भी नहीं है ॥ ९७ ॥ भगवान्‌की निर्भयतासे हृष्ट हो गया है चित्त जिसका ऐसे उस देवने अपने रूपको प्रकाशित कर सुवर्णमय घटोंके जलसे उनका अभिषेक कर महावीर यह नाम रक्खा ॥ ९८ ॥

रहते हुए भगवान् अपनी चपलताको दूर करनेके लिये स्वयं उद्युक्त हुए । और शैशवको लांघकर क्रमसे उन्होंने नवीन यौवन लक्ष्मीको प्राप्त किया ॥ ९९ ॥ उनका नवीन कलेके समान है वर्ण जिसका ऐसा सात हाथका मनोज्ञ शरीर, निःस्वेदता (पसीना न आना) आदिक स्वाभाविक दश अतिशयोंसे युक्त था ॥ १०० ॥ संसारके हंता, नवीन कमल समान हैं सुकुमार चरण युगल जिनके ऐसे कुमार भगवानने देवोपनीत भोगोंको भोगते हुए तीस वर्ष विता दिये॥ १०१॥

एक दिन भगवान् सन्मति विना किसी निमित्तके ही विषयोंसे विरक्त होगये । पदार्थोंकी स्थिति जिनको विदित है ऐसे मुमुक्षु पुरुष प्रशमके लिये सदा बाह्य कारणोंको ही नहीं देखा करते हैं ॥ १०२ ॥ स्वामी निर्मल अवधिज्ञानके द्वारा क्रमसे अपने पूर्व भवोंका तथा उद्धत इन्द्रियोंकी विषयोंमें ऐसी अतृप्तता कि जिसने धृतको प्रकट कर दिया गया है विचार करने लगे ॥ १०३ ॥ आकाशमें विना मेघके ही मुकुटोंकी विचित्र किरणोंसे इन्द्रधनुषकी शोभाको बनाती हुई लौकांतिक देवोंकी संहति (समूह) उस प्रभुको प्रतिबोधित करनेके लिये हर्षसे उसी समय आई ॥ १०४ ॥ विनयसे कर-पल्लवोंको मुकुलित कर उस मुमुक्षुको नमस्कार करके उनके समभावोंसे पूर्ण दृष्टिपातके द्वारा प्रमुदित हुए देव समूहने इस तरहके वचन कहे ॥ १०५ ॥—हे नाथ ! आपके दीक्षा कल्याणके योग्य यह कालकला निकट आ पहुंची है । जान पड़ता है मानों तपःश्रीने आपसे समागम करनेके उद्देश्यसे स्वयं उत्कंठित होकर अपनी प्रिय दूती भेजी है ॥ १०६ ॥ साहजिक तीन निर्मल ज्ञानोंसे युक्त आप स्वामीको तत्वके एक लेश मात्रको समझने वाले दूसरे लोग

मुक्तिका उपदेश किसतरह दे सकते हैं ? ॥ १०७ ॥ तपके द्वारा समस्त घातिकर्मोंकी प्रकृतियोंको दूर—नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त कर संसारवासके व्यसनसे भयभीत हो गया है चित्त जिनका ऐसे भव्यप्राणियोंको मुक्तिका उपाय बताकर आप प्रतिबोधित करो ॥ १०८ ॥ इस प्रकार कालोचित बचनोंको कह कर लौकांतिक देवगणने विराम लिया और भगवानने भी मुक्तिके लिये निश्चय किया। वचन अपने अवसर पर ही तो सिद्ध होता है ॥ १०९ ॥ उसी समय चतुर्निकायके—चारों प्रकारके देवगणोंने शीघ्र ही कुंडलपुरमें दर्शनके कौतुकसे निमेषरहित नगरकी स्त्रियोंको मानों अपनी वधुओं—देवाङ्गनाओंकी शंकासे ही देखा ॥ ११० ॥ विधिपूर्वक देवोंने की है महान् पूजा जिसकी और पूछ लिया है समस्त बन्धु वर्गको जिसने ऐसे वे मुमुक्षु भगवान् वनको लक्ष्यकर महलसे सात पैर तक अपने चरणोंसे चले ॥ १११ ॥ बादमें, श्रेष्ठ रत्नमयी चन्द्रप्रभा नामकी पालकीमें जिसको कि आकाशमें स्वयं इन्द्रोंने धारण कर रक्खा था आरूढ़ होकर भव्यजनोंसे वेष्टित वीरनाथ नगरसे बाहर निकले ॥११२॥ नागखण्ड वनमें पहुंचकर इन्द्रोंने यान—पालकीसे जिनको उतारा है ऐसे वे भगवान् अत्यंत निर्मल अपने पुण्यसमान दृश्य स्फटिक पाषाण पर विराजमान हुए ॥ ११३ ॥ उत्तर दिशाकी तरफ मुख किये हुए उन भगवान्ने एक—एकाग्र चित्तसे समस्त कर्मरहित सिद्धोंको नमस्कार कर रागकी तरह प्रकट रूपमें प्रकाशमान आभरणोंके समूहको स्वतः हाथोंके द्वारा दूर कर दिया ॥ ११४ ॥ श्रीसे प्रथित हुए उन भगवान्ने वहांपर मगशिर शुक्ला दशमीको जब कि चन्द्रमा परमार्यमणि पर विराजमान था सायंकालके

समय षष्ठोपवास कर तपको धारण किया ॥ ११५ ॥ भगवान्के भ्रमरसमान नील केशोंको जिनको कि उन्होंने पांच मुष्टियोंके द्वारा उपाड़ डाला था इकट्ठा करके और स्वयं मणिमय भाजनमें रख कर इन्द्रने क्षीर समुद्रमें पधरा दिया ॥ ११६ ॥ देवगण विचित्य और तपो-लक्ष्मीसे युक्त भगवान्की वंदना करके अपने अपने स्थानको गये। इधर 'यह' 'वह' इस तरह जनता क्षणमात्र तक ऊपरको दृष्टि करके उनको आकाशमें देखती रही ॥ ११७ ॥

भगवान्ने शीघ्र ही सात ऋद्धियोंको प्राप्त कर लिया। और मनःपर्यय ज्ञानको पाकर वे तप-हित भगवान् रात्रिके समय नहीं प्राप्त किया है एक कलाको जिसने ऐसे चन्द्रमाकी तरह बिलकुल शोभने लगे ॥ ११८ ॥ एक दिन महान् सत्त्व-पराक्रमसे युक्त वीर भगवान्ने जब कि सूर्य आकाशके मध्यभागमें आ गया उस समय बड़े महलोंसे भरे हुए कूलपुरमें पारणाके लिये—अर्थात् उपवासके अनंतर आहार करनेके लिये प्रवेश किया ॥ ११९ ॥ कूल यह पृथ्वीमें प्रसिद्ध है नाम जिसका ऐसा एक राजा उस नगरका स्वामी था। वह अणुव्रतोंका धारक और अतिथियोंका पालक—सत्कार करनेवाला था। उसने अपने घरमें प्रवेश करते हुए भगवान्को पड़-गाया—आहार करनेके लिये ठहराया ॥ १२० ॥ पृथ्वीपर नवीन पुण्यकर्मके वेत्ताओंमें अतिशय श्रेष्ठ उस राजाने नवीन पुण्यकी चिकीर्षा—संचय करनेकी इच्छासे भगवान्को भोजन कराया। भगवान् भी भोजन करके उसके महलसे निकले ॥ १२१ ॥ भोजन करके महलके बाहर भगवान्के निकलते ही उस राजाके घरके आंगनमें आकाशसे पुष्पवृष्टिके साथ साथ रत्नवर्षा होने लगी।

उसी समय देवोंकी बजाई हुई दुंदुभियोंका मन्द्र मन्द्र शब्द भी आकाशमें होने लगा ॥ १२२ ॥ नवीन पारिजातके (हारशृंगारके) पुष्पोंकी गंधको फैलाती हुई वायु दिशाओंको सुगंधित करती हुई अच्छी तरह बहने लगी। अत्यंत विस्मित हो गया है चित्त जिनका ऐसे देवोंके 'अहो' इस तरहके दानके वचनोंसे अर्थात् दानकी प्रशंसा सूचक शब्दोंसे आकाश पूर्ण हो गया ॥ १२३ ॥ इस प्रकार दानके फलसे उस राजाने देवोंसे पांच आश्चर्योंको प्राप्त किया। गृहधर्मके पालन करनेवालोंको पात्रदान यश, सुख और संपत्तिका कारण होता है ॥ १२४ ॥

एक समय भगवान् अतिमुक्तक नामके स्मशानमें रात्रिके समय प्रतिमायोग धारण कर खड़े हुए थे उस समय भव नामके रुद्रने अपनी अनेक प्रकारकी विद्याओंके विभवसे बहुत कुछ उपसर्ग किये पर वह उन विभव—संसाररहितको जीत न सका ॥ १२५ ॥ तब उन जिननाथको बहुत देर तक नमस्कार करके उस भव नामक रुद्रने काशीमें अत्यंत हर्षसे वीर भगवानका अति वीर और महावीर ये नाम रक्खे ॥ १२६ ॥ इस प्रकार जाति और कुल रूप निर्मल आकाशमें चंद्रमाके समान तथा तीन लोकके अद्वितीय बंधु भगवानने परिहार विशुद्धि संयमके द्वारा प्रकटतया तप करते हुए बारह वर्ष बिता दिये ॥ १२७ ॥

एक दिन ऋजुकूला नदीके किनारे पर चले हुए श्री जृम्भक नामके ग्राममें पहुंचकर अपराह्ण समयमें अच्छी तरहसे छठोपवासको धारण कर साल वृक्षके नीचे एक चट्टानपर अच्छी तरह बैठकर जिननाथने वैशाख शुक्ला दशमीको जब कि चंद्र सूर्यके ऊपर था ध्यान

रूपी खड्गके द्वारा सत्तामें बैठे हुए घाति कर्मोंको नष्ट कर केवल-ज्ञानको प्राप्त किया ॥१२८-२९॥ अपनी केवलज्ञान संपत्तिके द्वारा सदा यथास्थित समस्त लोक और अलोकको युगपत् प्रकाशित करते हुए, इन्द्रियोंकी अपेक्षासे रहित, अच्छाया (शरीरकी छायाका न पड़ना) इत्यादिक दश प्रकारके गुणोंसे युक्त जिनेश्वरको त्रिदशेश्वरोंने आकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ १३० ॥

इस प्रकार अशग कवि कृत वर्द्धमान चरित्रमें "भगवत्केवल-ज्ञानोत्पत्ति" नामक सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अठारहवाँ सर्ग ।

इन्द्रकी आज्ञासे और अपनी भक्तिसे कुबेरने उसी समय उन भगवान्की रमणीय तथा विविध प्रकारकी श्रेष्ठ विभूतिसे युक्त समवसरण भूमिको बनाया। तीन लोकमें ऐसी कौनसी अभिमत वस्तु है जिसको देव सिद्ध नहीं कर सकते ? ॥ १ ॥ बारह योजन लम्बे नीलमणिमय पृथ्वीतलको चन्द्रप्रमान निर्मल रजोमय शाल (परकोटा)ने इस तरह घेर लिया जैसे शरद् ऋतुके नभोभाग—आकाशको मेघ समूह घेर लेता है ॥ २ ॥ इस प्रकाशमान रेणुशालके परे सिद्ध रूपके धारक मानस्तम्भ थे। जो ऐसे मालूम पड़ते थे मानों महादिशाओंमें अंत देखनेकी इच्छासे पृथ्वीपर आये हुए मुक्तिके प्रदेश हों ॥ ३ ॥ मानस्तम्भोंके बाद नंदाहृद नामके धारक चार सरोवर थे जो निर्मल जलके भरे हुए और कमलपत्रोंसे पूर्ण थे। वे, मेघ—वर्षाके अंत समयमें—शरद्ऋतुमें हुए दिशाओंके मुखकी तरह जान पड़ते थे ॥ ४ ॥ इनके बाद वेदिका सहित निर्मल जलसे भरी

हुई खाई थी। जो खिले हुए धवल कमलोंसे व्याप्त थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानों तारागणोंसे मण्डित सुरपदवी (आकाश मार्ग) देवोंके साथ साथ स्वयं पृथ्वीपर आकर विराजमान होगई है ॥ ५ ॥ खाईके बाद चारोतरफ वल्लियोंका विस्तृत या मनोहर वन था। जो सुमनों (पुष्पों; दूसरे पक्षमें विद्वानों या देवों)से युक्त होकर भी अबोध था, बहुतसे पत्रोंसे आकुल—पूर्ण होकर भी असैन्य था, तथा विपरीत (पक्षियोंसे व्याप्त; दूसरे पक्षमें विरुद्ध—शत्रु) होकर भी प्रशंसा करने योग्य था ॥ ६ ॥ इस वनके बाद चांदीके बने हुए चार गोपुर—बड़े बड़े दरवाजोंसे युक्त सुवर्णमय प्राकार था जो ऐसा जान पड़ता था मानों चार निर्मल मेघोंसे युक्त स्थिर रहनेवाला अचिर प्रभाका समूह पृथ्वी पर आगया है ॥ ७ ॥ पूर्व दिशामें जो उन्नत गोपुर था उसका नाम विजय था। दक्षिण दिशामें रत्नोंके तोरणोंसे युक्त जो गोपुर था उसका नाम वैजयंत था। पश्चिम दिशामें पूर्ण कदलीध्वजोंसे मनोहर जो गोपुर था उसका नाम जयंत था। उत्तर दिशामें देवोंसे घिरा हुआ है वेदीतट जिसका ऐसा जो गोपुर था उसका नाम अपराजित था ॥८॥ इन गोपुरोंकी उंचाई पर तोरण लगे हुए थे। उनके दोनों भागोंमें नेत्रोंको अपहरण करनेवाली विधिसे प्रत्येक एकसौ आठ आठ प्रकारके निर्मल अंकुश चमर आदिक मंगल द्रव्य रक्खे हुए थे जो कि भगवान्की विभूतिको प्रकट कर रहे थे ॥९॥ उनमें—गोपुरोंमें, जिनके बीच बीचमें मोतियोंके गुच्छे लगे हुए हैं ऐसी मणिमय मालायें, घंटिकायें, वा सुवर्णमय जाल लटकते हुए शोभा पा रहे थे। जो कि दर्शकोंकी दृष्टियोंको कैद कर देते थे ॥ १० ॥ उन गो-

पुरोंके भीतर एक सुंदर वीथी–गली थी । उनके दोनों भागोंमें (ऊपर) दो दो उन्नत नाट्यशालायें बनी हुई थीं । जो कि मृदंगों-की ध्वनिसे मानों भव्य जीवोंको दर्शन करनेके लिये बुला रहीं हैं ऐसी जान पड़ती थीं ॥ ११ ॥ विथियोंके दोनों भागोंमें नाट्य-शालाओंके बाद देवोंके द्वारा सेवित क्रमसे अशोक, सप्तच्छद, चंपक, आम्रोंसे व्याप्त चार प्रमदवन थे ॥ १२ ॥ उनमें, जो विस्तृत शाखओंके द्वारा चंचल बाल प्रवालों–कोमल पत्तोंसे मानों दिशारूपी बन्धुओंकी कर्णपूर श्रीको बना रहे हैं ऐसे, अथवा जो जिन भग-वान्‌की निर्मल प्रतिकृतिको धारण किये हुए हैं ऐसे अशोक आदिके चार प्रकारके नाग वृक्ष थे। जो कि कमलखंडोंको छोड़कर प्रत्येक पुष्पसे लिये हुए मत्त मधुकरोंके मंडलसे मंडित हो रहे थे ॥१३॥ उन चार वनोंमें निर्मल जलकी भरी हुई तीन तीन वापिकायें शोभायमान थीं। जो कि गोल त्रिकोण और प्रकट चतुष्कोण आकारको धारण करनेवाली थीं । नंदा सुवर्ण कमलोंसे, नंदवती उत्पल समूहोंसे, मेघा नील कमलोंसे, और नंदोत्तरा स्फटिकके कुमुदोंसे व्याप्त थी ॥ १४ ॥ इन वनोंमें ही सुर और असुरोंसे व्याप्त, प्रांतवर्ती लता मंडपोंसे घिरे हुए, जिन पर मत्त मयूरोंका मंडल शब्द कर रहा है ऐसे कीड़ापर्वत बने हुए थे। कहीं पर महल, कहीं मणिमंडप, कहीं अनेक प्रकारकी आधार–भूमिवाली गृहपंक्ति, कहीं चक्रांदोल (?) सभामंडप, और कहीं पर अत्यंत मनोज्ञ मुक्तामय शिलापद बने हुए थे ॥ १५ ॥ वनके बाद वज्रमय वेदी थी जिसने अपनी किरण–संपत्तिके द्वारा नभस्तलमें इन्द्र धनुषका मंडल प्रसारित कर रक्खा था । जो कि चार श्रेष्ठ रत्नतोरणोंसे युक्त थी ॥ १६ ॥ वीथियोंके

परे चारों तरफ मयूर, माला, वस्त्र, हंस, केसरी, हस्ती, बैल, गरुड़, कमल, चक्र, इन दश चिन्होंवाली ध्वजायें थीं। इन दश ध्वजाओंमेंसे प्रत्येक एकसौ आठ आठ थीं ॥ १७ ॥ गंगाकी कल्लोलभंगके समान मालूम पड़नेवाली, जिन्होंने मेघ मार्गपर आक्रमण कर लिया है ऐसी ये ध्वजायें प्रत्येक दिशामें एक हजार अस्सी अस्सी थीं। फैली हुई है कांति जिनकी ऐसी ये ध्वजायें चारो दिशाओंकी मिलाकर सब एक जगह जोड़नेसे चार हजार तीनसौ वीस होती हैं ॥ १८ ॥ इसके बाद स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसा सुवर्णमय प्राकार है जो कि कमल समान वर्णके धारक चार गोपुरोंसे युक्त चार महान् संध्याकालीन घर—मेघोंसे समस्त विद्युत्समूहको विडंबित करता हुआ जान पड़ता है ॥ १९ ॥ उन गोपुरोंमें कलश आदिक प्रसिद्ध मङ्गल वस्तुएं रक्खी हुई थीं। उनके बाद जिनमें मृदंगका मनोहर शब्द होरहा है ऐसी दो दो नाट्यशालायें थीं ॥ २० ॥ उनके बाद मार्गके दोनों भागोंमें रक्खे हुए उन्नत और सुगंधित धूपसे उत्पन्न हुए धूमसे भरे हुए मनोज्ञ सुवर्णमय दो दो धूपघर शोभायमान थे। जो ऐसे जान पड़ते थे मानों काले काले मेघपटलोंसे ढके हुए दो सुवर्ण पर्वत हों ॥ २१ ॥ वहीं पर इन्द्र भी जिनकी सेवा करता है ऐसे कल्पवृक्षोंके वन थे। उनके नाम चार महा दिशाओंमें स्थित सिद्ध है रूप जिनका ऐसे सिद्धार्थ वृक्षोंसे अंकित थे ॥२२॥ इसके बाद चार गोपुरोंसे युक्त उत्पल (?) वज्रवेदिका थी। जो ऐसी जान पड़ती थी मानों अंजन गिरिकी विस्तृत अधित्यकाको ही देवोंने यहां लाकर रख दी है ॥ २३ ॥ उनपर द्युति—कांतिसे निचित—पूर्ण तथा कल्पवृक्षोंके पुष्प और लाल लाल कोमल पत्तों

बनी हुई वंदनमालाओंको धारण करनेवाले श्रेष्ठ रत्नमय दश दश तोरण लगे हुए थे ॥ २४ ॥ उनके–तोरणोंके बीच बीचमें नव नव स्तूप थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानों कौतुकसे जिनेन्द्रदेवका दर्शन करनेके लिये पदार्थ ही प्रकट हुए हैं। अथवा सिद्धोंकी प्रतिमातनासे विनत होनेके कारण चन्द्रातप श्रीमुख पृथक् पृथक् मुक्तिके एकदेश स्वयं इकट्ठे होकर पृथ्वीपर आकर विराजमान हो-गये हैं ॥ २५ ॥ उनके चारोतरफ अनेक प्रकारके बड़े बड़े कूट और सभागृह शोभायमान थे जिनमें ऋषि मुनि अनगार निवास करते थे तथा ध्वजा और मालाओंके द्वारा जिनका आतप विरल बना दिया गया था ॥ २६ ॥ उसके बाद तीसरा पिङ्गल मणियोंका बना हुआ है गोपुर जिसका ऐसा आकाश–झाकाशमान स्वच्छ अथवा प्रकाशमान स्फटिकका बना हुआ प्राकार था जो ऐसा जान पड़ता मानों मूर्तताको धारण कर जिनभगवानकी महिमाको देखनेके लिये स्वयं पृथ्वीपर आया हुआ वायुमार्ग ही है ॥२७॥ उन व्योम-चुम्बी गोपुरोंके दोनों बाजुओंमें विचित्र रत्नोंकी बनी हुई कलश आदिक आठ मंगल वस्तुएं रक्खी हुई शोभायमान थीं ॥ २८ ॥ कोटसे लेकर फैली हुई दक्षिणमें महापीठसे स्पर्श करनेवाली प्रकाशमान वेदिकायें थीं जो कि परस्पर प्रथक रूपसे प्रकाशमान आकाश समान स्वच्छ स्फटिककी बनाई हुई थीं। जिनपर विनय सहित बारह गण हर्षसे विराजमान हो रहे थे। उनके बीचमें रुचिरकांतियुक्त और मनोज्ञ तीन कटनीका सिंहासन शोभायमान था ॥ २९ ॥ उनके ऊपर अनुपम द्युतिके धारक सुवर्णके बने हुए स्तम्भोंके द्वारा धारण किया गया, भ्रमरमंडलसे घिरे हुए और खिले हुए सुवर्ण

कमलोंसे जिसका उपहार (पूजा) किया गया है ऐसा अनेक प्रकारके रत्नोंका बना हुआ श्रीमंडप था ॥३०॥ पहली कटनी पर मणि-मंगल द्रव्योंके समूहके साथ साथ चार धर्मचक्र शोभायमान थे जिनको कि चारो महादिशाओंमें यक्षोंने मुकुटोंसे उज्वल हुए मस्तकके द्वारा धारण कर रक्खा था ॥ ३१ ॥ सुवर्णकी बनी हुई और मणियोंसे जटित दूसरी कटनी पर आठो दिशाओंमें अत्यंत निर्मल आठ ध्वजायें थीं जिनमें चक्र, हस्ती, बैल, कमल, वस्त्र, हंस, गरुड और मालाके चिन्ह थे। जिनके दंड अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़े हुए थे ॥ ३२ ॥ तीसरी कटनीके ऊपर तीनलोकके चूड़ामणि रत्नके समान गंधकुटी नामका मनोहर विमान सर्वार्थसिद्धिमे चढ़ी हुई है विमान-लीला जिसकी ऐसा शोभायमान था जिसके ऊपर भगवान्का निवास था ॥ ३३ ॥ तीनों जगत्के लिये प्रतीक्षा करने योग्य तथा जिसकी निर्मल वाणीकी प्रतीक्षा करते हैं ऐसे निबंधन-कर्मबंधनोंसे रहित जिनेन्द्र भगवान् उस गंधकुट पर विराजमान हुए जिसपर आये हुए भव्य जीवोंने सुगंधित वस्तुओंसे किये हुए जलसे छिड़काव कर दिया था ॥ ३४ ॥ उन भगवा-न्के चारोतरफ क्रमसे यतीन्द्र (गणधर और मुनि) कल्प-वासिनी देवी, आर्यिकायें, ज्योति देवोंकी देवियां, व्यंतर देवोंकी देवियां, भवनवासी देवोंकी देवियां, भवनवासी देव, व्यंतर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, और मृग (तिर्यंच) आकर बैठे हुए थे ॥ ३५ ॥ चारो महा दिशाओंके वलयके भेदसे अनल्प गणोंके भी बारह भेद थे। अर्थात् चारों दिशाओंके मिलाकर सब बारह कोठे थे जिनमें उक्त बारह प्रकारके जीवसमूह बैठे हुए थे।

प्रकाशमान सिंहासनके अन्त तक सोलह सीढ़ियोंकी माला लगी हुई थी ॥ ३६ ॥ तीन परकोटाओंके सुंदर और उन्नत रत्नमय गोपुरोंमें क्रमसे व्यंतर, भवनवासी और कल्पवासी इस तरह तीन द्वारपाल थे जो उदार वेषके धारक थे और जिन्होंने हाथमें सुंदर सुवर्णका वेंत धारण कर रक्खा था ॥ ३७ ॥ प्रमाणवेत्ताओं—गणितज्ञोंमें जो श्रेष्ठ हैं उन्होंने पहले परकोटेका और मनोज्ञ मानस्तम्भका अनेक प्रकारकी विभूतिसे युक्त अंतरका—बीचके क्षेत्रका प्रमाण आधे योजनका बताया है ॥ ३८ ॥ जिनागमके जाननेवालोंने कृत्रिम पर्वत पंक्तियोंसे शोभायमान मनोहर पहले और दूसरे कोटके बीचके क्षेत्रका प्रमाण तीन योजनका बताया है ॥ ३९ ॥ विचित्र रत्नोंकी प्रभाकी पंक्तिसे मारित—हटा दिया—तिरस्कार कर दिया है सूर्यकी प्रभाको जिसने ऐसे दूसरे और तीसरे कोटका अंतर आचार्योंने दो योजनका बताया है ॥ ४० ॥ तीसरे कोटका और व्यवधान रहित विचित्र ध्वजाओंसे आच्छादित—ढके हुए वायुमार्ग—आकाशमार्गका, और स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसे सिंहासनका अंतर विद्वानोंने आधे योजनका बताया है ॥ ४१ ॥ जिन भगवान् जहां बैठते हैं उस महान् कांतिके धारक प्रदेशका और पृथ्वीतलके भूषण, रत्नोंसे शोभायमान स्तम्भोंका आचार्योंने छह योजनका अंतर बताया है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार उस जिनेश्वरका बारह योजनका धाम—समवशरण शोभायमान था । देवेन्द्रों धरणेन्द्रों और नरेन्द्रोंसे व्याप्त वह त्रिलोकीका दूसरा आकार जैसा मालूम पड़ता था ॥४३॥ भ्रमर जिसका अनुसरण कर रहे हैं, जिसने दिशाओंके मुखको श्वेत बना दिया है ऐसी पुष्पवृष्टि भगवान्के आगे आकाशसे पड़ती थी । जो ऐसी जान पड़ती

थी मानो अंधकारको नष्ट करनेवाली ज्योत्स्ना ही दिनमें प्रकट हो गई है। सुननेमें सुखकर—मधुर मालूम होनेवाला दुन्दुभिके शब्द आकाशके अन्तर्गत तीनों लोकमें व्याप्त होगया। जान पड़ा मानों जिनपतिका दर्शन करनेके लिये तीन लोकमें रहनेवाले भव्योंको बुला रहा हो ॥ ४४ ॥ मेघ मार्गपर आक्रमण करनेवाले अनेक विटपों—आसपासके छोटे छोटे वृक्षोंसे दिशाओंके मध्यको रोकता हुआ अत्यंत पवित्र रक्त वर्णका अशोक वृक्ष था जिसके तल भागमें देवगण निवास करते थे। अनेक पुष्पों तथा नवीन पल्लवोंसे सुभग—सुंदर वह ऐसा जान पड़ता मानों स्वयं मूर्तिवान् वसंत हो। अथवा जिन-पतिके दर्शन करनेके लिये कुरु—देवकुरु और उत्तर कुरुके वृक्षों—कल्पवृक्षोंका समूह एक होकर आ गया है ॥ ४५ ॥ उस भगवानके चन्द्रद्युतिके समान शुभ्र, निरंतर भव्य समूहको राग उत्पन्न करनेवाले तीन लोककी स्वामिताके चिन्हभूत तीन छत्र शोभायमान थे। जो ऐसे जान पड़ते थे मानों अपनी प्रभाकी प्रसिद्धिके लिये तीन वि-भागोंमें विभक्त हुए क्षीरसमुद्रके जलको देवोंने आकाशमें चन्द्राकार बनाकर तर ऊपर—एकके ऊपर दूसरा और दूसरेके ऊपर तीसरा इस क्रमसे रख दिया है ॥ ४६ ॥ दो यक्ष उस प्रभुकी चमरोंके व्याजसे सेवा करते थे। जान पड़ता मानों दिनमें दृश्यरूपको प्राप्त हुई ज्योत्स्नाकी कँपती हुई दो तरंगे हैं। भगवानके शरीरका मंडन भामंडल था जिसमें भव्यसमूह अपने अनेक पूर्वजन्मोंको इस तरह देखते थे जैसे रत्नोंके दर्पणमें ॥ ४७ ॥ उस जिनपतिका सुवर्णका बना हुआ उन्नत प्रकाशमान सिंहासन था जो मेरुकी शिखरके समान मालूम पड़ता था। उसकी सुर असुर तथा मनुष्य सदा सेवा

करते थे। फटे हुए हैं मुख जिनके ऐसे केसरियोंसे युक्त तथा नाना प्रकारकी पत्रलताओंसे अन्वित वह वन जैसा जान पड़ता था। अथवा रत्न मकरसे युक्त वह ऐसा जान पड़ता था मानों बड़ा भारी समुद्र ही हो ॥ ४८ ॥ इन्द्रने देखा कि जिनेश्वरकी दिव्य ध्वनि नहीं हो रही है तब वह अपने अवधिज्ञानसे जिसको देखा था उसी गणधरको लानेके लिये गौतमग्रामको गया। अर्थात् इन्द्रको अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि गणधरके न होनेसे दिव्य ध्वनि नहीं हो रही है। और यह भी मालूम हुआ कि वर्त्तमानमें गणधर पदके योग्य गौतम नामक विद्वान् है। यह जानकर वह उसको लानेके लिये जिस ग्राममें वह—गौतम रहता था उसी ग्राममें गया ॥४९॥ उस ग्राममें रहनेवाले, निर्मलबुद्धि और कीर्तिसे जगत्में प्रसिद्ध गौतम गोत्रमें मुख्य उस इन्द्रभूति नामक ब्राह्मणको विद्यार्थीका वेश धारण करनेवाला इन्द्र वादका छल करके उस ग्रामसे जिनवरके निकट लिवा लाया ॥ ५० ॥ मानस्तम्भके देखनेसे नम्रीभूत हुए शिरको धारण करनेवाले उस विद्वान् गौतमने भगवान्से जीवस्वरूपका उद्देशकर प्रश्न किया। होने लगी है दिव्यध्वनि जिसकी ऐसे जिनपतिने उसके संदेहको दूर कर दिया। तब गौतमने अपने पांचसौ शिष्य ब्राह्मण पुत्रोंके साथ साथ दीक्षा धारण कर ली ॥ ५१ ॥ उस गौतमने पूर्वाह्णमें दीक्षाके साथ ही निर्मल परिणामोंके द्वारा तत्काल, बुद्धि, औषधि, अक्षय, ऊर्ज्ज, रस, तप, और विक्रिया इन सात लब्धियोंको प्राप्त किया। और उसी दिन अपराह्णमें उस गौतमने जिनपतिके मुखसे निकले हुए पदार्थोंका है विस्तार जिसमें ऐसी उपांग सहित द्वादशाङ्ग श्रुतकी पद रचना

की ॥ ५२ ॥ स्तुतिके स्वरूपको जाननेवाले और विनयसे नम्र हुए इन्द्रने प्राप्त कर लिया है समस्त अतिशयोंको जिसने ऐसे उस जिनेन्द्रकी स्तुति करना प्रारम्भ किया। जो वस्तुतः करने योग्य है उसकी स्तुति करनेकी अभिलाषा किसको नहीं होती ? ॥ ५३ ॥

हे जिनेन्द्र ! मेरी बुद्धि आपकी स्तुतिके श्रेष्ठ विधानमें—स्तुति करनेमें फलकी स्पृहा—आकांक्षासे उद्युक्त तो होती है पर आपके गुणोंके गौरव (महत्व; दूसरे पक्षमें भारीपन) को देखकर स्खलित हो जाती है। महान् भार इष्ट होनेपर भी श्रम उत्पन्न तो करता ही है ॥ ५४ ॥ तो भी हे जिन ! मैं अपने हृदयमें रही हुई प्रचुर भक्तिके वशसे अत्यंत दुष्कर भी आपकी गुणस्तुतिको करूंगा। जो सच्चा अनुरागी है उसको लज्जा नहीं होती ॥ ५५ ॥ हे वीर ! हानि रहित, दिनरात प्रकाशित रहनेवाला, खिलते हुए पद्मसमूहके द्वारा अभिनंदित, न्यूनता रहित आपका यश निरंतर अपूर्व कलाधरकी श्रीको धारण करता है ॥ ५६ ॥ हे जिन ! आप तीनों लोकोंको यथास्थित—जो जिस रूपमें है उसको उसी रूपसे निरंतर बिना भ्रमण किये ही कारणक्रम और आवरणसे वर्जित देखते हैं। जो परमेश्वर है उसके गुण चिंतवनमें नहीं आ सकते ॥ ५७ ॥ प्राणवायुके द्वारा मेरुको कँपादेनेवाले आपने यदि कोमल पुष्पके धनुषको धारण करनेवाले मनोभू—कामदेवको परास्त कर दिया इसमें आश्चर्य क्या हुआ ? जो बलवान् है वह चाहे जैसे विषमको अभिभूत कर देता है ॥ ५८ ॥ आपको जगत्में जो परमकारुणिक कहते हैं यह कैसे बन सकता है ? क्योंकि आपका ऊर्जित शासन अकट और अत्यंत दुःसह है। गुप्तिरूप निबंधन

जिसका ऐसा है तथा प्रसिद्ध है धैर्यधन जिनका ऐसे पुरुषोंको भी अत्यंत दुर्धर है ॥ ५९ ॥ हे जिनपते! तुम अपूर्व तमोपहा (अंधकारके नष्ट करनेवाले—चन्द्रमा) हो। प्रतिदिन कुमुदको-कु मुद पृथ्वीके हर्षको; दूसरे पक्षमें कमलको) बढ़ानेवाले हो। परमप्रकाशी और अविनाशीको तेजके धारक हो। आवरण रहित होकर भी अचल स्थितिके धारक हो ॥६०॥ आकाशमें उत्पन्न हुई महान् रजके दूर करनेवाली वृष्टिसे नवीन जलको प्राप्त करनेको चातक जिस प्रकार जगतमें तृषा रहित हो जाते हैं उसी प्रकार हे जिन! आपकी वाणी—उपदेशामृतको पाकर साधुपुरुष तृषारहित नहीं हो जाते हैं यह बात नहीं हैं, अवश्य हो जाते हैं ॥ ६१ ॥ आप श्रेष्ठ गुण-रत्नाधि—गुण रत्नाकर होकर भी अजलाशय हो (जलाशय नहीं हो; श्लेषसे दूसरा अर्थ होता है कि तुम जड़ाशय=जड़बुद्धि नहीं हो) विमदन (मदन—कामदेवसे रहित श्लेषसे दूसरा अर्थ होता है कि मद—गर्वसे रहित) होकर भी महान् काम सुखके देनेवाले हो। तीन जगत्के स्वामी होकर परिग्रह रहित हो। हे जिन! आप की ये चेष्टा सब विरुद्ध है ॥ ६२ ॥ हे स्वामिन्! आपके गुण और चन्द्र-माकी किरणें दोनों समान हैं। दोनों ही सब लोगोंको आनन्द देनेवाले सुधा समान (किरणोंकी पक्षमें सुधासे) विशद, और अंध-कारको नष्ट करनेवाले हैं। इसलिये आपके गुण चन्द्रमाकी किरण समान मालूम होते हैं और चन्द्रमाकी किरणें आपके गुणोंके समान मालूम होती हैं ॥ ६३ ॥ हे जिन! जिस तरह आपके दो श्रेष्ठ नय हैं उस तरहसे ही आपका मत भी शोभायमान है। क्योंकि दोनोंको ही जगतमें भव्यपुरुष नमस्कार करते हैं। दोनोंके विषय

भी नव पदार्थ हैं। और दोनों ही महान्, निर्मल, निरुपम, तथा निर्वृतिके कारण हैं ॥ ६४ ॥ हे स्वामिन्! आपने धैर्यसे समुद्रको, महत्वसे आकाशको, समुन्नतिसे कनकाचल—मेरुको, कांतिसे सूर्यको, क्षमासे पृथ्वीको, और प्रशमसे चन्द्रमाको जीत लिया है ॥ ६५ ॥ हे जिनेश! किंपकंधकी द्युतिके धारण करनेवाले आपके चरणयुगल ऐसे जान पड़ते हैं मानों पवित्र-समाधिके बलसे जिसको हृदयमेंसे निकाल दिया था उसी रागका ये वमन कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ हे जिन! ये भक्ति करनेवाले लोक आपकी दिव्यध्वनिको सुनकर अत्यंत हर्षित होते हैं। नवीन मेघोंकी महान् ध्वनि क्या मयूरोंको आनन्दित नहीं कर देती है? ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य आपके निर्मल गुणोंको हृदयसे धारण करता है उसको पाप स्वभावसे ही छोड़ देता है। रात्रिमें पूर्णचन्द्रकी किरणोंसे युक्त हुआ सुमार्ग क्या अंधकारसे लिप्त होता है? ॥६८॥ हे जिन! यह अनंत चतुष्टय रूप वैभव आपके सिवाय और किसीके भी नहीं पाया जाता। क्षीर समुद्रके समान क्या जगतमें कोई दूसरा और भी समुद्र है जो कि सुधामय जलको धारण करता हो ॥ ६९ ॥ जिस प्रकार कुमुदिनी कुमुदपति—चंद्रमाके पादों—किरणोंको पाकर विशद बोधको प्राप्त हो जाती है उसी तरह हे जिनेश्वर! आर्द्रतासे अन्वित तथा आपके पादों—चरणोंकी आश्रित हुई यह भव्य सभा विशद बोधमय परम सुखको प्राप्त हो रही है या होजाती है ॥ ७० ॥ हे जिन! जिस प्रकार भ्रमर बौराए—फूले हुए आमकी सेवा करते हैं उसी प्रकार जो गुणविशेषके जानकार हैं वे अपने सुखकी इच्छासे आपकी खूब ही उपासना करते हैं। ठीक ही है—प्राणिगण अपने उपकार

करनेवालेके पास भी नहीं फटकते ॥ ७१ ॥ हे तीन जगत्के ईश! भूषण वेष और परिग्रहसे रहित आपका शरीर बहुत ही सुंदर मालूम होता है। जिसमें सूर्य, चन्द्र और ताराओंमेंसे किसीका भी उदय नहीं हुआ है ऐसा आकाश क्या मनोहर नहीं लगता है? ॥ ७२ ॥ प्राणियोंकी दृष्टि, नवीन खिला हुआ महोत्पल, निर्मल जलसे पूर्ण सरोवर, समस्त कलाओंसे युक्त चन्द्र, इनमेंसे ऐसी किसीमें भी नहीं ठहरती जैसी कि आपमें ॥ ७३ ॥ हे वीर! नम्रीभूत हुए मस्तकोंपर, चन्द्रमाकी किरणोंके समान है द्युति जिसकी ऐसा स्वयं पड़ता हुआ आपके चरणयुगलकी नखश्रेणीकी किरणोंका वितान—समूह ऐसा जान पड़ता है मानों नहीं नष्ट हुई है संतति जिसकी ऐसा स्वयं पड़ता हुआ पुण्य ही हो ॥ ७४ ॥ हे स्वामिन्! अगाध संसार सागरमें निमग्न हुए इस जगत्को आपने ही उभारा है। निविड़ अंधकारसे व्याप्त आकाशको सूर्यके सिवाय और कोई निर्मल बनाता है क्या? ॥ ७५ ॥ महान् रजको दूर करनेवाली ऐसी जलधाराके द्वारा सुधरित है आशा (दिशा) जहां पर ऐसे नवीन मेघकी तरह हे जिन! आप फल न देखकर ही—प्रतिफलकी इच्छा न करके ही जीवोंका अपनी वाणीके द्वारा सदा अनुग्रह करते हो ॥ ७६ ॥ हे जिन! यह निश्चय है कि आपके शुद्ध दयापूर्ण मतमें दोषका लेश भी देखनेमें नहीं आता है। स्वभावसे ही शीतल चंद्रमंडलमें क्या ऊष्मा—गरमी—संतापके कण भी स्थान पासकते हैं? ॥ ७७ ॥ हे जिन! जो मनुष्य श्रोत्ररूप अंजलिके द्वारा आपके वचनामृतका भक्तिपूर्वक पान करता है उस हितबुद्धिको जगत्में निरंकुश भी तृष्णा कभी बाधित नहीं कर सकती है

॥ ७८ ॥ हे ईश ! प्राणियोंकी भव्यता आपमें रुचि–प्रीति (सम्यग्दर्शन) को उत्पन्न करती है। प्रीति सम्यग्ज्ञानको, सम्यग्ज्ञान तपको, तप समस्त कर्मोंके क्षयको, और वह क्षय अष्टगुणविशिष्ट अनंत सुखरूप मोक्षको उत्पन्न करता है ॥ ७९ ॥ हे जिनेश्वर ! विना रंगे ही रक्त, विभ्रम–विलासकी स्थितिसे रहित होने पर भी मनोज्ञ, विना धोये ही अत्यंत निर्मल ऐसे आपके चरणयुगल नमस्कार करनेवाले मुझको सदा प्रशमकी वृद्धि करो ॥ ८० ॥ इस प्रकार मैंने किया है नमस्कार जिसको, तथा सघन घाति कर्मोंके निर्मूल कर देनेसे उत्पन्न हुए अतिशय ऋद्धिसे युक्त, भक्त आर्य पुरुषोंको आनन्दित करनेवाले, तीन भुवनके अधिपति आप जिनभगवान्‌में, हे वीर ! मेरी एकांत भक्ति सदा स्थिर रहो ॥ ८१ ॥ इस प्रकार जिन भगवान्‌की अच्छी तरहसे या बहुत देर तक स्तुति करके अनेकवार प्रणाम करनेसे नम्र हुए मुकुटको वाम हाथसे अपने स्थानपर (शिरपर) रखते हुए वार वार वंदना कर इन्द्रने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ८२ ॥

यह लोक किस प्रकारसे स्थित है ? और वह कितना बड़ा है ? तत्व कौन कौनसे हैं ? जीवका बंध किस तरहसे होता है ? और वह किसके साथ होता है ? अनादिनिधनकी मोक्ष किस तरह हो जाती है। वस्तुस्थिति कैसी है ? सो हे नाथ ! आप अपनी दिव्य वाणीके द्वारा समझाइए ॥ ८३ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेवाले इन्द्रको वीर जिनेन्द्रने भव्योंको मोक्षके मार्गमें स्थापित करनेके लिये जीवादिक पदार्थों (नव पदार्थों) और तत्वों (सात तत्वों) को या जीवादिक पदार्थोंके स्वरूपका यथावत् उपदेश कर इस प्रकार—निम्नलि-

खित प्रकारसे विहार किया ॥ ८४ ॥

जिन भगवान्के आगे मार्गमें पृथ्वीपरसे कंटक तृण और उपल वगैरह दूर कर दिये गये। शीघ्र ही पृथ्वीतलपर योजनोंमें समस्त दिशाओंको सुगंधित बनानेवाली सुखकर वायु वहने लगी ॥ ८५ ॥ विना मेघके ही ऐसी सुगंधित वृष्टि होने लगी जिससे कि कीचड़ तो बिलकुल भी नहीं हुई पर पृथ्वीकी रज-धूलि शांत हो गई-दब गई। आकाशमें सब तरफसे वायुके द्वारा उड़ती हुई ध्वजायें विना किसीके धारण किये ही स्वयं उस जिनेश्वरके आगे आगे चलने लगीं ॥ ८६ ॥ विविध रत्नमयी पृथ्वी मणिमय दर्पणतलकी प्रतिमा बनगई। पृथ्वीमें समस्त धान्योंका समूह बढ़ गया। जान लिया है पक्षको-वैरको जिन्होंने ऐसे मृगोंने छोड़ दिया। अर्थात जातिविरोधी पशुओंने आपसमें बैर करना छोड़ दिया ॥८७॥ जहां पर भगवान् चरण रखते थे उस अन्तरिक्ष-आकाशमें आगे और पीछे सात सात कमल रहते थे। आगे आगे देवोंके द्वारा भक्तिपूर्वक बजाई हुई दिव्य तुरई मंद्र मंद्र शब्द कर रही थीं॥ ८८ ॥ स्फुरायमान हैं भासुर रश्मिचक्र (किरणसमूह) जिसका ऐसा धर्मचक्र उस भगवान्के आगे आगे आकाशमें चलता था जो कि विद्वानों या देवोंको भी क्षणभरके लिये दूसरे सूर्य बिम्बकी शंका कर देता था ॥ ८९ ॥ उस भगवानके इंद्रभूति प्रभृति ग्यारह प्रसिद्ध महानुभाव गणधर थे। लोकमें पूज्य, अत्यंत उन्नत ऐसे तीन सौ मुनि चौदह पूर्वोके धारक थे ॥ ९० ॥ नौ हजार नौ सौ उदार शिक्षक-चारित्रकी शिक्षा देनेवाले थे। तेरह सौ साधु अवधि ज्ञानके धारक थे ॥९१॥ धीर और जिनकी विद्वान् या देव स्तुति करते हैं ऐसे पांच सौ मुनि मनःपर्यय ज्ञानके

धारक थे। उस समयमें मनीषियोंको मान्य ऐसे सात सौ मुनि अनुत्तम केवली—श्रुत केवलज्ञानके धारक सदा रहते थे॥ ९२॥ प्रसिद्ध अनिंदित और शांतचित्त ऐसे नौ सौ मुनि विक्रिया ऋद्धिके धारक थे। उखाड़ दिये हैं समस्त कुतीर्थ—कुमतरूपी वृक्ष जिन्होंने ऐसे चारसौ वादिगजेन्द्र—वादऋद्धिके धारक मुनि थे॥ ९३॥ समीचीन नीतिशालियोंको वन्द्य, शुद्ध चारित्र ही है भूषण जिनका ऐसी श्री चंदना प्रभृति छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं॥ ९४॥ अणुव्रत गुणव्रत और श्रेष्ठ शिक्षाव्रतके धारक, जगत्में ऊर्जित ऐसे तीन लाख श्रावक थे। व्रतरूपी रत्नसमूह ही है भूषण जिनका ऐसी तत्वमार्गमें प्रवीण तीन लाख उज्वल—निर्दोष श्राविकायें थीं॥ ९५॥ उस भगवान्की सभामें असंख्यात देव और देवियां तथा संख्यात तिर्यंचोंकी जातियां शांत चित्तवृत्तिसे जान लिया है समस्त पदार्थोंको जिन्होंने ऐसी मोह रहित निश्चल सम्यक्त्वकी धारक थीं॥ ९६॥ तीन भुवनके अधिपति जिनेन्द्र देव उक्त गणधर आदिके साथ समस्त प्राणियोंको हितका उपदेश करते हुए करीब तीस वर्ष (छह दिन कम तीस वर्ष) तक विहार करके पावापुरके फूले हुए वृक्षोंकी श्री—शोभासे रमणीय उपवनमें आकर प्राप्त हुए॥ ९७॥ उस वनमें छोड़ दिया है सभाको जिसने अथवा विघटित हो गया है समवसरण जिसका ऐसा वह निर्मल परमावगाढ़ सम्यक्त्वका धारक वह सन्मति भगवान् जिनेन्द्र षष्ठोपवासको धारण कर योगनिरोध कर कायोत्सर्गके द्वारा स्थित होकर समस्त कर्मोंको निर्मूल कर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अंत समयमें जब कि चन्द्र स्वाति नक्षत्रपर था, प्रसिद्ध है श्री जिसकी ऐसी सिद्धिको प्राप्त

हुआ ॥ ९८ ॥ उस जिनेन्द्रके अव्याबाध अतिशय अनंत सुखरूप पद—स्थानको प्राप्त करते ही सिंहासनोंके कँपनेसे जानकर—भगवानका मोक्षकल्याणक हुआ है ऐसा समझकर अपनी अपनी सैन्यके साथ शीघ्र ही अनुगमन करनेवाले सारे देव और उनके अधिपति भगवान्‌के पवित्र और अनुपम शरीरकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेके लिये उस स्थानपर जाकर पहुँचे ॥ ९९ ॥ अग्निकुमार देवोंके इन्द्रोंके मुकुटके रत्नोंमेंसे निकली हुई अग्निमें, जिसको कि कपूर अगर सारभूत चंदनका काष्ठ इत्यादि हविष्य द्रव्यके द्वारा वायुकुमारके देवोंने शीघ्र ही संधुक्षित कर दिया था—झपककर दहका दिया था, जिनपतिके शरीरकी इन्द्रोंने अन्त्य क्रिया की ॥ १०० ॥ शीघ्र ही उस जिनपतिके पंचम कल्याणको अच्छी तरह करके स्तुतिके द्वारा मुखर—शब्दायमान है मुख जिनका ऐसे प्रसन्न हुए कल्पवासी इन्द्रप्रभृति देवगण उस स्थानकी प्रदक्षिणा करके अपने हृदयमें यह विचार करते हुए कि 'इस भक्तिके प्रसादसे हमको भी शीघ्र ही निश्चयसे सिद्धिसुखकी सिद्धि हो, अत्यंत नवीन संपत्तिसे युक्त अपने अपने स्थानको गये ॥ १०१ ॥

इसप्रकार मैंने जो यह महावीरचरित्र बनाया है वह अपनेको और दूसरोंको बोध देनेके लिये बनाया है। इसमें पुरुरवासे लेकर अंतिम वीरनाथ तक सेंतीस भवोंका निरूपण किया है ॥१०२॥ जो पुरुष इस वर्द्धमान चरित्रका व्याख्यान करता है और उसको सुनता है उसको परलोकमें अत्यन्त सुख प्राप्त होता है ॥१०३॥ मौद्गल्य पर्वतका है निवास जिसमें ऐसे वनमें रहनेवाली संपत्—संपत् नामकी

या संपत्तिके समान श्रेष्ठ श्राविकाके, अथवा मौद्गल्य पर्वतपर है निवास जिसका ऐसी वनस्थ संपत् सच्छ्राविकाके ममत्व प्रकट करनेपर—उसके कहनेसे भावकीर्ति मुनि नायकके पादमूलमें संवत् ९१० में मैंने विद्याका अध्ययन किया और चौड़ देश विरला नगरीमें श्रीनाथके जनताका उपकार करनेवाले पूर्ण राज्यको पाकर जिनोपदिष्ट आठ ग्रंथोंका निर्माण किया ॥ १०४ ॥

इस प्रकार अशग कविकृत वर्द्धमान चरित्रमें महापुराणोपनिषद् भगवन्निर्वाणोपगमन नामक अठारहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

श्री महावीराष्टक स्तोत्र।

(१)

नित जीव भाव अजीव जिनके, मुकुर सदृश ज्ञानमें।
उत्पाद ध्रौव्य अनन्त व्यय सम, दीखते शुभ मानमें॥
आकाशमणि ज्यों लोक साक्षी, मार्ग प्रकटित करनमें।
श्री **वीरस्वामी** मार्गगामी, हों हमारे नयनमें॥

(२)

हैं पद्मयुगसे नेत्र जिनके—स्पंद क्रोधादिक नहीं।
करते जनोंको प्रकट है, क्रोधादि चितमें हैं नहीं॥
अत्यन्त निर्मल मूर्ति जिनकी, शान्तमय हो स्फुरणमें।
श्री **वीरस्वामी** मार्गगामी, हों हमारे नयनमें॥

(३)

नमती हुई स्वर्गेन्द्र पंक्ति मुकुटमणि छवि व्याप्त हैं।
शोभित युगल चरणाब्ज जिनके मानवोंके आप्त हैं॥
भववर्चि नाशनके लिये हैं, शक्य पाथ स्मरणमें।
श्री **वीरस्वामी** मार्गगामी, हों हमारे नयनमें॥

(४)

मंडूक इह हर्षित हृदय हो, जासु पूजन भावसे।
गुणवृन्दशाली स्वर्ग पहुंचा, सुख समन्वित चावसे॥
सद्भक्त शिवसुख वृन्दको किमु, प्राप्त करते शरणमें।
श्री **वीरस्वामी** मार्गगामी, हों हमारे नयनमें॥

(५)

कंचन प्रभा भी तप्त जिनके, ज्ञान निधि हैं गत तनु ।
सिद्धार्थ नृपवरके तनय हैं, चित्र आत्मा भी ननु ॥
श्रीयुक्त और अजन्म गति भी, चित्र हैं भव नशनमें ।
श्री वीरस्वामी मार्गगामी, हों हमारे नयनमें ॥

(६)

विमला विविध नय उर्मियोंसे, भारती गंगा यही ।
ज्ञानाम्भसे इह मानवोंको, स्नपित करती है सही ॥
बुधजनमरालोंसे अभी, संज्ञप्त है इह भुवनमें ।
श्री वीरस्वामी मार्गगामी, हों हमारे नयनमें ॥

(७)

त्रिभुवन विनेता काम योद्धा, वेग जिसका प्रबल है ।
सुकुमार कोमल उम्रमें, जीता स्व बलसे सबल है ॥
वह प्रशम पदके राज्यको, आनन्द नित्य स्मरणमें ।
श्री वीरस्वामी मार्गगामी, हों हमारे नयनमें ॥

(८)

हैं वैद्य मोहातङ्कको, कश्चित् महा प्रशमनपर: ।
अनपेक्षबन्धु विदितमहिमा, और श्री मंगलकर: ॥
भव भीत साधु प्राणियोंको, श्रेष्ठ गुण हैं शरणमें ।
श्री वीरस्वामी मार्गगामी, हों हमारे नयनमें ॥

सतीशचन्द्र गुप्त, सूरत ।